अहार

बुन्देलखण्ड का तीर्थ

'मधुकर'-कार्यालय, टीकमगढ़ सी० आई०



गढ़ (सी० आई०)

लय,

बई नं० ४

छापाखाना, चन्दावाड़ी, सूरत

नोट—अहार ओरछा-राज्य की राजधानी टीकमगढ़ से १२ मील पूर्व में है। जी० आई० पी० लाइनके ललितपुर स्टेशन से टीकमगढ़ ३६ मील, इलाहाबाद झांसी लाईनके मऊ स्टेशन से ४२ मील है; लेकिन सुविधाजनक ललितपुर वाला मार्ग है, क्योंकि वहां से टीकमगढ़ के लिए एक लारी नियमित रूप से आती है। टीकमगढ़ से बैलगाड़ी मिल जाती है।

—सम्पादक



अहार

[बुन्देलखण्ड का एक तीर्थ]

—०—

सम्पादक —

श्री यशपाल जैन, बी० ए० एल-एल० बी०



भूमिका-लेखक —

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी



प्रस्तावना-लेखक —

श्री अजितप्रसाद जैन, एम० ए० एल-एल० बी०

मूल्य ।=)

लेख-सूची

सम्पादक की ओर से—

प्रस्तुत पुस्तिका अहार-सम्बन्धी कतिपय लेखों का संग्रह है, जिनमें से अधिकाश 'मधुकर' तथा जैन-पत्रो मे प्रकाशित हो चुके हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ को संक्षिप्त कर देना पडा तदर्थ क्षमाप्रार्थी हूं।

अहार-आन्दोलन का सूत्रपात उस दिन हुआ था जब हम लोग प्रथम बार २४ फरवरी १६४१ को वहां गये थे और भगवान शान्तिनाथ की सौंदर्य और भावपूर्ण विराट प्रतिमा को देखकर आनन्द-विभोर हो कई मिनट तक स्तब्ध खड़े उनकी विलक्षण मुख-मुद्रा को निर्निमेष नेत्रों से निहारते रहे थे। तत्पश्चात् खुले स्थान पर पड़े दो ढाई सौ प्रतिमाओं के ढेर की दुर्गति और पाठ-शाला के विद्यार्थियों की भोजन-सम्बन्धी दुर्व्यवस्था को देखकर हमारे हृदय को असीम वेदना भी हुई थी। उस रोज कुण्डेश्वर लौटकर रात को देर तक वहा की मूर्तियों और विद्यार्थियो के सम्बन्ध मे सोचता रहा। भगवान शान्तिनाथ की वह भव्य और दर्शनीय प्रतिमा प्रकाश मे आना ही चाहिए, ऐसा संकल्प मन मे उठा। उसी समय प्रतिमाओं के ढेर से उठकर मानो कराह की आवाज आई और पाठशाला के दुर्बलकाय विद्यार्थी सामने आ खड़े हुए। मन त्रस्त हो उठा। तब चारपाई से उठ कर कुछ लिखा, जो 'मधुकर' मे 'अहार-लडवारी' शीर्षक से छपा और जिसे परिवर्तित और परिवर्द्धित रूप मे इस संग्रह मे दिया जा रहा है। प्रायः सभी जैन-पत्रों ने इस लेख को उद्धृत किया

तथा अपनी टिप्पणियां देकर समाज का ध्यान अपने इस चिर-उपेक्षित क्षेत्र की ओर खींचा। उस लेख पर आए कुछ पत्र परिशिष्ट में दिये हुए हैं। इसी बीच अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् का वार्षिक अधिवेशन झांसी में हुआ। उसमें अहार की वर्तमान अवस्था पर खेद प्रगट करते हुये एक प्रस्ताव द्वारा पांच सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त की गई, जिसने अहार जाकर जांच की और अपनी रिपोर्ट तैयार करके दी।+ वह रिपोर्ट परिषद के तत्कालीन सभापति श्री वालचन्द जी कोछल तथा प्रधान मन्त्री ला० तनसुखराय जी को भेजी गई लेकिन खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि परिषद् के अधिकारी उस विषय में कुछ सहयोग न दे सके। तब मैंने कटनी के सवाई सिंघई श्री धन्य-कुमारजी जैन को अहार सम्बन्धी सामग्रीको एक पुस्तिकाके रूपमे छपवा देने के लिये लिखा और उन्हों ने १२५) भेज दिये। मैं उनका आभारी हूं।

श्रद्धेय बाबू अजितप्रसाद जी जैन एम० ए०, एल-एल० बी० का मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने अहार आन्दोलन में न केवल हमारा मार्ग प्रदर्शन ही किया, अपि तु अनेकों कष्ट उठाकर लखनऊ से अहार के दर्शनार्थ आए और स्व० ब्र० शीतलप्रसादजी के परिचर्या-कोष में से एक हजार रुपये संग्रहालय के निर्माण के लिए प्रदान करने का वचन दिया। वर्षा समाप्त होते ही कार्य प्रारम्भ हो जायगा, किन्तु जैसी कि श्री नाथूराम जी प्रेमी ने अपने

+ परिशिष्ट में देखिये।

लेख मे लिखा है, इस काम के लिये तीन-चार हजार रुपये की आवश्यकता है ।

सर्व श्री नाथूराम जी प्रेमी, विश्वम्भरदास जी गार्गीय, शिवसहाय जी चतुर्वेदी, परमेष्ठीदासजी जैन व अन्य महानुभावों का भी उपकृत हूं जिन्होंने अनेकानेक असुविधाओं को सहन कर अहार के दर्शन किये और उसके प्रचार-कार्य मे सहयोग दिया ।

सर्वश्री मक्खनलाल जी जैन ठेकेदार (देहली) रूप-किशोर जैन (विजयगढ) तथा अमोलकचन्द जैन (खण्डवा) ने अहार के लिए दो-दो गाएं देने का वचन दिया है तथा श्री नाथूराम जी प्रेमी ने पाठशाला के विद्यार्थियो के लिये कुछ पुस्तकें भेजी है, तदर्थ मै सबका कृतज्ञ हूं ।

उन पत्रो को भी मैं धन्यवाद देता हू जिन्होने अपना पूर्ण सहयोग मुझे दिया और आशा करता हु कि आगे भी अपना सह-योग इसी तत्परता के साथ देते रहेंगे ।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के इस वर्ष के सभापति साहु शान्तिप्रसाद जी (डालमिया नगर) का भी मैं हृदय से आभारी हूं, जिन्हो ने मुझे इस सम्बन्ध मे प्रोत्साहन दिया तथा परिषद के कानपुर अधिवेशन मे अहार की स्थिति पर प्रकाश डालने की अनुमति दी ।

'मधुकर'—सम्पादक प० बनारसीदास जी चतुर्वेदी की प्रेरणा से इस आन्दोलन का श्री गणेश हुआ था । अहार के सम्बन्ध में जो उनका स्वप्न है, वह भूमिका मे उन्होने दिया है । उनका इस अहार-आन्दोलन से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि

उन्हें धन्यवाद ‖ देना धृष्टता होगी। अभी अहार-आंदोलन का सूत्रपात ही समझना चाहिये। उसे सफल तभी माना जाना सकता है जब अहार अपने प्राचीन गौरव के अनुरूप महत्व प्राप्त करले। इसमें अनेकों वर्ष लग जावेंगे। साधारण कलम के मजदूर की हैसियत से जो अत्यल्प सेवा हम से बन पड़ी, उसे हम अपना परम सौभाग्य मानते हैं।

'मधुकर'-कार्यालय
टीकमगढ़ (सी० आई०)
अगस्त १९४३

—यशपाल जैन,
बी० ए०, एल-एल० बी०

—०—

* भूमिका *



अहार का भावी तपोवन

कल्पना कीजिये ! आज से पौने आठ सौ वर्ष पहले एक कलाकार प्रातःकाल से सायंकाल तक परिश्रम-पूर्वक अपने कार्य में लगा हुआ है। अपनी अन्तरात्मा मे उसने भगवान शांतिनाथ की जो मूर्ति कल्पित कर रक्खी है, उसे पत्थर पर अंकित करने के प्रयत्न मे वह संलग्न है। उसके चारों ओर विशाल वन है और प्रकृति मानों वहा बैठ कर अपने रूप का साज-शृङ्गार कर रही है। उस भव्य प्राकृतिक सौंदर्य के अनुरूप ही उसे एक महान मूर्ति का निर्माण करना है। अपने फन का वह मास्टर है-अपनी कला मे पारङ्गत। देखिये, उसका हाथ क्या नपा-तुला पड़ता है, उसकी छैनी की गति के साथ भगवान का हृदयस्थ रूप अत्यन्त धीरे-धीरे आखों के सामने निखरता आ रहा है। छैनी की एक हलकी-सी चोट यहां चाहिये, यहां पर गुलाई लानी बाकी है, चेहरे का तेज अभी झलका नहीं, इस प्रकार के बीसियों विचार नित्य-प्रति उसके मन में चक्कर काटते होंगे और गर्भवती स्त्रियों की-सी सावधानी के साथ वह नित्यप्रति उस दिन की प्रतीक्षा करता होगा, जब सम्पूर्ण होकर वह प्रतिमा दर्शकों के सम्मुख उपस्थित होगी। कभी २ सेठ जाहड़ जी अथवा उनके अनुज उदयचन्द्र जी आते होंगे और पूछते होंगे—"कहो, भई पापट ! कितना काम अभी बाकी है ?" तो अत्यन्त संकोच के

साथ वह कहता होगा, "अभी तो काफी देर है सेठ जी। देखिये भगवान शान्तिनाथ की कृपा से वह कब पूरा हो।"

दिन पर दिन बीतते जाते है, महीनो गुज़र जाते है और कई वर्षों की निरन्तर लगन तथा अनवरत अध्यवसाय के बाद वह प्रतिमा तैयार हो पाती है। किसी दिन शुभ मुहूर्त मे वह अमर कलाकार पापट ध्यानस्थ होकर उस प्रतिमा को प्रणाम करता है, वह मिलान करता है अपनी हृदयस्थ प्रतिमा से इस प्रस्तर निर्मित प्रतिमा का और दोनो मे अद्भुत समानता पाकर वह उस आत्म-सन्तोष को प्राप्त करता है, जो महान कलाकारो ही के हिस्से की चीज है। और फिर पापट उस मूर्ति को चतुर्दिक के प्राकृतिक सौंदर्य की पृष्ठ भूमि मे देखता है और उसकी अंतरात्मा कहती है कि यह मूर्ति निस्सन्देह 'मदनेशसागरपुर' की विस्तृत कीर्ति के अनुरूप ही बन पडी है।

अगहन सुदी तीज शुक्रवार सम्वत् १२३७—

आज मूर्ति की प्रतिष्ठा का शुभ दिन है। आज सेठ जाहड जी तथा उनके अनुज उदयचन्द्र जी, जिनके दान से इस मूर्ति का निर्माण हुआ है, अपनी मनोकामना को पूर्ण होते देखेंगे। संस्कृत के किसी प्रतिष्ठित कवि ने मूर्ति को देखकर सुन्दर श्लोकों की रचना भी करदी है :—

चन्द्रभास्करसमुद्रतारका यावदत्र जनचित्तहारकाः ।
धर्मकारिकृतशुद्धकीर्त्तनं तावदेव जयतात् सुकीर्त्तनम् ।

अर्थात्—"जब तक चन्द्रमा और सूर्य और समुद्र तथा

तारागण इस लोक मे मनुष्यों के चित्तों का हरण करते हैं तबतक धर्मकारी का रचा हुआ सुकीर्तिमय यह सुकीर्तन विजयी रहो।"

वाल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारो महामतिः।
पापटो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिम्ब सुनिर्मितम् ॥

अर्थात्—इस प्रतिबिम्बकी रचना की है वाल्हणके शिल्पी पुत्र पापट ने, जो महामतिशाली और वास्तुशास्त्रज्ञ है।

कवि लोग प्राय. अत्युक्ति किया करते हैं; पर उपर्युक्त श्लोक मे कविवर ने कंजूसी ही की है। जो कोई भी उस तेजस्वी मूर्ति को देखेगा वह पापट की गणना महान साधकों और तपस्वियों मे किये बिना न रहेगा। निस्सन्देह वे अत्यन्त सयमी और शक्ति का सचय करने वाले स्वाभिमानी व्यक्ति रहे होंगे और अपने पुण्यात्मा पिता वाल्हण के अधीन उन्होंने बीसियों वर्ष तक मूर्तिकलाके क्षेत्रमे उम्मेदवारी भी होगी साथ २ वे जीवनकलाके भी विशेषज्ञ रहे होंगे। जीवनकला के विशेषज्ञ हुए बिना ऐसी अमर रचना करना असम्भव है।

उस छोटे से मन्दिर मे नीचे की सीढ़ियों से उतरते हुए कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि उसके नेत्रों के और हृदय के लिये भी क्या अद्भुत सामग्री उपस्थित होगी और भगवान शांतिनाथ में विश्वास रखने वालों की आत्मिक शांति के लिये तो अमर कलाकार पापट ने अपनी साधना का साकार रूप भी खड़ा कर दिया है। उस दिन की याद हमें कभी नहीं भूलने की जब हमने पहले पहल उस भव्य मूर्ति के दर्शन किये थे।

के लिये उत्सुक और उत्कण्ठित हैं। उसके आसपास के वन को हम 'अभयवन' के रूप में देखना चाहते हैं, जहां स्वर्ण-मृग और नीलगाय, तेंदुए और वाराह निर्भय विचरते रहें और अहार के निकट के ग्रामों को हम धनधान्य-समृद्ध देखना चाहते हैं क्यों न वहां कृषि-विद्यालय हो, क्यों न सहस्रों मन धान की उपज हो? क्यों न वहां गोशालाएं हों और मक्खन तय्यार किया जाय? अहार के चारों ओर हम स्वस्थ बालकों तथा बालिकाओं को खूब खेलते हुए और पास के सरोवरों में जलक्रीडा करते हुए देखना चाहते हैं। संग्रहालय की मूर्तियों को सुरक्षित रखने से कहीं अधिक आवश्यक कार्य है इन मानव मूर्तियों की रक्षा करना जिस क्षण ऐसी उपजाऊ शस्य श्यामला भूमि में रह कर कोई विद्यार्थी साग-तरकारी तथा दूध के लिये तरसता है उसी क्षण हमारी आदर्शवादिता की श्वेतकीर्ति पर कालिमा छा जाती है।

अहारतीर्थ के मानी होने चाहियें वहां के चारों ओर की प्रकृति तथा पुरुषों को पुनर्जीवन।

पर इस महान यज्ञ के लिये चाहिये स्वनामधन्य पापट की सी लगन और श्रद्धा। अहार-तीर्थ उस श्रद्धा तथा उस लगन की प्रतीक्षा कर रहा है। जैन-समाज में आज बीसियो लखपति विद्यमान हैं, पर सेठ जाहड़ जी और उदयचन्द्र जी जैसी क्रियात्मक कल्पनाशक्ति कितनों में है? ये महानुभाव दान करते हैं— खूब दान करते हैं—पर उनकी दान-प्रणाली के पीछे विवेक नहीं है और न है वह दूरदर्शिता जो भिन्न २ दानों में कुछ सामञ्जस्य

उत्पन्न कर सके।

ज्यों-ज्यों भारत की जन-संख्या बढ़ती जायगी—और वह बड़ी तेजी से बढ़ रही है—रहने के स्थान संकुचित होते जांयगे और तब इन विस्तृत तपोवनों का महत्त्व और बढ़ जायगा। सहस्रों संत्रस्त प्राणी वहां आकर मानसिक तथा आध्यात्मिक शांति प्राप्त करेंगे। अहार जैसे तीर्थस्थल उस समय अपनी क्षुद्र साम्प्रदायिकता को छोड़ कर तपोवन का रूप धारण कर लेंगे और विस्तृत मानव-समाज की सेवा में ही अपना कल्याण समझेंगे। पुनर्जीवन में हमारी श्रद्धा है और हमारा यह दृढ़ विश्वास भी है कि जाहड़ और उदयचन्द्र की आत्माएं फिर अव-तीर्ण होंगी 'मदनेशसागरपुर' के भाग्य फिर जागेंगे और कलाकार पापट की सच्ची कद्र करने वाले भी उत्पन्न होंगे। महामति वास्तुशास्त्रज्ञ पापट की आत्मा मानों साढ़े सात सौ वर्ष की दूरी को पार कर रही है —

उत्पस्यते ऽपि मम का ऽपि समानधर्मा।
कालो ह्यय निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

अर्थात्—कभी न कभी कोई मेरा समान-धर्मा उत्पन्न होगा, क्योंकि यह पृथ्वी विशाल है और काल अनन्त है।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़
१४-७ ४३

—बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रस्तावना



श्री विश्वम्भरदास गार्गीय, जगदीशप्रसाद व श्रीमती जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, यशपाल जी तथा श्रीमती यशपाल जी के साथ श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र अहार के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस प्राचीन किन्तु प्रायः अब तक अप्रसिद्ध क्षेत्र के सम्बन्ध में जो कुछ टीकमगढ़ से प्रकाशित होने वाले पाक्षिक-पत्र 'मधुकर' में निकला है तथा श्री नाथूराम जी प्रेमी ने लिखा है, उसमें किंचिन्मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं दिखाई दी। भगवान शान्ति-प्रभु की तथा उनके वामाग में कुन्थु भगवान की प्रतिमा अनुपम प्रभावोत्पादक है, मानो तपस्या के फलस्वरूप आध्यात्मिक आनन्द उनकी मुखमुद्रा से छलकता हो। शिल्पकला का अद्भुत चातुर्य और मूर्ति निर्माण करने वाले गृहस्थ की भक्ति पार्श्वनाथ, सोनागिरि, पपौरा आदि के प्रतिष्ठापक श्रावकों की प्रभावनांग को उल्लंघन करती हुई जान पड़ती है।

पास ही में एक नवनिर्मित जिनालय आधुनिक धर्मनिष्ठा प्रणाली के नमूने के रूप में आंखों में ऐसा खटकता है, जैसे पूर्वाचार्यों की प्रौढ़ आगमरचना के सामने आधुनिक धार्मिक साहित्य रचना खटकती है। देखें, जैनसमाज के विद्वज्जन, धर्मउपदेशक और नेता समाज की दानवृत्ति की वर्तमान दिशा को बदल कर कम से कम तीस-चालीस बरस तक नवीन बिम्ब-प्रतिष्ठा एवं नवीन जिनमन्दिर बनाने की प्रणाली को स्थगित करके प्राचीन

जिनालय तथा प्राचीन प्रतिबिम्ब जहां कहीं भी हों, उनके जीर्णो-द्धार करने और उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाने के कार्य मे कब सफल होते हैं। समाज के धनिक सज्जन खण्डित और अखण्डित मूर्तियों तथा मन्दिर के भग्नावशेषोंको संचित, सुरक्षित और सुसज्जित करके अपने धन, जन, शक्ति और समय का सदुपयोग करें तो बड़ा उत्तम हो।

ऐसे सुरम्य पुण्यतीर्थ के दर्शनार्थ पहुचने के लिये मार्ग का ठीक दशा मे होना अत्यावश्यक है। इस समय वहां जाने के लिए कच्चा रास्ता है, जो बहुत ही ऊबड़खाबड़ तथा असुविधा-जनक है। अहार को प्रकाश मे लाने के लिए टीकमगढ़ से वहा तक पक्की सड़क का होना जरूरी है। धजरई नामक ग्राम तक तो सड़क है। केवल सात-आठ मील की सड़क बननी है। आशा है, जैनसमाज के धनीमानी महानुभाव उस ओर ध्यान देंगे। अब तक अहार को समुचित ख्याति न मिलने का बहुत कुछ कारण पक्की सड़क का न होना है।

अहार मे इस समय लगभग ढाई सौ प्रतिमाओं का संग्रह किया जा चुका है। उन्हें व्यवस्थित रूप से प्रतिष्ठित करने के लिये एक संग्रहालय की आवश्यकता है, जिसके निर्माण का कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है। स्व० ब्र० शीतलप्रसाद के परि-चर्या कोष के बने हुए द्रव्य मे से संग्रहालयका काम शुरू कर देने के लिये एक हजार रुपये देने का निश्चय किया जा चुका है। श्री यशपाल जी जल्दी ही इस कार्य का श्री गणेश कर देंगे। ऐसी आशा है।

निकटवर्ती जंगल में तथा पहाड़ियों पर भी हम लोगों ने घूमकर प्राचीन मन्दिरों के भग्नावशेषों को देखा, जिनसे पता चलता है कि किसी जमाने में यह स्थान अत्यन्त ही सम्पन्न रहा होगा। थोड़ी दूर पर एक पहाड़ी के ऊपर एक मन्दिर के चिन्ह मिलते हैं तथा ऊपर जाने के लिए पक्का रास्ता बना हुआ है, आवश्यकता इस बात की है कि जहां-कहीं भी मन्दिरों के अवशेष मिले वहां पर व्यवस्थित रूप से खुदाई कर अन्वेषण किया जाय। ऐसा करने से सम्भव है इस स्थान के प्राचीन वैभव के सम्बन्ध में बहुत सी बातें ज्ञात हों।

मदनसागर के किनारे पर बहुत से बड़े बड़े पत्थर पड़े हुए हैं, जिनपर कई प्रकार की खुदाई हो रही है, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वहां पर अवश्य ही विशाल मन्दिर रहे होंगे।

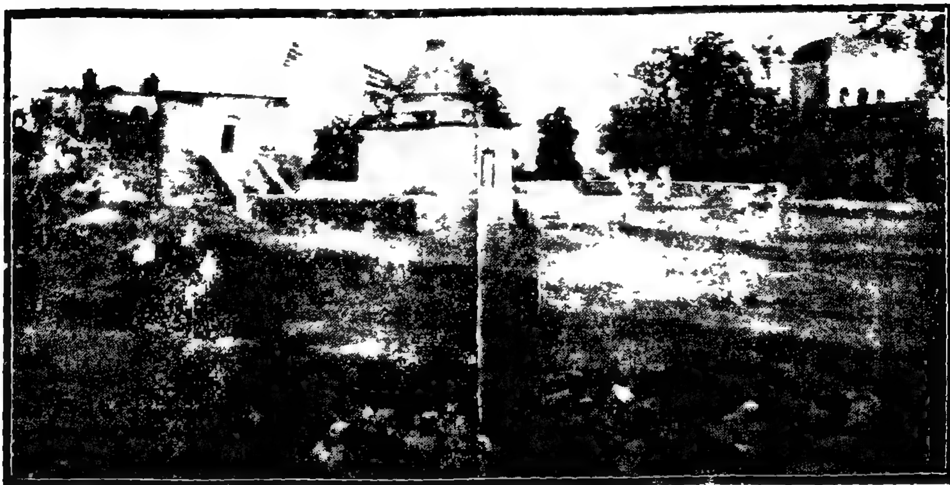
अब तक जितनी प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें पिचानवे प्रतिशत पर शिलालेख हैं। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात है, उन सबकी कागज पर छाप लेकर उनका अध्ययन होना चाहिए।

मुझे हर्ष है कि अहार के सम्बन्ध में यह पुस्तिका प्रकाशित हो रही है। अहार क्षेत्र को अपना पुरातन गौरव प्राप्त हो, ऐसी मेरी कामना है।

अजिताश्रम,
लखनऊ
जौलाई १९५२

अजितप्रसाद जैन,
एम० ए०, एल-एल० बी०,
सम्पादक 'जैनगजट'

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र अहार



अहार का एक दृश्य—(बायें कोने का मन्दिर प्राचीन है)



अहार

[बुन्देलखण्ड का एक तीर्थ]

(१)

अहार का वर्तमान रूप

—:(श्री यशपाल जैन बी० ए०, एल-एल० बी०):—

बुन्देलखण्ड जैनियों का प्रमुख केन्द्र है। सोनागिरि, नैनगिरि, द्रोणगिरि, देवगढ़, चन्देरी, पपौरा आदि अनेक तीर्थ इस प्रांत में स्थित हैं। इनमें से कुछ तो उचित विज्ञापन पाकर प्रकाश में आ गये हैं और जैनसमाज उनसे भली भांति परिचित भी है, लेकिन कुछ तीर्थ ऐसे भी हैं जिनके विषय में जैन बन्धु कुछ भी नहीं जानते, परन्तु वे इतने महत्वपूर्ण हैं कि यदि वे प्रकाश में आ जांय तो न केवल जैनसमाज, अपि तु समस्त भारत उन पर गर्व करेगा। 'अहार' एक ऐसा ही तीर्थ है।

अप्रेल १९४१ में जब अखिल भारतीय दिगम्बर जैन-परिषद् के झांसी अधिवेशनमें अहार तीर्थका प्रस्ताव रक्खा गया था

तो उपस्थित जनता में से अनेक व्यक्ति विस्मय से आपसमें पूछते थे कि क्या 'अहार' भी हमारा कोई तीर्थ है ? इस अल्प-विज्ञापित तीर्थ में सब से अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है 'भगवान शान्तिनाथ की भव्य और विराट प्रतिमा' जिसके जो कोई दर्शन करेगा—चाहे वह जैन हो अथवा अजैन-श्रद्धा से उसका मस्तक नत हो जायगा। उसमे कुछ ऐसा आकर्षण है कि मानवता उससे प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकती और यही उस दुर्लभ प्रतिमाकी विशेषता है।

पहली बार २४ फरवरी १९४१ को मुझे अहार जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। समयाभाव के कारण हम लोग कार मे गये, किन्तु रास्ते के ऊबड़-खाबड़ होने के कारण उस समय जो कष्ट हुआ, मुझे अभी तक याद है। धक्कों के मारे सारी देह चकनाचूर हो गई। उसके बाद तो जितनी बार गया हूं, बैलगाड़ी पर या पैदल। मेरी राय मे सुविधा की चीज़ बैलगाड़ी ही अधिक है। जो दर्शनार्थी पैदल जाने की सामर्थ्य रखते हों उनसे मेरा अनुरोध है कि वे पपौरा-बड़भाग्ई होकर जावें। इस मे एक डेढ़ मील का चक्कर तो और लग ही जायगा, लेकिन प्रकृति की जो अनुपम छटा दिखाई देगी, उससे जी प्रसन्न हो जायगा। अहार-जांच-कमेटी के सदस्यों को अनायास ही मैं उस मार्ग से ले गया और उस समय जो दृश्य देखे, वे आज भी मेरे नेत्रों के समक्ष झूमते हैं।

टीकमगढ़ से लिधौरा होकर बैलगाड़ी का जो रास्ता है वह भी कम सुहावना नहीं है। टीकमगढ़ की बस्ती से निकलते ही

एक बावड़ी आती है, जहां से पक्की सड़क छूट जाती है और फिर घने जंगल में होकर कच्चा रास्ता जाता है। पहले तो खैर (कत्थे) का जंगल आता है। उसके बाद कोई चार-पांच मील चलने पर पचास-साठ घर का एक छोटा सा 'मामौन' नाम का गांव और निकट ही उसी नाम का एक विशाल सरोवर लहलहाता दिखाई देता है। उससे थोड़ा आगे चलकर 'उर' नाम की नदी है, जो पठा के ताल से निकल कर धसान (दशार्ण) में गिरती है। नदी छोटी सी ही है, परन्तु वन के बीच छोटी नदी का होना अपना एक विशेष महत्व और सौन्दर्य रखता है। इस नदी से कुछ आगे निकल कर 'लिखौरा' नामका गांव आता है। इस प्रकार अहार तक निरन्तर एक से एक बढ़िया प्राकृतिक दृश्य दिखाई देते हैं।

अहार की छटा—

अहार के निकट जब पहुंचते हैं तो चारों ओर सघन वृक्षों से आच्छादित ऊंची-नीची पहाड़ियों को देखकर किसी नई दुनियां का अनुमान होता है। जितनी बार मैं वहां पर गया हूं हर बार वहां की नैसर्गिक सुषमा में मुझे एक प्रकार की नूतनता, एक प्रकार का आकर्षण दिखाई दिया है। कहते हैं अति-परिचय से मन में अवज्ञा उत्पन्न होती है, पर अपनी बात मैं कहूं, अहार जाना मुझे सदा सुखकर प्रतीत होता है। श्री शांतिनाथ दि० जैन पाठशाला के बराण्डे में खड़े होकर चहुं ओर देखने से शिमला का स्मरण हो आता है।

अहार के समीप ही तीन विशाल सरोवर हैं। सबसे बड़ा 'मदन सागर' है, जिसका निर्माण चन्देल नरेश मदन वर्मन ने कराया था। उससे सटे हुए दो तालाब और हैं। वर्षाऋतु में अपनी-अपनी परिधि को लाघ कर वे आपस में मिल जाते हैं और तब दूर-दूर तक पानी ही पानी दिखाई देता है।

अभी २७ मई १९४३ को जब श्री नाथूराम जी प्रेमी तथा देवरी-निवासी श्री शिवसहायजी चतुर्वेदी के साथ मैं वहां गया था तो तीनों सरोवर एक हो रहे थे और उनकी लम्बाई साढे तीन मील की थी। दूसरा किनारा इधर से दिखाई नहीं देता था। इस विशाल जल-राशि से अहार का मनोहारी आकर्षण कई गुना अधिक हो जाता है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय के दृश्य देखने लायक होते हैं।

मूर्ति-संग्रह—

अहार का महत्त्व केवल उसके प्राकृतिक सौंदर्यके ही कारण नहीं है। वहां पर जो मूर्तियों का संग्रह है, वह भी उल्लेखनीय है। अहार के दो-ढाई मील दूर 'लड़वारी' नामक ग्रामसे निकलते ही मूर्तियां मिलने लगती हैं। तालाब के बांध पर एक विशाल मन्दिर के भग्नावशेष दिखाई देते हैं। जिन पत्थरों से उस मन्दिर का निर्माण हुआ था, उनमे से अधिकांश आज भी वहां अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़े हुए हैं। उनकी कारीगरी का अवलोकन कर मन आनन्द से भर जाता है। किसी जमाने में वह मन्दिर अत्यन्त विशाल रहा होगा। इधर-उधर पहाड़ियों पर

और भी बहुत से मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल मे वहां लगभग डेढ़-सौ मन्दिरों का समुदाय था और भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा के आसन पर जो लेख दिया हुआ है, उससे पता चलता है कि किसी समय एक बहुत बड़े घेरे मे 'मदन सागरपुर' नाम का वहां पर नगर बसा हुआ था। इधर-उधर परकोटों के जो चिन्ह मिलते हैं, उनसे उक्त कथन की सहज ही पुष्टि हो जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि कोई विद्वान लगन के साथ वहां का अन्वेषण करे।

अहार में इस समय ढाई, तीन सौ प्रतिमाओं का संग्रह है, जिनमे से अधिकांश खण्डित हैं। किसी का सिर नहीं है तो किसी का धड़। किसी का हाथ गायब है तो किसी का पैर। कहा जाता है कि यवनों ने अपनी धार्मिक कट्टरता के वशीभूत हो कर उनकी यह दशा कर डाली। लेकिन जो अंग अभी उपलब्ध हैं, उन्हें देखने पर उनके निर्माताओं की कला-प्रियता तथा कार्य-पटुता का अनुमान लग जाता है। इन मूर्तियों को प्राचीन वास्तु-कला का उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है। किसी के चेहरे पर अनुपम हास्य है तो किसी के गम्भीरता। जान पड़ता है कि यदि प्रवीण शिल्पकार के वश की बात होती तो वह निश्चय ही अपनी इन कृतियों को जीवन प्रदान कर देता और तब ये प्रति-माएँ स्वयं अपने साथ हुए मानव के अत्याचारों की करुण गाथाएं सुनातीं। किसी भी प्रतिमा को देख लीजिये। क्या मजाल कि उसकी सुडौलता में कहीं बाल-भर का भी अन्तर हो। मशीन की निर्जीव उंगलियों से आज बारीक से बारीक काम किया जा

सकता है, किन्तु उस युग की कल्पना कीजिये, जब मशीनें नहीं थीं और सारा काम इने-गिने दस्ती औज़ारों से होता था। जरा हाथ डिगा अथवा छैनी इधर-उधर हुई कि बना-बनाया खेल बिगड़ा सुन्दर कारीगरी और प्रतिमाओं की पालिश को देख कर आश्चर्य होता है।

भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा—

अहार क्षेत्र के अहाते मे इस समय तीन मन्दिर है और श्री शांतिनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला की इमारत तथा क्षेत्र-सम्बन्धी कुछ कमरे। मन्दिरों मे एक मन्दिर तो ऐसा है, जिसे मन्दिर कहना ही उचित न होगा और जिसमे कुछ मूर्तियो तथा वेदियों का संग्रह हो रहा है। दूसरा मन्दिर अभी गत वर्ष तैयार हुआ है और जिसका निर्माण बड़भारई की पचायत ने करवाया है। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण और प्राचीन भगवान शान्तिनाथ का मन्दिर है, जो बाहर से देखने मे बहुत ही मामूली सा जान पड़ता है। स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती कि उसके अन्दर इतनी विशाल प्रतिमा होगी। बाईस फीट की शिला पर अठारह फीट की भगवान शांतिनाथ की मूर्ति है। बांए पार्श्व मे ग्यारह फीट की भगवान कुन्थुनाथ की प्रतिमा है। कहा जाता है कि उसी के अनुरूप दाए पार्श्व में अरहनाथ भगवानकी प्रतिमा थी, जिसे या तो कोई लुटेरा उठा ले गया, या कहीं भूगर्भ मे विश्राम ले रही होगी। प्रस्तुत प्रतिमाएँ अत्यन्त ही भव्य हैं। उनके चेहरे के सौंदर्य और तेज को देखकर हम लोग आश्चर्य-

चकित रह गये। श्री नाथूराम जी प्रेमी का कथन था कि उन्हों ने जैनियों के बहुत से तीर्थ-क्षेत्र देखे हैं और भगवान शान्तिनाथ की इस प्रतिमा से भी विशाल प्रतिमाएँ देखी हैं, लेकिन इस जैसी भव्य और तेजस्वी प्रतिमा उन्होंने कहीं नहीं देखी।

इन प्रतिमाओं के आसनों पर जो शिला-लेख हैं, उनसे पता चलता है कि 'पापट' नामक शिल्पकारने उनका निर्माण किया था। लेख में दिया हुआ है कि 'पापट' वास्तु-शास्त्र का धुरन्धर विद्वान था। उसकी ये प्रतिमाएं निस्सन्देह अत्यन्त सराहनीय हैं।

इन प्रतिमाओं पर जिस प्रकार की पालिश हो रही है, कहा जाता है कि उस प्रकार की पालिश की प्रतिमाएं सातवीं शताब्दी के बाद कम ही मिलती हैं। कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि आठवीं शताब्दी के बाद उनका सर्वथा लोप ही हो गया। यदि यह सच है तो ये प्रतिमाएँ पुरातत्ववेत्ताओं के लिये अध्ययन की वस्तु हैं। लेखों में दोनों का निर्माणकाल सम्वत् १२३७ दिया हुआ है।

यदि खोज की जाय तो और भी मूर्तियां प्राप्त होंगी, ऐसी आशा है। पिछले वर्ष 'मदनसागर' से २५ मूर्तियों का उद्धार किया गया था। कहा जाता है कि यवनों के प्रहार से रक्षा करने के लिये जैनियों ने स्वयं मूर्तियों को मन्दिरों में से उठा २ कर जल-मग्न कर दिया था। तालाब जब सूखता है तो प्रायः मूर्तियां मिल जाती हैं।

पुरातत्व की दृष्टि से अध्ययन की आवश्यकता—

इन प्रतिमाओं का पुरातत्व की दृष्टि से अध्ययन होना

आवश्यक ही नहीं, नितान्त अनिवार्य है। अब तक जितनी प्रतिमाएँ वहां एकत्र की गई हैं, इनमें से ६५ प्रतिशत पर शिलालेख दिये हुए हैं। उनका यदि विधिवत् अध्ययन किया जाय तो बहुत सी बातों का पता लग सकता है। इसके अतिरिक्त पहाड़ियों पर जो मन्दिरों के भग्नावशेष हैं, उनकी खुदाई कराकर देखना चाहिये कि नीचे क्या निकलता है। अहार से लगभग आध मील या उससे भी कम फासले पर एक भोयरे के चिन्ह हैं और कहा जाता है कि वहां से पृथ्वी के भीतर ही भीतर एक सुरंग जाती है, जिसका दूसरा द्वार तालाब के किनारे है। सुरंग में जाने का मार्ग यद्यपि अब बन्द हो गया है, तथापि उसका निरीक्षण होना जरूरी है। भग्नावशेषों को देखने के लिये जब हम इधर-उधर घूम रहे थे तो एक जगह जहां मन्दिर के कुछ चिन्ह दिखाई देते थे, मेरी पत्नी को एक छोटी सी प्रतिमा के चेहरे का आधा भाग मिला। बड़ा ही सुन्दर था और खूब चमकीली मटियाले रंग की पालिश उस पर हो रही थी।

मूर्तियों का प्राप्त करना उतना कठिन नहीं है जितना कि उनकी रक्षा करना। आज कल मूर्तियों की चोरी खूब होती है। सुना है मूर्तियों को बेचकर बहुत से लोग धन कमाते हैं। यह हमारे लिए लज्जा की बात है। इस प्रकार के लुटेरों से मूर्तियों की रक्षा करनी चाहिए।

एक संग्रहालय चाहिये—

जितनी मूर्तियां अब तक वहां पर संग्रहीत हुई हैं, वे सब

अस्त-व्यस्त एक कमरे में पड़ी हैं। देखकर कष्ट होता है। क्या ये वही प्रतिमाएँ नहीं हैं, जिनकी मन्दिरों में पूजा होती है? इस प्रकार अव्यवस्थित रूप से पड़े होने के कारण न तो अच्छी तरह से देखा ही जा सकता है, न उनके शिला-लेखों का अध्ययन ही हो सकता है। सर्वप्रथम जब मैं वहां गया था तो सारी प्रतिमाओं को खुले मैदान में बुरी तरह से पड़ी देखकर मेरी आंखें भर आई थीं। पाठशाला के अध्यापक और क्षेत्र के मुनीम से पूछने पर पता चला कि वे तो सदैव से यों ही पड़ी हुई हैं। हृदय को बड़ा धक्का लगा। आठ सौ वर्षों से वे इस दशा में पड़ी धूप, वर्षा और जाड़े के प्रहार सह रही हैं और कोई उनकी देख-रेख करने वाला नहीं है। उनके निर्माताओं की आत्मा अपनी कला-कृतियों की इस दुर्दशा को देखकर कितना कष्ट पाती होगी।

इन सब मूर्तियों को व्यवस्थित रूप से रखने के लिए एक संग्रहालय की आवश्यकता है। उससे दर्शनार्थियों को समस्त प्रतिमाओं के दर्शन करने में तो सुभीता होगा ही, साथ ही शिला-लेखों का अध्ययन आसानी से किया जा सकेगा।

पाठशाला—

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला यों चलने को चल ही रही है, लेकिन उसमें जान नहीं है। विद्यार्थियों की संख्या बहुत ही सीमित है और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं है। क्षेत्र में जितनी जगह है, उसमें विद्यार्थियों के काम लायक साग, सब्जी आसानी से पैदा की जा सकती है; किन्तु उधर

कोई ध्यान दे तब न ? पाठशाला में सुधार की आवश्यकता है। अध्यापक महोदय को चाहिये कि क्षेत्र के परकोटे से बाहर की हरियाली से ही सन्तोष न कर लें। कुछ हरियाली उन्हें भीतर भी पैदा करनी चाहिए। बच्चों के दूध के लिए पाच-सात गायों का रखना परमावश्यक है।

दर्शकों को अपने विराट स्वरूप तथा अलौकिक सौंदर्य से प्रभावित करने वाली भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा के आदर तथा उसकी रक्षा की खातिर अहार तीर्थ को पुनः वही गौरव प्राप्त होना चाहिए, जो प्राचीन काल मे उसे प्राप्त था। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के इस वर्ष के सभापति साहू शान्तिप्रसाद जी की कानपुर अधिवेशन में की गई भविष्यवाणी एक दिन अवश्य ही पूर्ण होगी, ऐसा मेरा विश्वास है—

"हमे हर्ष है कि भगवान शान्तिनाथ की एक ऐसी भव्य और विशाल प्रतिमा को प्रकाश मे लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। जिसके समुचित प्रकाश में आने पर न केवल भारत ही बल्कि कला-प्रेमी ससार उसपर गर्व करेगा।"

टीकमगढ़ (सी० आई०)



(२)

आधुनिक अहार-नारायणपुर

[श्री ठाकुरदास जैन बी० ए०]

भारतवर्ष की वसुन्धरा मे किन-किन स्थलो पर पुरातन श्री और समृद्धि के केन्द्रस्वरूप विशाल नगरो के भग्नावशेष छिपे हुये है, इसका निश्चय करने के लिये उन स्थानो पर विशेष कठिनाइया उपस्थित नही होती जहां कि प्राचीन वास्तु और मूर्तिकला के अवशेष, मुद्राओं, शिलाओं और प्रतिमाओं के लेख तथा परम्परागत किवदन्तियां प्रचुरता से पाई जाती है, या जिनकी स्थिति आदि के विषय मे पुराणो, अन्य साहित्यिक ग्रन्थो एवं विदेशी यात्रियों द्वारा लिखित भारतीय वर्णनो मे स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। बुन्देलखण्ड में भी ऐसे स्थानों की संख्या न्यून नही है। जहां पुरातन गणराज्यों के समय तक की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं और जो उस समय मे असाधारण रूप से विख्यात और समृद्ध नगरी थी, वह एराकण्या (आधुनिक एरन) बुन्देलखण्ड के ही अन्तर्गत है। नव नागों की प्रसिद्ध पद्मापुरी नामक नगरी जिसका विष्णुपुराण मे उल्लेख है और जिसकी महिमा खजराहो के एक शिलालेख मे बड़े ही उदात्त वर्णन के साथ लिखी गई है, बुन्देलखण्ड के ही अन्तर्गत, ग्वालियर राज्य का आधुनिक पवाया नामक नगर निर्धारित किया गया है। इसी प्रकार उक्त पुराण-वर्णित कान्तिपुर (आधुनिक कुतवार), साञ्ची, कालञ्जर, खजु-

गढ़ो, महोबा, देवगढ़ आदि स्थानों मे बुन्देलखण्डकी पुरातन श्री के असीम आदर्श छिपे हुए हैं। वर्तमान मे जिन स्थानों मे मीलों तक धाराप्रवाह रूप से वास्तुकला या मूर्तिकला के अवशेष पाये जाते हैं, वहां पूर्वकाल मे समृद्धि-सम्पन्न नगरों की सत्ता अवश्य रही होगी। प्रस्तुत लेख मे एक ऐसे ही स्थान की चर्चा की जा रही है जहां के महत्वपूर्ण शिलालेख, प्रशस्त वास्तु और मूर्तिकलाके प्रचुर भग्नावशेष और असीम पुरातन वैभव की परम्परागत किं-वदन्तिया उस स्थान को समृद्धिशाली अतीत गौरव की पुरी सिद्ध करती हैं। यह स्थान ओरछा राज्य मे उसकी राजधानी टीकम-गढ़ से लगभग ग्यारह मील पूर्ववर्त्ती आधुनिक 'अहार-नारायणपुर' नामक दो गावों की सम्मिलित भूमि है।

अहार और नारायणपुर के मध्य का अन्तर लगभग तीन मील है। दोनों गावों की प्राकृतिक शोभा बड़ी ही मनोहर है। नारायणपुर में एक सरोवर के बाध पर, जो कि चन्देलकालीन ही प्रतीत होता है, उस समय के स्थापत्य के दो मन्दिर पाये जाते हैं, जिनमें से एक अधिकांश खण्डित अवस्था में ही खड़ा हुआ है। दूसरा भी अवश्य खण्डित रहा होगा, किन्तु उसका अबसे कुछ ही वर्ष पूर्व आधुनिक शैली से जीर्णोद्धार हो चुका है। जो मन्दिर खण्डित अवस्था में ही है उसमें एक शिला पर लगभग दो फीट दस इञ्च की लम्बाई और दो फीट दो इञ्च की चौड़ाई मे एक लेख प्राप्त हुआ है। इस शिलालेख की लिपि विक्रम की बारहवीं शताब्दी के लगभग की देवनागरी लिपि है और इसकी भाषा सुललित पद्यमय संस्कृत है। इसमें अठाईस पंक्तियां हैं। यद्यपि

उक्त लेख की दाहिनी ओर का कुछ भाग जीर्ण शीर्ण हो चुका है तथापि जितना भाग शेष है उसमें चन्देल नरेशों की वंशावली और उनके प्रशंसनीय कृत्यों का उत्तम रूप से उल्लेख पाया जाता जाता है। चन्देल नरेशों के शिलालेख अब तक प्राय: कालञ्जर महोबा, खजुराहो अजयगढ़, देवगढ़ और मदनपुर मे प्राप्त हुए हैं और वे वहां इस कारण कि उक्त स्थान चन्देल-काल में उनके राज्य के प्रमुख नगर थे। किन्तु यहां (नारायणपुर में) भी उन के इस शिलालेख के उपलब्ध होने से हमारा यह अनुमान कर लेना स्वाभाविक है कि यह नगर भी उनके समय मे असाधारण श्री और समृद्धि का केन्द्र रहा होगा।

नारायणपुर मे जितनी पुरातन मूर्तियां पाई जाती हैं, वे प्राय: सभी खण्डित हैं। वहां उस युग के विशाल भवनों के सुललित शिल्प कलामय पाषाणखण्ड भी प्रचुरता से यत्र तत्र पड़े हुये हैं। यहां से लेकर अहार ग्राम तक उक्त प्रकार की सामग्री बिखरी हुई पड़ी है। अहार के समीप की अनेक पहाड़ियों पर भी उक्त पुरातत्व के स्मारक पाये जाते हैं। अहार मे एक विशाल सरोवर है जिसे 'मदनसागर' कहते हैं। महोबा के मदनसागर की भांति यह भी चन्देल-नरेश मदनवर्म्मदेव का बनाया हुआ है। इसके तटपर भी चन्देलकालीन एक विशाल मन्दिर के भग्नावशेष विद्यमान हैं। इन भग्नावशेषों को स्थानीय वयोवृद्ध मदनेश्वर जी के मन्दिर के खण्डहर कहते हैं। यह मन्दिर भी नारायणपुर के मन्दिरों की भांति खण्डित किया गया होगा। मूर्तियां, जिनकी संख्या अहारमें सैकड़ों तक अनुमानित की जाती

है, सभी खण्डित अवस्था मे पाई जाती है। इन खण्डित मूर्तियों की कला गुप्तकालीन मूर्तिकला के समान ही महत्वपूर्ण है। सौम्य मुखाकृति, वेषभूषा और हस्त एव चरण-मुद्राओ की भाव-भङ्गी के सूक्ष्म प्रदर्शन के कारण यहां की ये मूर्तिया तत्कालीन भारतीय समुन्नत तक्षणकला के उत्कृष्ट आदर्श है।

यहां जैन-मन्दिरो और जैन-मूर्तियो के भी भग्नावशेष प्रचुरता से पाये जाते है। वर्तमान मे यद्यपि चन्देल शैली का यहा केवल एक ही मन्दिर है (क्योंकि शेष दो मन्दिर बहुत पश्चात के बने हुए हैं) और वह मन्दिर भी आधुनिक जीर्णोद्वार के कारण अपने निर्माण काल की वास्तुकला से अनेक दृष्टियों से भिन्न और पूर्व की अपेक्षा बहुत नीचा प्रतीत होता है, तथापि वहा पर सैकड़ों की संख्या मे उपलब्ध होने वाली जैनमूर्तियां और प्रचुरता से प्रचलित किंवदन्तियों से यह विदित होता है कि वहा उस समय मे अनेक गगनचुम्बी पाषाणमय जैनमन्दिर रहे होंगे। यहा की खण्डित मूर्तियोंके आसनो मे से प्राय प्रत्येक में संस्कृत-लेख विद्यमान है। इनसे ग्रहपत्यन्वय, खण्डेलवालान्वय, लम्ब-कञ्चुकान्वय, पौरपट्टान्वय, पुरवाटान्वय, मेढ़तवालान्वय, अवध्या-पुरान्वय, गोलापूर्वान्वय, जैसवालान्वय आदि जैनोके इतने अधिक अन्वयों (अन्तर्जातियां) का निवास सिद्ध होता है, जितने, वर्तमान में कदाचित् ही किसी बड़े से बड़े नगर की जैन समाज मे हो।

उक्त बहुसंख्यक शिलालेखों मे से यहा केवल एक ही का उल्लेख उपस्थित कर रहा हूं। यह लेख भी शान्तिनाथ भगवान

की परम सौम्य १८ फीट की अवगाहनावाली एक खड्गासन जैन-प्रतिमा के आसन मे लिखा हुआ है। यह लेख लगभग २ फीट ४ इञ्च की लम्बाई और ६ इञ्च की चौड़ाई मे है। इसकी लिपि और भाषा नारायणपुर वाले शिलालेख की ही लिपि और भाषा है। इसमें पंक्तियां केवल ६ है। यह शिलालेख इस प्रकार है —

पंक्ति १

ॐ नमो वीतरागाय ॥ ग्रहपतिवंशसरोरुहसहस्र-रश्मि: सहस्रकूटं यः। वाणपुरे व्यधितासीत् श्रीमानि

पंक्ति २

ह देवपाल इति ॥१॥ श्रीरत्नपाल इति तत्तनयो वरेण्य:। पुण्यैकमूर्तिरभवद्वसुहाटिकायां। कीर्त्तिर्जगत्त्रय

पंक्ति ३

परिभ्रमणश्रमार्त्ता यस्य स्थिराजनि जिनायतनच्छ-लेन ॥२॥ एकस्तावदनूनबुद्धिनिधिना श्री शान्ति-चैत्याल

पंक्ति ४

यो दिष्ट्यानन्दपुरे परः परनरानन्दप्रदः श्रीमता। येन श्रीमदनेशसागरपुरे तज्जन्मनो निर्म्मिमे। सोयं श्रेष्ठि-वरिष्ठगल्हण इति श्रीरल्हणाख्याद।

पंक्ति ५

भूत् ।।३।। तस्मादजायत कुलाम्बरपूर्णचन्द्रः श्री-जाहडस्तदनुजोदयचन्द्रनामा । एकः परोपकृतिहेतुकृता-वतारो धर्म्मात्मकः पुनरमो

पंक्ति ६

घसुदानसारः ।।४।। ताभ्यामशेषदुरितौघशमैकहेतुं निर्मापितं भुवनभूषणभूतमेतद् । श्रीशान्तिचैत्यमति नित्यसुखप्रदा

पंक्ति ७

तृ मुक्तिश्रियो वदनवीक्षणलोलुपाभ्याम् ।।५।। संवत् १२३७ मार्ग सुदि ३ शुक्रे श्रीमत्परमर्द्धिदेवविजयराज्ये ।

पंक्ति ८

चन्द्रभास्करसमुद्रतारका यावदत्र जनचित्तहारकाः । धर्म्मकारिकृतशुद्धकीर्त्तनं तावदेव जयतात् सुकीर्त्तनम् ।।६।।

पंक्ति ९

वाल्हणस्य सुतः श्रीमान् रूपकारो महामतिः । पापटो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन विम्बं सुनिर्मितम् ।।७।।

अनुवाद

वीतराग के लिये नमस्कार (है) ।

श्लोक १ — जिन्हों ने बाणपुर में एक सहस्रकूट चैत्यालय बनवाया, वे ग्रहपति वंश रूपी कमलों (को प्रफुल्लित करने) के लिये सूर्य्य के समान श्रीमान् देवपाल यहां (इस नगर में) हुये।

श्लोक २ — उनके रत्नपाल नामक एक श्रेष्ठ पुत्र हुए जो वसुहाटिका में पवित्रता की एक (प्रधान) मूर्ति थे। जिनकी कीर्ति तीनों लोकों मे परिभ्रमण करने के श्रम से थककर इस जिनायतन के बहाने ठहर गई।

श्लोक ३ — श्री रल्हण के, श्रेष्ठियों में प्रमुख श्रीमान् गल्हण का जन्म हुआ जो समग्र बुद्धि के निधान थे और जिन्हों ने नन्दपुर मे श्री शान्तिनाथ भगवान् का एक चैत्यालय बनवाया था और इतर सभी लोगों को आनन्द देने वाला दूसरा चैत्यालय अपने जन्मस्थान श्री मदनेशसागरपुर मे बनवाया था।

श्लोक ४ — उनसे कुलरूपी आकाश के लिये पूर्ण चन्द्र के समान श्री जाहड़ उत्पन्न हुये। उनके छोटे भाई उदयचन्द्र थे। उनका जन्म मुख्यता से परोपकार के लिये हुआ था। वे धर्म्मात्मा और अमोघदानी थे।

श्लोक ५ — मुक्तिरूपी लक्ष्मी के मुखावलोकन के लिये लोलुप उन दोनों भाइयों ने समस्त पापों के क्षय का कारण, पृथ्वी का भूषण स्वरूप और शाश्वतिक महान आनन्द को देने वाला श्री शान्तिनाथ भगवान का प्रतिबिम्ब निर्मापित किया।

संवत् १२३७ अगहन सुदी ३ — शुक्रवार श्रीमान परमर्द्दिदेव के विजय राज्य में।

श्लोक ६ — इस लोक में जब तक चन्द्रमा, सूर्य, समुद्र और तारागण मनुष्यों के चित्तों का हरण करते हैं, तब तक धर्म्मकारी का रचा हुआ सुकीर्तिमय यह सुकीर्तन विजयी रहे।

श्लोक ७ — बाल्हण के पुत्र महामतिशाली, मूर्ति-निर्माता और वास्तुशास्त्र के ज्ञाता श्रीमान पापट हुवे, उन्होंने इस प्रतिबिम्ब की सुन्दर रचना की।

स्पष्टीकरण—

इस लेख की प्रथम पंक्ति में बाणपुर के जिस सहस्रकूट चैत्यालय का उल्लेख आया है वह वहां अब भी विद्यमान है। यद्यपि उसकी भी अधिकांश मूर्तियां खण्डित अवस्था में हैं, तथापि वे सभी मूर्तियां और चैत्यालय उत्कृष्ट शिल्पकला के उत्तम आदर्श हैं। इस स्थानमें भी प्राचीन समृद्धि के बहुसंख्यक स्मारक पाये जाते जाते हैं। उसके समीप बाईस भुजा के गणेश जी की भी एक मूर्ति है। यह स्थान अहार नारायणपुर से १८ मील पश्चिम में है।

दूसरे श्लोक मे 'वसुहाटिकाया' पद आया है। इससे विदित होता है कि यह उस नगरी का पूर्व नाम रहा होगा।

इस श्लोक में वर्णित नन्दपुर उस समय में अवश्य एक प्रसिद्ध नगर रहा होगा। जो सम्भवतया इस स्थान से अधिक दूर न होगा। पुरातन नन्दनगर, आश्चर्य नहीं कि, इसी नन्दपुरका नाम हो।

इस श्लोक में 'मदनेशसागरपुरे' पद आया है। यहां की

अन्य मूर्तियों के लेखों में भी यह नाम है। जैसा कि पूर्व में भी लिखा जा चुका है, अहार के सरोवर को भी वर्तमान समयमें 'मदनसागर' कहते हैं, अतः मदनेशसागरपुर या मदनसागरपुर उस समय में इसी नगर का नाम रहा होगा। मदनवर्म्मदेव नामक नरेश, जिनके नाम पर इस नगर का नाम पड़ा था, चन्देल नरेशों मे सबसे प्रतापी हुए हैं। अहार से २२ मील दूरवर्ती श्री दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र पपौरा, नावई और बंदा के शिलालेखों मे भी इस नरेश का उल्लेख आया है। इनके समय मे चन्देल राज्य अपनी उन्नति के सर्वोच्च शिखरपर पहु च चुका था। इन के वि० संवत् ११८६ से वि० सं० १२२० तक के शिलालेख पाये जाते हैं। इस नगर का 'मदनेशसागरपुर' नामकरण होने के पूर्व मे भी यहां एक विशाल नगर रहा होगा, जिसका पूर्व नाम 'वसुहाटिकापुरी' होगा।

इसमें देवपाल के पुत्र रत्नपाल, रल्हण के गल्हण और गल्हण के जाहड़ और उदयचन्द्र बताये गये हैं, रत्नपाल और रल्हण के बीच में क्या कुछ पीढ़ियां छोड़ दी गई हैं, यह नहीं कहा जा सकता। पर 'श्री रल्हणाख्यात्' पद से यह भी सम्भा-वना की जा सकती है कि रत्नपाल का ही नाम रल्हण था, यद्यपि भाषा के नियमों के अनुसार रत्नपाल का अपभ्रंश रल्हण नहीं होता। तीसरे श्लोक में 'नन्दपुरे परः परनरानन्दप्रदः' और 'श्रेष्ठिवरिष्ठ गल्हण इति श्रीरल्हणाख्याद्' के अनुप्रास बड़े ही मनोहर हैं।

इसमें श्रीमत्परमर्द्धिदेव के विजयराज्यका उल्लेख है। यह नरेश मदनवर्म्म के पश्चात् होने वाले कीर्तिवर्म्म नरेश का उत्तर-वर्ती था। कीर्त्तिवर्म्म का शासनकाल एक वर्ष के लगभग ही रहा था। परमर्द्धिदेव के शिलालेख प्रायः खजुराहो, महोबा, अजयगढ़, कालञ्जर और मदनपुर में पाये जाते हैं। नीचे लिखे हुये शिलालेख से यह विदित हो जायगा कि यह नरेश भी अपने समय का एक प्रतापी राजा था। यह शिलालेख कालञ्जर के नीलकण्ठ जी के मन्दिर में विद्यमान है :—

आकाशप्रसर, प्रसर्पत दिशस्त्वं पृथ्वि, पृथ्वी भव, प्रत्यर्चीकृतमादिराजयशमां युष्माभिरुज्जृम्भितम्। अद्य श्रीपरमर्द्धिपार्थिवयशो राशेर्विकाशोदयाद्, बीजोच्छ्वाम-विदीर्णदाडिममिव ब्रह्माण्डमालोक्यते।

कीर्त्तिस्ते नृप दूतिका मुररिपोरंकेस्थितामिन्दिरामा-नीय प्रदयौ तवेति गिरिशः श्रुत्वार्धनारीश्वरः। ब्रह्मा-भूच्चतुराननः सुरगुरुश्चक्षुः सहस्रं दधौ, स्कन्दो मन्दमति-र्विवाहविमुखो धत्ते कुमारव्रतम् ॥

नागो भाति मदेन, कं जलरुहैः पूर्णेन्दुना शर्वरी, शीलेन प्रमदा, जवेन तुरगो, नित्योत्सवैर्मन्दिरम्। वाणी व्याकरणेन, हंसमिथुनैर्नद्यः सभा पण्डितैः, सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमती, लोकत्रयं विष्णुना।

अनुवाद

हे आकाश ! तू फैल जा, हे दिशाओ ! तुम भी फैल जाओ, हे पृथ्वी ! तू भी अधिक लम्बी चौड़ी हो जा। तुम सबने पूर्ववर्त्ती नरेशों के यश विस्तार को प्रत्यक्ष देखा है। आज परमर्द्धिदेव नरेश के यश के समूह की वृद्धि से ब्रह्माण्ड इस प्रकार फटा हुआ सा जान पड़ता है, जिस प्रकार कि बीजों के उच्छ्वास से अनार का फल।

हे राजन् ! कीर्त्ति आपकी दूती हो रही है। उसने विष्णु भगवान् के अङ्क मे स्थित लक्ष्मी को लाकर आपको दे दिया है। यही सुनकर मानो शिवजी अर्धनारीश्वर और ब्रह्मा जी चतुर्मुख हो गये है; इन्द्र ने एक सहस्र नेत्र धारण कर लिये हैं और बिचारे मन्दमति स्कन्द ने तो विवाहसे विमुख होकर यावज्जीवन कुमार बने रहने का व्रत ले लिया है। हाथी की शोभा मद से है। जल की शोभा कमलों से है। रात्रि की शोभा पूर्णचन्द्रसे है। स्त्री की शोभा शील से है। अश्व की शोभा वेग से गमन करने से है। मन्दिर की शोभा निरन्तर उत्सवों के होते रहने से है। वाणी की शोभा व्याकरण से है। नदियों की शोभा हंस-युगलों से है। सभा की शोभा पण्डितों से है। कुल की शोभा अच्छे पुत्र से है। पृथ्वी की शोभा आप से है और तीनों लोकों की शोभा विष्णु भगवान से है।

पृथ्वीराज चौहान ने वि० सं० १२३९ में परमर्द्धिदेव (राजा परमाल) की राजधानी महोबा पर आक्रमण किया था।

इसमें पृथ्वीराज चौहान की विजय हुई थी। यह उल्लेख मदन-पुर के वि० संवत् १२३६ के तीन शिलालेखों में पाया जाता है। विदित होता है कि इस आक्रमण में पृथ्वीराज ने परमर्द्धिदेव से धसान नदी के पश्चिम का भाग ले लिया था और तब से चन्देल राज्य का वैभव घटने लगा।

अहार-नारायणपुर के अन्य सारगर्भित शिलालेखों एवं महत्वपूर्ण पुरातत्व की सामग्री का उल्लेख स्थानाभाव के कारण करना सम्भव नहीं है।

टीकमगढ़ (मध्यभारत)



(३)

बुन्देलखंडकी विशाल और सुन्दर मूर्ति

[श्री नाथूराम प्रेमी]

'मधुकर' में अहार-क्षेत्र के सम्बन्ध मे कई लेख निकल चुके हैं। उन्हें पढ़ने के बाद अनेक बार इच्छा हुई कि इस स्थान के स्वयं दर्शन किये जांय। अभी जब २३ मार्च को बन्धु-वर पं० बनारसी जी चतुर्वेदी और श्री यशपाल जी के आग्रह से कुण्डेश्वर आना हुआ तब अनायास ही यह अवसर मिल गया और देवरी निवासी पं० शिवसहाय चतुर्वेदी और श्री यशपाल जी के साथ २७ तारीख को अहार के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहां पर अन्य तीर्थ-स्थानों की तरह अगणित मन्दिर नहीं हैं।

केवल एक ही साधारण सा मन्दिर है, जो बाहर से देखने में नितान्त दरिद्र प्रतीत होता है, परन्तु उसके भीतर मूर्ति-शिल्प का जो विराट सौन्दर्य देखा, उसके सामने सैकड़ों विशाल मन्दिर और विपुल प्रतिमा-संग्रह नगण्य जान पड़े। इस मन्दिर की मुख्य प्रतिमा श्री शान्तिनाथ भगवान की है, जो १८ फीट ऊंची है। उसकी बगल में दाहिनी ओर दूसरी ११ फीट की प्रतिमा कुन्थुनाथ भगवान की है, जो बिलकुल उसी का प्रतिरूप है। मुख्य प्रतिमा की मुख-मुद्रा पर जो प्रसन्न गाम्भीर्य है, वह अपूर्व है और उसे देखते-देखते तृप्ति नहीं होती। कुन्थुनाथ भगवान की प्रतिमा पर स्मिति के स्थान पर गम्भीर परिचिन्तन लक्षित होता है। बांई ओर जो स्थान खाली है, वहां भी ११ फीटकी संभवतः अरनाथ की प्रतिमा और रही होगी। पास में जो खण्डित प्रतिमाओं और उनके अंग-प्रत्यंगों का ढेर लगा हुआ है, उसमें एक घुटने के नीचे का अंश है, जो आकार प्रकारमें उसी प्रतिमा का प्रतीत होता है। प्रयत्न करने पर, सम्भव है, इधर-उधर उसके अन्य अंश भी मिल जांय।

ये प्रतिमाएं सं० १२३७ मे चन्देल नरेश परमर्द्धिदेव के राजत्वकाल में प्रतिष्ठित हुई थीं। प्रतिमा के पाद-मूल में जो लेख है, उससे मालूम होता है कि इन प्रतिमाओं के प्रतिष्ठापक जाहड़ और उदयचन्द्र नाम के दो भाई थे, जिनका जन्म गृहपति या गहोई वंश में हुआ था। इसी वंश के पूर्वज सेठ देवपाल ने बानपुर में सहस्रकूट नाम का और रल्हण ने नन्दपुर में शान्ति-

नाथ भगवानका चैत्यालय बनवाया था। इन मूर्तियोंके बनाने वाले शिल्पी का नाम पापट भी उक्त शिलालेख में दिया हुआ है। पापट वास्तुशास्त्र के ज्ञाता और अत्यन्त बुद्धिमान थे। उनके पिता का नाम वाल्हण था।

कम से कम मैंने ऐसी भव्य, सौम्य और सुन्दर मूर्ति अब तक नहीं देखी। मैं तो समझता हूं कि इस महान् शिल्पी ने सुप्रसिद्ध गोम्मटेश्वर की मूर्ति के निर्माता की कला-प्रतिभा को भी अपने से पीछे छोड़ दिया है। इस मूर्ति का सौष्ठव और अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रचना हमारे सम्मुख एक जीवित सौन्दर्यमूर्ति को खड़ी कर देती है। अवश्य ही इस महान शिल्पीको चुनने वाले धनिक-बन्धु कला-पारखी होंगे, क्योंकि उन्होंने जितनी उदारता इन मूर्तियों के निर्माण मे प्रकट की है उतनी मन्दिर को विशाल बनाने में नहीं। जैन-सम्प्रदाय के तीर्थ-स्थान अगणित मन्दिरों से पटे पड़े हैं। उन मन्दिरों में जितना द्रव्य व्यय हुआ है उसका सहस्रांश भी ऐसी अपूर्व कला-कृतियोंके निर्माणमे खर्च नहीं किया गया है, और यह समाज के धनीमानी लोगो की कला-विमुखता का द्योतक है।

शिलालेखों से इस स्थान का नाम 'मदनसागरपुर' मालूम होता है और यह स्थान मदनसागर नामक विशाल सरोवर के पास ही है। इसके आस-पास बीसों विशाल मन्दिरों के भग्नावशेष पड़े हुए हैं, जिनसे पता चलता है कि पहले यह बहुत समृद्ध रहा होगा। निकटवर्ती पहाड़ियों पर घूम-फिर कर हमने अनेक भग्नावशेषों को देखा। कहा जाता है कि इन अवशेषोंके हजारों

गाडी पत्थर इमारतों के काम में लाने के लिये अन्यत्र ले जाये गये हैं। मूर्तियां भी इधर-उधर पडी हुई मिलती हैं। दो-ढाई सौ के लगभग खण्डित मूर्तियां यहां पर संग्रह भी की जा चुकी हैं। गत वर्ष मदनसागर में से कोई २५ खण्डित प्रतिमाओं का उद्धार किया गया था। आशा की जाती है कि प्रयत्न करने पर उक्त सरोवर में से और भी प्रतिमाएं प्राप्त होंगी।

जितनी प्रतिमाएँ अब तक उपलब्ध हुई हैं उन सभी में प्राय लेख हैं और अधिकांश बडी प्रतिमाओं पर ऐसी बढ़िया पालिश हो रही है कि लगभग आठ सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनकी चमक ज्यों की त्यों बनी है। एक उल्लेखनीय बात यह है कि यहां की सभी प्रतिमाएं विक्रम की तेरहवीं शताब्दी की हैं और इससे यह अनुमान करना गलत न होगा कि यह स्थान, उजड जाने के बाद, अब से कुछ पहले तक, लोक-लोचन से अगोचर ही रहा है, अन्यथा यहां पर भी कुछ ही शताब्दियों में सोनागिरि, पपौरा और कुण्डलपुर आदि के समान अगणित मन्दिर बन गये होते। अभी हाल ही में बडमाड़ई की पंचायत की ओर से एक छोटा सा मन्दिर बनाया गया है जो उक्त मनो-वृत्ति का ही द्योतक है। खतरा है कि आगे चलकर और भी धनिकों की कृपादृष्टि मन्दिर बनाने की ओर न हो जाय। सच-मुच ही यह एक अद्भुत मनोवृत्ति है कि जीर्णोद्धार के लिये लाखों रुपये की आवश्यकता होने पर भी लोग उस ओर जरा भी ध्यान न देकर अपने नाम के पृथक-पृथक झण्डे गाड़ने के

तैयार हो जाते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि समाज के धनामानी महानुभाव नवीन मन्दिर बनवाने की कीर्ति-लालसा छोड़ कर यहां की प्राचीन कला को सुरक्षित करने और इधर-उधर जमीन के नीचे पड़े हुए अगणित कीर्ति-चिन्हों का उद्धार करने की ओर प्रवृत्त हों।

इस स्थान पर जितनी प्रतिमाएं मैंने देखीं, वे लगभग सभी अत्यन्त ही मनोज्ञ हैं। बहुत सा काम तो उन पर इतनी बारीकी के साथ किया गया है कि देखकर आश्चर्य होता है।

पाठक यह जान कर प्रसन्न होंगे कि इस क्षेत्र के विषय में आन्दोलन करने वाले श्री यशपाल जी के प्रयत्न से एक संग्रहालय बनने का प्रयत्न शुरू हो गया है। इस कार्य के लिये स्व० ब्र० शीतलप्रसाद जी की कृपा से एक हजार रुपये भी प्राप्त हो गये हैं। हमें आशा करना चाहिए कि इस रकम से कार्य प्रारम्भ हो जायगा और दूसरे महानुभावों का ध्यान भी उस ओर जायगा। मेरा अनुमान है कि इस कार्य में कम से कम तीन-चार हजार रुपयों की जरूरत होगी।

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ है कि अहार की ओर समाज के महानुभावों का ध्यान गया है। कटनीके स० सि० धन्यकुमार जी ने अहार सम्बन्धी अब तक की सामग्री को एक पुस्तिका में संगृहीत कर प्रकाशित करने के लिए १२५) भेजे हैं तथा अहार की उन्नति के हेतु श्री अजितप्रसाद जी वकील ने २५) रुपये। मैं आशा करता हूं कि समाजके धनिक लोग अपना पूर्ण सहयोग देंगे।

चूंकि जीर्णोद्धार का कार्य भी प्रारम्भ होने वाला है, अत: मैं एक बात और कहना चाहता हूं कि जिस मन्दिर में भगवान शान्तिनाथ की विशाल प्रतिमा है, उसका आगे का द्वार बहुत ही छोटा है। मुझे मालूम हुआ है कि पहले वह वैसा न था। इससे मन्दिर के भीतर प्रकाश पूरी तौर पर नहीं आ पाता और प्रतिमा की मुखमुद्रा को देखने के लिए लालटेन की आवश्यकता होती है। जब तक द्वार को अधिक बड़ा न बनाया जाय तब तक समुचित प्रकाश के लिए ऊपर मन्दिर में एक छोटा सा जंगला लगा देना चाहिये।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४



(४)

भारतवर्ष का अद्वितीय जैन-तीर्थ

—अतिशय क्षेत्र अहार जी—

क्या इतनी सुन्दर मूर्तियां अन्यत्र होंगी ?

[पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ]

बुन्देलखण्ड को यह सौभाग्य प्राप्त है कि वहां अनेक दि० जैन तीर्थक्षेत्र विद्यमान हैं। उनमें से अतिशय क्षेत्र अहार भी एक है। किन्तु अधिकांश जैन-जनता इससे अपरिचित है;

इतना ही नहीं, बल्कि बुन्देलखण्ड प्रान्त का जैनसमाज भी अभी तक इससे परिचित नहीं है। संवत् १९६० तक यह महान् क्षेत्र बिलकुल अंधकार में था। जहां इस क्षेत्र के मन्दिर हैं वहां घोर जंगल था। विकराल वृक्षसमूह के बीच इन मन्दिरों का कोई पता ही नहीं था, किन्तु अब उसकी स्थिति वैसी नहीं रही है।

'जैनमित्र' में इस क्षेत्र की विज्ञप्तियां प्रकाशित होती रहती थीं। इस लिए कई वर्ष से इच्छा थी कि अहार जी के दर्शन करूं, किन्तु ललितपुर-महरोनी तक कई बार जाने पर भी अहार जी जाने का मौका नहीं पाया। गत अप्रैल महीने की २१ तारीख (१९४१) को अहार के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। विशाल वन के बीच और पहाड़ियों के नीचे यह क्षेत्र है। वहां दो प्राचीन मन्दिर हैं। उनके चारों ओर बहुत बड़ा कोट खिंचवा दिया गया है। मन्दिरों की मरम्मत हो गई है। इसी अहाते के भीतर पाठशाला भी है। इस लिए अब यह स्थान बहुत मनोहर मालूम होता है। थोड़ी ही दूर 'मदनसागर' नाम का तीन मील लम्बा व चौड़ा तालाब है। सचमुच ही यह तालाब सागर से कम नहीं है। कहते हैं कि जब अहार क्षेत्र का कोई प्रबन्ध नहीं था तब अन्यभक्त जैनों ने इस विशाल तालाब में गाड़ियां भरभर कर के हजारों खण्डित जैन-मूर्तियां डाल दी थीं।† इसका

---

† कुछ लोगों का यह भी कथन है कि मूर्तियों को खण्डित होने से बचाने के लिए उन्हें तालाब में जल-मग्न कर दिया गया था और यही बात सही मालूम होती है, क्योंकि गत वर्ष पच्चीस अखण्डित प्रतिमाओं का इसी तालाब से उद्धार किया गया था।

—सम्पादक

कारण यह है कि खण्डित मूर्तियों को जलमग्न करने की मूर्खता-पूर्ण प्रथा प्राचीन समय से चली आ रही है। इसीका अनुकरण करके कुछ जैनोंने यह अनर्थ कर डाला था। अब उन प्रतिमाओं का प्राप्त करना बहुत कठिन प्रतीत होता है। न जाने मूर्ख लोगों की इस मूर्खता से कितनी उत्तमोत्तम प्रतिमाएँ, शिलालेख और अन्य उपयोगी सामग्री जलमग्न हो गई होगी।

क्षेत्र, प्रतिमाओं, शिलालेखों और अन्य साधनों से ज्ञात होता है कि विक्रम की १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और १३ वीं के पूर्वार्ध में 'मदनसागरपुर' नाम का कोई समृद्ध नगर था और वह चन्देलकालीन उच्च शिल्पकला की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ था। वहां पर दिगम्बर जैनों की ८-१० उपजातियों का निवास था, क्योंकि वहां की प्रतिमाओं पर जो संस्कृत भाषामें लेख हैं उन में खण्डेलवाल, लम्बकञ्चुक, पौरपट्ट, पुरवाट, मेड़तवाल, अव-धपुर, गोलापूर्व, जैसवाल आदि अन्वयों (उपजातियों) का उल्लेख पाया जाता है। यहां की तमाम मूर्तियों का निर्माणकाल सं० ११९९ से १२५० तक का कहा जा सकता है। भगवान नमिनाथ स्वामी की एक मूर्ति पर सं० ११९९ का लेख है, जो सब से पुराना माना जाता है।

सब से पहले हम शान्तिनाथ स्वामी के मन्दिर में गये। बाहर से यह मन्दिर इतना बड़ा नहीं मालूम होता जितनी विशाल प्रतिमा इस में विराजमान है। एक शिला पर भगवान शान्ति-नाथ स्वामी की १८ फीट ऊंची अत्यन्त मनोहर खड्गासन प्रतिमा

है। उसके दर्शन करके मैं मन्त्र-मुग्ध सा रह गया। प्रतिमाजी का अनिद्य सौन्दर्य और अनुपम रचना-सौष्ठव देखते ही बनता था। ऐसा लगता था कि घण्टों इन्हीं के दर्शन किया करें। इस विशालकाय प्रतिमा की ८०० वर्ष पूर्व की पालिश ऐसी लगती है जैसे आज ही की गई हो।

इस प्रतिमा की बाईं ओर भगवान कुन्थुनाथ स्वामी की ११ फीट ऊची भव्य प्रतिमा है। उसका शिलालेख कुछ टूट गया है। दाहिनी ओर भी इतनी ही बडी (११ फीट) भगवान अरहनाथ स्वामी की प्रतिमा थी, किन्तु उसका कोई पता नही चलता। अभी ही कुछ समय पूर्व उसका एक पैर मिला है, जो गुड़ बनाने की एक भट्टी मे कई वर्ष से लगा हुआ था। आश्चर्य तो यह है कि वर्षों तक भट्टी की भयंकर आंच लगते रहने पर भी उस पैर की पालिश अभी तक वैसी ही चमक रही है जैसी भगवान शांतिनाथ और कुन्थुनाथ की प्रतिमाओ की है। बड़े बड़े विशेषज्ञ इन प्रतिमाओं की पालिश का भेद नहीं जान पाये। इनका निर्माता 'पापट' नाम का कोई महान कलाकार था। धन्य है उस की कला को।

भगवान शांतिनाथ स्वामी की प्रतिमा के आसनपर अत्यन्त सुन्दर लेख खुदा हुआ है, जो दो फीट ४ इंच लम्बा और ६ इंच चौड़ा है। उसमें कुल ६ पंक्तियां और ७ श्लोक हैं। श्लोकोंकी रचना बहुत ही सुन्दर है।

इसी मन्दिर के बाहर चौक की दीवालों मे कुछ खण्डित

प्रतिमायें लगा दी गई हैं। इनमें से सभी प्रतिमाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। उनकी सौम्य मुखाकृति, हाथों, पैरों और उंगलियों की भावसूचक सुन्दर रचना सहस्र नेत्रों से भी नहीं देखी जा सकती। मैं तो दावे के साथ कह सकता हूं कि ८०० वर्ष पूर्व बनाई गई इन सुन्दर प्रतिमाओं के समान प्रतिमाएं आज के इस यन्त्रयुग में मोम की बनाना मुश्किल है। मन्दिर के बाहर की एक खण्डित प्रतिमा पर बहुत ही सुन्दर साहित्यिक श्लोक लिखे गये हैं। उन में से एक इस प्रकार है —

कमलानिवासवमतिः, कमलादलाक्षः प्रसन्नमुखकमलः।
बुधकमलकमलबन्धुः जीयात् कमलदेव इति॥

शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा का प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

ग्रहपतिवंशसरोरुह, सहस्ररश्मिः सहस्रकूटं यः।
वाणपुरे व्यधिताशीत् श्रीमानिह देवपाल इति॥

इससे ज्ञात होता है कि जिन्होंने बानपुर में एक सहस्रकूट चैत्यालय बनवाया, वे गृहपति वंशरूपी कमलों के लिये सूर्यसमान श्रीमान देवपाल इस नगरमे हुए हैं। अर्थात् यहां व वहांकी मूर्तियों के निर्माता एक ही हैं। वहां पर भी शांति, कुन्थु और अरहनाथ स्वामीकी प्रतिमाएँ हैं। बानपुरका सहस्रकूट चैत्यालय बननेके बाद अहार में मूर्तियों का निर्माण हुआ था। आज भी बानपुर में (जो महरौनी और टीकमगढ़ के बीच में है) वह सहस्रकूट

चैत्यालय विद्यमान है, जिसकी सभी मूर्तियां उत्कृष्ट शिल्पकलाकी आदर्श हैं।

शांतिनाथ भगवान की मूर्ति के शिलालेख के तीसरे श्लोक से यह भी विदित होता है कि इसी प्रकार का एक दूसरा शांतिनाथ भगवान का चैत्यालय नन्दपुर में बनवाया गया था। वह श्लोक इस प्रकार है—

एकस्तावदनूनबुद्धिनिधिना श्री शान्तिचैत्यालयो,
दिष्ट्यानन्दपुरे परः परनरानन्दप्रदः श्रीमता।
येन श्रीमदनेशसागरपुरे तज्जन्मनो निर्म्मिमे।
सोऽयं श्रेष्ठिवरिष्ठगल्हण इति श्रीरल्हणाख्यादभूत्॥

शांतिनाथ भगवान की इस महत्तम भव्य मूर्ति पर "संवत् १२३७ मार्ग० सुदि ३ शुक्रे श्रीमत्परमर्द्धिदेव राज्ये" खुदा हुआ है

दूसरे मन्दिरमे करीब १०० अखण्डित मूर्तियां एकत्रित कर के विराजमान की गई है। इन मूर्तियो की शांत मुद्रा, विविध भाव और सजीवता सी देखकर महान आश्चर्य होता है। यहा पर पुरातत्व की बहुत सामग्री है। एक पाषाण में काटे गये गोल गोल शिलाखण्ड वृहत और उनपर खुदे हुए लेख अद्भुत मालूम होते हैं। मन्दिर के पास ही जमीन मे असंख्य प्रतिमाऐ दबी हुई हैं। कुछ समय पूर्व वहां पर तनिक सी खुदाई करने पर ३२ सुन्दरतम प्रतिमाऐं मिली थीं। फिर न जाने क्यों वहां खुदाई बन्द कर दी गई ? अभी भी यदि प्रयत्न किया जाय और

आर्थिक व्यवस्था हो सके तो वहा अनेक मन्दिर, प्रतिमाएं और और शिलालेख मिल सकते है।

यहा की प्रत्येक मूर्ति पर शुद्ध संस्कृत मे स्पष्ट अक्षरो मे लेख खुदे हए हैं। इस लिए प्रत्येक मूर्ति अपना एक इतिहास लिए हुए विराजमान है।

चन्दावाडी, सूरत



(५)

प्राचीन शिल्प-सौन्दर्य का लीला-क्षेत्र अहार

[श्री शिवसहाय चतुर्वेदी]

श्री नाथूराम जी प्रेमी के साथ मुझे भी अहार क्षेत्र पर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अहार टीकमगढ़ से बारह मील की दूरी पर है। रास्ता कच्चा, पहाड़ी और ऊबड़-खाबड़ है। हमारे सागर जिले के मार्ग जिस प्रकार एक के पश्चात् एक पर्वत श्रेणियों को काटते हुए, ऊंची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी और ठांटी घाटियों मे होकर कहीं सघन वन और कहीं हरे-भरे खेतों मे से होकर गुजरते हैं, वैसे सघन वन और अधिक उतार-चढ़ाव की ठांटी घाटियों वाले रास्ते इधर नहीं हैं। यहां की भूमि बहुत कुछ समतल है। काश्तकारी के योग्य अच्छी ज़मीन भी यहां

कम दिखाई पड़ी। फिर भी पार्वत्य-प्रदेश की बहुलता के कारण यहां का भूभाग भी अत्यन्त मनोरम और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

अहार एक छोटा गांव है, जो 'मदनसागर' नामक एक बड़े तालाब के किनारे पर बसा हुआ है। तालाब की लम्बाई तीन मील की बतलाई जाती है। कहते हैं इस तालाब के निर्माता चन्देल नरेश मदनवर्मन हैं। तालाब के किनारे एक चन्देल-कालीन मन्दिर के भग्नावशेष अब भी मौजूद हैं। शिलालेखों में अहार का नाम 'मदनसागरपुर' लिखा मिलता है। सम्भव है मदनसागर बन जाने के पश्चात् इस गांव का नाम तालाब तथा मदनदेव के नाम पर 'मदनसागरपुर' रखा गया हो।

अहार में खड़े होकर देखो तो चारों ओर पहाड़ों की चोटियां अपना सिर ऊंचा किए खड़ी दिखाई देती हैं। पास ही सघन वन है। तालाब के पास वाली ज़मीन बहुत उर्वरा है। चैत्रके महीने में गेहूंकी फसल कट जाने के पश्चात् तालाबके पानी से खेतों को प्लावित करके उसमें धान, उर्द और बराई बोते हैं। तालाब के बांध पर खड़े होकर देखने से इस चैत्र-वैसाख के महीने में खेतों में हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है, जो बहुत सुहावनी लगती है।

अहार लड़वारी और नारायणपुर इन तीनों गांवों के आस-पास तथा तालाब के किनारे-किनारे पाषाण की अगणित खण्डित मूर्तियां पड़ी हैं। मन्दिरों के भग्नावशेषों की अनेकों शिलाएं

जो यत्र तत्र बिखरी पड़ी हैं, उनमें से अधिकांश शिल्पकला की सूक्ष्मातिसूक्ष्म कारीगरी से परिपूर्ण है। बड़े-बड़े पत्थरों और शिलाओं पर कैसी विचित्र कारीगरी की गई है, देखकर मन में विस्मय पैदा हुए बिना नहीं रहता। सागर जिले में देवरी कस्बे से चार मील पूर्व की ओर मड़खेरा नामक एक स्थान है। अहार के समान वहां भी प्राचीन खण्डहरों और नाना प्रकार की मूर्तियों और चित्रकला से परिपूर्ण पत्थरों की प्रचुरता है। वहा के खण्डहरों के पाषाणों को जो प्राचीन शिल्पकला के एक अद्भुत नमूने हैं, आस-पास के गांव वाले ले जाते हैं और अपने मकान चबूतरा आदि में लगाते हैं। बीना-क्षेत्र के जैन-मन्दिर अधिकांश मड़खेरा से लाए हुए पत्थरों से ही बने हैं।

अहार को जैन लोग अतिशय क्षेत्र कहते हैं। किंवदन्ती है कि एक व्यापारी गाड़ियों में जस्ता भरा कर लाया और रात्रि को यहां ठहरा। इस भूमि के पुण्य प्रभाव से जस्ता चांदी बन गया। इसी किंवदन्ती ने इस स्थान को अतिशय क्षेत्र का पद प्रदान किया है। जस्ता को चांदी बनाने की क्षमता इस भूमि में पहले कभी रही हो या अब है, यह सन्देह का विषय है। मैं समझता हूं इस क्षेत्र में श्री शांतिनाथ स्वामी की अतिशय कलापूर्ण विराट भव्य मूर्ति स्थित है, केवल इसी कारण इसे अतिशय क्षेत्र कहा जाना चाहिए।

क्षेत्र में एक छोटा सा प्राचीन मन्दिर बना हुआ है, जो बहुत ही साधारण और नगण्य दिखाई देता है। उसका प्रवेश-

द्वार भी बहुत छोटा है। पर जब भीतर जाकर देखा तो इस छोटे से मन्दिर के भीतर कला का बहुमूल्य कोष भरा पाया; मानो गुदड़ी में लाल छिपा हो। इस मन्दिर में प्रधान प्रतिमा श्री शांतिनाथ स्वामी की हैं, जो १८ फीट ऊंची है। इतनी भव्य, सौम्य और प्रसन्नकांति प्रतिमा अभी तक मेरे देखने में नहीं आई प्रतिमा का अंग-सौष्ठव देखने योग्य है। चतुर शिल्पीकी निपुण कलम ने मानो इस मूर्ति के निर्माण करने में अपनी सारी चतुराई, प्रतिभा लगा दी है। खेद है कि इस मूर्ति का एक हाथ टूट गया है जो बाद में सीमेंट से बना दिया गया है। इस मूर्ति के एक ओर ११ फीट की एक प्रतिमा और है। दूसरी ओर जगह खाली पड़ी है। स्थान देखने से मालूम होता है कि सर्वग्रासी काल ने वहां की प्रतिमा को नष्ट कर दिया है। प्रधान मूर्ति के पादमूलमें एक ६ पंक्तियों का शिलालेख है, जिससे मालूम होता है कि यह मूर्ति संवत् १२३७ में चन्देल नरेश परमर्द्धिदेव के राजत्वकाल में जाहड और उदयचन्द्र नामक गृहपति या गहोई बन्धुद्वयने निर्माण कराई थी। मूर्ति बनाने वाले शिल्पी बाल्हण का वास्तु शास्त्र-विशारद पुत्र 'पापट' है।

मन्दिर के प्राङ्गण में बहुत सी मूर्तियां यहां-वहां से लाकर रखी गई हैं। उनमें से चौकोन पाषाण पर बहुत बारीक कलम की कारीगरी की कुछ मूर्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इस कठोर पाषाण पर इतनी सूक्ष्माति सूक्ष्म कारीगरी प्रदर्शन की गई है कि उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो शिल्पी ने अपनी कला की

प्रखरतासे पाषाणकी कठोरताको पिघलाकर मोम बना दिया है। पाषाण के बीचो-बीच एक देव-मूर्ति अंकित की गई है, जिसके सिर पर दोनों ओर से दो हाथी अपनी सूंडों से पकड़े हुए घटों द्वारा जल धारा छोड़कर अभिषेक कर रहे हैं। मूर्ति के चारों ओर जो जगह बची है वह सभी जगह बारीक कारीगरी और मूर्तियों से भर दी गई है, मानो शिल्पी शून्यता की विभीषिका से डर कर खाली स्थान छोड़ने का साहस नहीं कर सका और इसी लिए उसने एक के पश्चात् एक नई-नई आकृतियां बनाकर पाषाण के प्रत्येक भाग और प्रत्येक कोने को मूर्ति और प्रतिमूर्तियों से सुसज्जित करके ही विश्राम लिया।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल में अहार शिल्प-कला का लीला-क्षेत्र रहा है। उसका प्राचीन अपार वैभव आज यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। गत वर्षों में लगभग ३०० खण्डित मूर्तियां तालाब से निकाल कर एक कोठरी में संचित की गई हैं। हमारे हिन्दू-शास्त्रों में खण्डित मूर्तियां रखने का निषेध है। मूर्ति खण्डित होते ही उसे किसी पवित्र नदी या जलाशय में विसर्जित करने का विधान है। मालूम होता है कि इसी विश्वास के फल स्वरूप ये मूर्तियां सर्वसंहारक काल के प्रभाव से खण्डित होने या विधर्मी मुसलमानों द्वारा खण्डित किये जाने पर समीपवर्ती तालाब में विसर्जित कर दी गई होंगी। जो हो, प्रयत्नपूर्वक काफी मूर्तियों का संग्रह किया जा चुका है। हर्ष है कि इन मूर्तियों को व्यवस्थित रूप से रखने के लिये एक संग्रहालय भी बनाया जा रहा है।

यहां मुझे एक बात अवश्य कहनी है कि अभी तक यहां पर जितनी मूर्तियां संग्रह की गई हैं, वे सब जैन-मूर्तियां ही हैं। मैं ने सुना है कि वहां संग्रह करने योग्य बौद्ध और हिन्दू मूर्तियां भी हैं, जिनमें गणेश जी और बुद्ध भगवान की मूर्तियां विशेष उल्लेख योग्य हैं। इन मूर्तियों को इस संग्रह में न देखकर खेद हुआ। हम आशा करते हैं कि इस संस्था के संचालक प्राचीन मूर्तिकला में धर्म-भेद को स्थान न देकर क्या जैन, क्या हिन्दू और क्या बौद्ध सभी मूर्तियों को, जो कला की दृष्टि से उत्तम हों, संग्रह करके संग्रहालय में रखने की उदारता दिखलावेंगे और इस तरह अहार क्षेत्र को जैन अतिशय क्षेत्र ही नहीं, सार्वजनिक अतिशयक्षेत्र बना कर छोड़ेंगे।

मुझे अहार और पपौरा दोनों क्षेत्रोंको देखने का मौका मिला कला की दृष्टि से पपौरा की समृद्ध मन्दिर-मालिका, लोकलोचन से परे जंगल के एक कोने में छोटे और साधारण से मन्दिर में स्थित विशाल-काय भव्य मूर्ति के अपार वैभव के सामने फीकी सी दिखाई दी। उन दोनों स्थानों में मुझे हरियाली, बगीचे, फल फूल, तरकारी आदि की बड़ी त्रुटि दिखाई दी। इन संस्थाओं के संचालकों को इस ओर शीघ्र ध्यान देकर वहां थोड़े बहुत फूल, केले, अमरूद आदि फल तथा हर मौसम में काम आने वाली तरकारियां उगाने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने से आश्रम की सुन्दरता बढ़ने के साथ-साथ वहां रहने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा आने वाले दर्शकों को ताजी तरकारी

नित्य खाने को मिलेगी, जिससे उनके स्वास्थ्य में उन्नति होगी।

देवरी (सागर)



(६)

धन्य पापट

[श्री राजकुमार जैन साहित्याचार्य]

सन् १६२८—

उन दिनों पपौरा विद्यालयमें मैं शिक्षा पा रहा था। अहार का तबतक नाम भी मेरे सुननेमें न आया था। एक दिन हम कुछ विद्यार्थी घूमने निकले तो पता चला कि अतिशय क्षेत्र अहार में मेला होने वाला है। अतिशय क्षेत्र सुन कर मेरी जिज्ञासा जाग्रत हो उठी। एक विद्यार्थी से पूछने पर उसने बताया कि एक बार चन्देरी के पानाशाह माल खरीदने बाहर गये थे। दूर देश जाकर उन्होंने बहुत-सा जस्ता खरीदा और साथ लेकर चन्देरी लौटे। चलते चलते अहार आये और एक रात वहीं काटने के लिए ठहर गये। सुबह उठ कर जब उन्होंने माल देखा तो आश्चर्य-चकित रह गये। बोरों मे चांदी भरी थी। अपने आदमियों से बोले—बड़ा अनर्थ हुआ। व्यापारी ने जस्ते के धोखे में चांदी दे दी है जब उसे अपनी भूल मालूम होगी तब न जाने उसका क्या हाल होगा! चलो, उसकी चांदी वापस कर आवें।"

पानाशाह उल्टे पैरों व्यापारीके यहां पहुंचे। बोले—'भाई! तुमने जस्ते के धोखे में चांदी क्यों दे दी? क्या इसी तरह व्यापार किया जाता है? लो, अपना माल सम्भालो और हमारा हमें दो।'

व्यापारी असमंजस में पड़ गया। जस्ते के बदले चांदी दे देने की भूल भला वह कैसे कर सकता था? उसने कहा—'आप यह कहते क्या है? मैंने तो आपको जस्ता ही दिया है।

पानाशाह ने तनिक गम्भीर होकर कहा—'मैं क्या आप से झूठ कहता हूं? आप स्वयं अपनी आंखो देख सकते है।'

बोरे खोले गये। लेकिन यह क्या? चांदी वांदी उनमे कुछ नहीं थी। केवल जस्ता ही जस्ता था।

व्यापारी ने कहा—'शाहजी, कहां है चांदी?'

पानाशाह से कुछ कहते न बना। अपना सा मुंह लेकर घर की ओर चल दिये। रास्ते में अहार मे फिर पड़ाव डाला और सुबह उठ कर देखा तो चांदी ही चांदी! पानाशाह बहुत धर्मात्मा और साधु प्रकृति के पुरुष थे। उन्होंने सोचा कि हो न हो यह इस पुण्य भूमि का ही अतिशय है। इस लिए इस पैसे का यहीं उपयोग करना चाहिये। और इस पैसे का इससे अधिक उपयोग हो ही क्या सकता है कि यहां विशाल जैन मन्दिर तैयार करा कर उनमें ऐसी भव्य मूर्तियां प्रतिष्ठित की जांय कि जिनके दर्शन कर यह त्रस्त संसार दो घड़ी के लिए संसार के कष्टों से छुटकारा पा जाय।'

इस तरह पानाशाह ने वह सारा पैसा अहारके जिनमंदिर

और मूर्तियों के निर्माण में लगा दिया। उसी समय से अहार अतिशय-क्षेत्र के नाम से पुकारा जाता है।

इस कथा ने मेरे हृदय में अहार के दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा पैदा करदी। लेकिन दुर्भाग्य कि अहारजी के दर्शन उस वर्ष न हो सके। मन की इच्छा मन में ही रह गई।

सन् १९३१—

इस वर्ष मेले के अवसर पर अहार पहुंच ही गया। भगवान शांतिनाथ की वीतराग भव्यमूर्ति के दर्शन कर निहाल हो गया। उस समय अहार के चारों ओर परकोटा नहीं था। कुछ और मामूली सी बारी थी। न पाठशाला थी, न ठहरने आदि के लिए कोई कमरा। सैकड़ों खण्डित मूर्तियां खेतों में और पहाड़ियों पर पड़ी थीं, जिन्हें हम लोग दिन भर देखते रहे और उन्हें खण्डित करने वाले की हृदय-हीनता को धिक्कारते रहे। उस रात एक जल्सा भी हुआ। कुछ विद्वानों ने भाषण दिये। लेकिन जहां तक मुझे याद है, शायद ही किसीने जनता का ध्यान इस ओर खींचा हो कि खण्डित प्रतिमाओं का संग्रह कर उन्हें सिलसिले से रखने के लिए एक संग्रहालय तुरन्त तैयार हो जाना चाहिए। न इसी बात पर जोर दिया कि अहार में पुरातत्व की बहुमूल्य सामग्री बिखरी हुई है और उसे यों ही नष्ट न होने देना चाहिये।

हम लोग अहार के दर्शन कर कृतकृत्य होकर पपौरा लौट आए।

सन् १६४१—

अहार जांच-कमेटी के सदस्य सर्वश्री अमोलकचन्द्र जी, अक्षयकुमार जी और यशपाल जी उस दिन पपौरा आये। उनका इरादा अहार के दर्शन और वहा के निरीक्षण करने का था। मुझे भी साथ चलने के लिए प्रेरित किया गया। सन् १६३१ से अहार के दर्शन करने का सौभाग्य नहीं मिला था। उस समय से अब तक अहार बहुत कुछ प्रकाश मे आ गया है और वहां कुछ परिवर्तन भी हो गये हैं। अवसर अच्छा था। इस लिए मैं भी साथ हो लिया।

शाम के लगभग छह बजे हम लोगों की पार्टी अहार के लिए पैदल रवाना हुई। रात के आठ बजते-बजते हम लोग बदमारई गांव मे आये और वहां रात बिता कर सुबह ही अहार जा पहुंचे।

नहा-धोकर मन्दिर जी गए और भगवान् शान्तिनाथ की सौम्य वीतराग मुद्रा के दर्शन कर आनन्द विभोर हो गये। मूर्ति मे व्यक्त होने वाले चैतन्य ने सब के हृदय आकृष्ट कर लिए। कुछ समय तक हम लोग टकटकी लगाये मूर्ति की ओर देखते रहे।

× × × ×

मूर्ति और मूर्तिकार—

हमे मालूम है कि सब से विशाल भव्यमूर्ति बड़वानी और श्रवणबेलगोला में बाहुबलि स्वामी की है। लेकिन मुझे उनमें से

एक के भी दर्शन करने का अवसर नहीं मिला है। हां, अहार की शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमा के दर्शन अवश्य किये हैं, और सच पूछिये तो हमारे लिए अहार ही बड़वानी और श्रवणबेल-गोला है और क्यों न मानें कि वह वीतरागता, वह अनिद्य सौंदर्य और वैसा ही चैतन्य इस मूर्ति में भी व्यक्त है।

मूर्ति के दर्शन करते समय मूर्तिकार पापट आंखोंके सामने आ जाता है। पापट ने ऐसी सजीव मूर्ति तैयार करने के लिए कितनी उपासना, कितनी साधना न की होगी और उसका हृदय कितना वीतराग, प्रशान्त और भव्य न होगा। धन्य है यह मूर्ति और धन्य है वह मूर्तिकार पापट !

—पपौरा, (टीकमगढ़)



(७)

हमारा गौरव—अहार

श्री अक्षयकुमार जैन बी ए

सन १९४१ की गर्मियों में जब हमारी पार्टी अहार-क्षेत्र सम्बन्धी जांच के लिए अहार पहुंची तो अपने प्राचीन गौरव को नष्ट होते देख स्तम्भित रह गई और पार्टी के प्रत्येक सदस्य के नेत्र गीले हो गये।

गौरवशील मूर्ति-संग्रह—

टीकमगढ़ से बारह मील ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर पैदल

चलकर अहार पहुंचे तो वहां के छोटे से देवालय को देखकर सब खिन्न होने लगे। पर अन्दर की निधि के दर्शन करके हम लोग ही क्या, सभी दर्शनार्थी निहाल हो जाते हैं। खड्गासनपर विराजमान १८ फीट लम्बी चमकती पालिश और मटियाले रङ्गके पत्थर की भगवान शांतिनाथ की भव्य प्रतिमा हृदय को कितनी शांति पहुंचाती है, इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। मूर्ति के बांई ओर उसी प्रकार की ११ फीट की एक भगवान कुंथुनाथ की प्रतिमा है और कहा जाता है कि उसी के समान सीधे हाथको अरहनाथ भगवान की एक प्रतिमा थी, जो अब वहा पर नहीं है। खोज करने पर पास ही कोल्हू की भट्टी मे न जाने कितने समयसे लगा हुआ एक पत्थर का टुकडा मिला, जो उसी प्रतिमा के धड अथवा जघा का एक भाग जान पड़ता है।

इन मूर्तियों के अतिरिक्त लगभग २०० खण्डित प्रतिमाएँ वहा और है जो इस बेतरतीबी के साथ पड़ी हुई है कि हरेक का दर्शन दुर्लभ है। इन मूर्तियों का अद्वितीय सौंदर्य देखते ही बनता है। पत्थर की मूर्तियों में भाव का लाना कितना कठिन है, पर इन मूर्तियों को देखिये! इनका निर्माता—पापट धन्य है, जिसने अपनी सतत साधना से ऐसी मूर्तियों का निर्माण किया जिन्हें देखकर हर्ष से दर्शक आश्चर्य-चकित रह जाता है। प्राय: सभी मूर्तियों के मुख भावमय हैं। मुस्कान और सन्तोष की झलक तो कई के चेहरे पर है। क्या रुपये पैसेमें उनका मूल्यांकन हो सकता है?

पुरातत्व की दृष्टि से—

भगवान शान्तिनाथ की प्रतिमा के नीचे आसन पर जो शिला-लेख दिया हुआ है, उससे पता चलता है कि उस मूर्ति का निर्माण १२३७ संवत् में हुआ। अन्य कई मूर्तियां भी उसी काल की जान पड़ी हैं। कुछ बाद की भी हैं। सत्रह सौ अठारह सौ संवत् के बीच की। कहा जाता है कि किसी समय वहां अनेकों जैनमन्दिर थे। लेकिन वे सब नष्ट हो गये। उनकी अनेकों मूर्तियां मदनसागर मे पड़ी हुई बताई जाती हैं। कुछ मन्दिरों के भग्नावशेष अब भी विद्यमान हैं, जिनसे उन मन्दिरो की विशालता का भास होता है।

अहार से लगभग तीन मील पर आल्हा-ऊदल की कुर्सियां हैं। कहा जाता है कि वे इन मन्दिरों से सम्बन्धित कुछ चीजें थीं, जिन्हें बाद में यह नाम दे दिया गया है। कुछ भी हो, पुरातत्व की दृष्टि से इन मूर्तियों का मूल्य बहुत अधिक है। परन्तु खेद है कि अभी तक उनके बारे में पूरी तौर पर अन्वेषण नहीं हुआ। हमे आशा है कि यदि कोई पुरातत्ववेत्ता वहां जा कर खुदाई करावें और शिला-लेखों का अध्ययन करें तो बहुत सी बातो का पता चल सकता है। उदाहरण के तौर पर मैं एक का उल्लेख कर दूं। भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा के शिलालेखसे पता चलता है कि उस स्थान पर लगभग १२ मील लम्बा 'नारायणपुर' नाम का एक नगर था। इसी तरह उसमें 'बानपुर' का उल्लेख आया है जो टीकमगढ़से ४-५ मील की दूरी पर है।

इन ऐसी मूल्यवान मूर्नियों की कुगति होते देख कर हमे बड़ा दुख हुआ। कुछ मूर्तियां तो मन्दिर के जगमोहनकी चहार दीवारी में चुनी हुई हैं, जिनपर ओले, वर्षा और धूप से बचने के लिये कोई साधन नहीं है। वह तो धन्य है वह शिल्पकार, जिसने ऐसी पालिश का प्रयोग किया, जो आठ सौ वर्षों के आघात सह-सह कर आज भी अपने प्राचीन गौरव की रक्षा किये हुये है। अरहनाथ भगवान की मूर्ति के भग्न खण्ड की वर्षों कोल्हू की भट्टी की आग में तपने के बावजूद आज भी पालिश ज्यों की त्यों है। रत्ती भर भी अन्तर नहीं पड़ा है। लेकिन प्रकृति के कोप को आखिर वे कब तक सह सकेंगी ? कालांतर में उनका सौन्दर्य नष्ट हो ही जायगा।

अधिकांश मूर्तियां पाठशाला के पीछे के भाग के एक बिना द्वार के कमरे मे इतनी अव्यवस्थित रूप से पडी थीं कि उन सब के दर्शन के लिये उन पर पैर रख कर चलना होता था। माना कि मूर्तियां सब खण्डित है; पर हमारे प्राचीन गौरव को प्रदर्शित करने वाली वास्तु-कला की वे उत्कृष्ट नमूना भी तो हैं। उनकी दशा देखकर मेरी तो आंखें भर आईं। एक कोड़ी से भी अधिक मूर्तियोंको बगैर सिरके देख कर मुझे लगा कि यदि इनका निर्माता इन्हें इस दशा में आकर देखे तो उसे उतनी ही पीड़ा होती जितनी कि एक पिता को अपने पुत्रों को ऐसी दशा में देख कर होती।

अहार हमारा गौरव है और भगवान शांतिनाथ की प्रतिमा

अपने अतुल सौन्दर्य, भव्यता और वीतरागता को लेकर जब समुचित प्रकाश में आयगी तब न केवल जैन-जाति का अपितु समूचे भारत का सिर ऊंचा करेगी।

विजयगढ़ (अलीगढ़)



परिशिष्ट

अहार आन्दोलन—

इस पुस्तिका के प्रथम लेख के (जो 'मधुकर' (टीकमगढ़) मे 'अहार लड़वारी' शीर्षक से १ मार्च १९४९ के अङ्क मे प्रकाशित हुआ था) सम्बन्धमे आये पत्रोंके अंश नीचे दिये जाते हैं—

अमरावती से प्रो० हीरालाल जी जैन, एम० ए०, एल-एल० बी० लिखते हैं—

" ..अहार में मूर्तियों की ऐसी दुर्दशा का हाल पढ़ कर खेद हुआ, विशेषतः जब कि वहीं पाठशाला भी चल रही है। फिलहाल दूसरी व्यवस्था के अभाव मे वे सब मूर्तियां उस पाठशाला के उतने बड़े अहाते में एक जगह व्यवस्था से नहीं रक्खी जा सकतीं ? वहां के विद्यार्थी और पाठकों के इस ओर तथा अन्य दिशाओं में भी आलस्य के समाचार जान कर बड़ा खेद होता है।"

\+ + + + +

सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्री महेन्द्र जी आगरा—

"...अहार तीर्थ का हाल पढ़कर अति दुख हुआ। वास्तव में कुछ तीर्थक्षेत्रों को छोड़ कर जैन-समाज के तीर्थों की ऐसी ही दशा है। हमारा धनिक समाज इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता, इस लिये ऐसी बातें हम लोगों को देखने को मिलती हैं।

...कुछ जैन भाइयों तथा जैन-पत्रों के पते भेज रहा हूं। आप इन लोगों को अवश्य लिखें। मैं भी इस सम्बन्ध में जैन पत्रों मे चर्चा अवश्य करूंगा। काम करना अपना कर्तव्य है। फल हाथ में नहीं।..."

\+ + + + +

मोराजी-भवन, सागर के श्री सत्तर्क दिगम्बर जैन-संस्कृत विद्यालय से श्री पन्नालाल जी जैन लिखते हैं—

"..क्षेत्र की दुर्दशा देख कर प्रत्येक सहृदय को दुख होगा, जैसा कि आपको हुआ है। करीब पांच साल हुए तब मैं भी पपौरा से बैलगाड़ी द्वारा 'अहार क्षेत्र' गया था। मेरे हृदय में भी आपके ही जैसे भावों का उन्मेष हुआ था। उस समय वहां पाठशाला शायद नहीं थी। मेरी समझ से क्षेत्र की दुर्दशा का कारण यह है कि वहां बुन्देलखण्ड के अतिरिक्त अन्य प्रांतों की धनाढ्य जनता का गमन नहीं होता। यदि वहां किसी अच्छी जगह के सज्जन पहुंच सकें तो क्षेत्र का उद्धार अनायास ही हो सकता है। टीकमगढ़ पचायत को श्रीमान ओरछेश से मिल कर वहां का मोटर का रास्ता ठीक करवाना चाहिए। .यदि वहां किसी सभा सोसायटी को खास कर आमन्त्रित कर उसका अधि-वेशन कराया जाय तो भी सफलता मिल सकती है। इस समय

मात्र बुन्देलखण्ड की जनताके आर्थिक साहाय्य से क्षेत्र का उद्धार होना कठिन मालूम होता है। वहां सर्व प्रथम दरिद्रता का प्रचार है। दूसरे लोगों में इस ओर रुचि नही है।

...आपने शाक-भाजी के उत्पादन की सलाह जो वहां के अध्यापक को दी है, वह बहुत उत्तम है। दूध का प्रबन्ध शायद ही किसी जैन बोर्डिङ्ग मे होता होगा, परन्तु शाक-भाजी का प्रबध अवश्य रहता है जो कि आपकी सलाह के अनुसार वहां भी हो सकता है। ..."

\+ + + + +

जैन-समाज के प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न व्यक्ति ला० मक्खनलाल जी जैन, दिल्ली से लिखते है—

"...आपने जो क्षेत्र और पाठशाला के सम्बन्ध मे लिखा है। मेरी राय में पाठशाला में योग्य पण्डित होना चाहिए जो विद्वान् हो, तो पाठशाला अवश्य ही ऊंची जगह पर पहुंच सकती है, क्योंकि पडितजी महाराज जगह २ से अच्छा चन्दा पाठशाला के लिए जमा कर सकते हैं और समाज मे ऐसा ही रिवाज है।

. जैसा आप कहें, या जैसा मुनासिब होगा, इन्तज़ाम कर दूगा। ."

\+ + + + +

कटनी से प्रकाशित 'परवारबन्धु'—

" . जैन समाज के पुनीत क्षेत्र की यह दर्दनाक हालत किसे दुखी न बनावेगी, यह नहीं समझा जा सकता। वास्तव मे

धार्मिक दृष्टि के साथ २ ऐतिहासिक दृष्टि से ये स्थान हमारे लिए बहुत महत्व के हैं, जिसकी ओर हमारी किसी भी संस्था का ध्यान अभी तक आकर्षित नहीं हुआ। "

इनके अतिरिक्त अन्य कई महानुभावों ने अपने पत्रों में अहार की दुर्व्यवस्था पर खेद प्रकट किया तथा जैन पत्रों ने उस लेख को उद्धृत करके अपनी टिप्पणियों द्वारा समाज का ध्यान इस ओर किया।

इसके पश्चात् २६ और २७ अप्रैल १६४१ को अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् के झांसी-अधिवेशन मे निम्न-लिखित प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुआ—

"अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् का यह अधि-वेशन 'अहार' क्षेत्र की वर्तमान शोचनीय अवस्था पर खेद प्रकट करता है। तीर्थंकरोंकी वहां अनेकों प्रतिमाएँ हैं, लेकिन अधिकांश की दुर्गति हो रही है और वहां की श्री शान्तिनाथ जैन पाठशाला के विद्यार्थियों के उचित भोजनकी भी व्यवस्था नहीं है। सम्मेलन को यह सब जान कर दुख हुआ।

"इस बारे मे जांच करने के लिए वह निम्नलिखित पांच सदस्यों की एक कमेटी नियुक्त करता है। सदस्यों से उसका अनु-रोध है कि वे 'अहार-क्षेत्र' के सम्बन्ध में पूरी तौर पर जांच पड़ताल करके अपनी रिपोर्ट सभापति महोदय के पास जल्दी से जल्दी भेजने की कृपा करें।"

१- सर्व श्री अक्षयकुमार जैन, बी.ए. विजयगढ़ (अलीगढ़)

२- अमोलकचन्द्र जी, म्यू० कमिश्नर खंडवा

३- यशपाल जैन, बी. ए., एल एल. बी. टीकमगढ़

४- सूरजमल जी वकील, झांसी

५- मन्नालाल जी गंगवाल एम ए., एल एल. बी इन्दौर

इस कमेटी को अधिकार होगा कि आवश्यकतानुसार अन्य सदस्य शामिल करले।

उक्त प्रस्ताव के अनुसार जांच कमेटी के सदस्यों ने अहार जाकर क्षेत्र और पाठशाला के सम्बन्ध मे पहली मई सन १९४१ को पूरी तौर पर जाच पड़ताल की। उसकी रिपोर्ट नीचे दी जाती है।

"अहार टीकमगढ़ से बारह और तहसील बल्देवगढ़ से चार मील की दूरी पर स्थित है। टीकमगढ़ से वहां तक कच्ची सड़क जाती है। लेकिन वह इतनी ऊबड़-खाबड़ है कि यात्रियो को बड़ी असुविधा का सामना करना पड़ता है। हमारा अनुमान है कि अहार जैसे अतिशय क्षेत्र के लोक-प्रिय न होने मे बहुत कुछ कारण मार्ग की गड़बड़ है। वृद्ध तथा अस्वस्थ यात्रियों का वहां जाना अत्यन्त कठिन है। पहाड़ी प्रदेशों के मार्गों का ऊंचा नीचा होना स्वाभाविक ही है, लेकिन उनका साफ होना अत्यावश्यक है।

अहार में दो मन्दिर हैं और तीसरे पर लाग लगी हुई है। एक मन्दिर में भगवान् शान्तिनाथ की बाईस फीट की शिला पर अठारह फीट की प्रतिमा है और उनके बाई ओर ग्यारह फीट की कुन्थुनाथ भगवान की मूर्ति है। दूसरे मन्दिर मे कुछ फुटकर

मूर्तियां हैं।

इन मन्दिरों के अतिरिक्त लगभग नौ कमरे हैं, जिनमे से अधिकांश का उपयोग श्री शान्तिनाथ जैन पाठशाला के लिए होता है।

क्षेत्र का कार्य दो भागों में बंटा हुआ है, क्षेत्र और पाठ-शाला।

क्षेत्र—

क्षेत्र का कार्य चलाने के लिए वहां एक १५) मासिक पर मुनीम रहते हैं और ३) तथा २।) पर दो माली। पूजा की सामग्री आदि का खर्च मिला कर कुल वार्षिक व्यय लगभग ४००) के होता है और विभिन्न साधनों से, जिनमें प्रमुख वार्षिक मेला की आमदनी, दान-स्थानीय और बाहरी और प्रचारक द्वारा प्राप्त दान आदि हैं—प्रायः इतनी ही आय भी हो जाती है। सन् १९४१ का हिसाब तैयार नहीं था। हमने '३९ और '४० के हिसाब देखे, लेकिन वे इतने गड़बड़ थे कि उनसे वार्षिक या मासिक आय और व्यय का कोई अनुमान नहीं हो सकता था। मुनीम जी स्वय उसे समझाने में असमर्थ रहे। इससे हमें बड़ा असन्तोष हुआ। किसी भी संस्था के लिए सर्व प्रथम आवश्यक वस्तु हिसाब ठीक रखना है। बिना हिसाब ठीक रखे काम सुचारु रूप से चल नहीं सकता।

अहार के हिसाब की इस अव्यवस्था के लिए मुनीम जो तो दोषी हैं ही, पर साथ ही क्षेत्र के अधिकारी सज्जन भी इस

दोष से मुक्त नहीं हैं। उनका कर्तव्य है कि वे हिसाब की ओर पूरा-पूरा ध्यान दें। इस समय सिलक में केवल पांच-सात रुपये थे।

एक बात हमने और देखी। सन '४० में जीर्णोद्धार के खाते ११६६।) की आय हुई है जिसमे ६८८८) का व्यय ऐसे पाच कमरे बनवाने मे हुआ है जिनका पूर्णरूप से उपयोग नहीं हो पाता। दो कमरो मे तो खण्डित मूर्तियां भरी पड़ी हैं और तीन कमरे साल मे दो एक बार उधर आ जाने वाले यात्रियों के ठहरने के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं। हम समझते हैं कि इन कमरों की जगह यदि इन मूर्तियों को सुरक्षित रखने के लिए एक बड़ा सा कमरा बन जाता तो अधिक अच्छा होता।

हमारी राय है कि क्षेत्र की आय-व्यय का वार्षिक हिसाब तो रक्खा ही जाय, पर साथ ही मासिक हिसाब भी रक्खा जाना आवश्यक है। उससे निरीक्षक को एक ही निगाह मे क्षेत्र की आमदनी और खर्च का स्पष्ट रूप मे अनुमान हो जायगा।

हमारी सम्मति मे यह भी आवश्यक प्रतीत होता है कि जीर्णोद्धार या अन्य किसी मद मे किफायतशारी करके सबसे पहले संग्रहालय के लिए वहां एक कमरा बनना चाहिए। नये मन्दिर के निर्माण में बड़मारई की जैन पंचायत जितना व्यय कर रही है उतने में संग्रहालय के लिए एक नहीं चार कमरे बन सकते हैं। वास्तव में आज कल जरूरत नये मन्दिरों के निर्माण की उतनी नहीं है जितनी कि पुरानों को सुरक्षित रखने की है।

पपौराजीमें हमने देखा पिचत्तर मंदिर हैं इन सबमें हर रोज पूजा भी नहीं हो पाती। फिर भी नये मन्दिरों का निर्माण हो रहा है।

गजरथ के अवसर पर या मेलों में हजारों का व्यर्थ ही व्यय होता है; लेकिन जहां जरूरी है, वहां एक कौडी खर्च नहीं की जाती।

पाठशाला—

क्षेत्र की दूसरी मद है पाठशाला। इस समय उसमे ७ से १८ वर्ष तक के २३ विद्यार्थी है। एक अध्यापक। उसमे धर्म, न्याय, व्याकरण तथा साहित्य की विभिन्न परीक्षाओं की व्यवस्था है।

पाठशाला के प्रबन्ध के लिए इकत्तीस सभासदों और छ पदाधिकारियों की एक प्रबन्ध-कारिणी-समिति है। सभापति हैं सेठ छोटेलाल जी बेसा और मन्त्री पठा के वैद्य श्री बारेलाल जी। वास्तव में केवल श्री बारेलाल जी ही पाठशाला के कार्य मे सक्रिय भाग लेते हैं। शेष पदाधिकारी और सभासद तो वर्ष भर में प्रायः एक बार मेले के अवसर पर एकत्र हो जाते है। वह भी सब नहीं।

पाठशाला का हिसाब—

पाठशाला का हिसाब भी क्षेत्र के हिसाब की भांति बहुत गड़बड़ है। अध्यापक महोदय मांगने पर सन '४१ का हिसाब नहीं दे सके। पिछले हिसाब भी अधिक स्पष्ट नहीं थे। हमारी

गाय में पाठशाला के आय-व्यय का मासिक हिसाब रखना आव-आवश्यक है।

पाठशाला की आय—

पाठशाला की आय के दो साधन है—(१) विद्यार्थियों से (२) विविध। विविध में दान, स्थानीय सहायता, वार्षिक मेले की आय आदि है। विद्यार्थियों से शिक्षा के लिये कोई शुल्क नहीं लिया जाता। केवल भोजन का खर्च उन्हें देना होता है। लेकिन कुछ साधनहीन विद्यार्थी उससे भी मुक्त है।

पाठशाला का भोजनालय है, जिसमे सब विद्यार्थी भोजन करते हैं।

व्यय—

सन '४१ का हिसाब तैयार न होने के कारण हमने सन '४० का हिसाब देखा। उसमें सब से अधिक व्यय प्रचार-सम्बन्धी था। कुल आय का मासिक औसत था ८७।) और व्यय ८१)।

भोजन-सम्बन्धी अव्यवस्था—

हिसाब देखने पर मालूम हुआ कि वर्ष भर (१९३९-४०) मे साग-भाजी पर २।) खर्च किये गये। इस तरह प्रति विद्यार्थी वर्ष भर में छह पैसे पड़ते हैं। दूध के सम्बन्ध में अध्यापक महोदय ने बताया कि वर्ष में केवल दो बार वे दूध की बनी चीजें जैसे खीर आदि, विद्यार्थियों को दे देते हैं। हमने स्वयं विद्यार्थियों से पूछा कि क्या आप दूध पीने की इच्छा रखते हैं? तो

कई की आंखें भर आईं। इसी सप्ताह एक अत्यन्त प्रतिष्ठित जैन सज्जन अहार गए थे। उन्होंने बताया कि उनके विद्यार्थियों से साग-भाजियों के नाम पूछने पर एक छात्रा केवल भिण्डी का नाम बता सकी।

अध्यापक महोदय का कहना था कि टीकमगढ़ दूर है और बल्देवगढ़ में साग-भाजिया कम ही मिलती हैं। लेकिन अहार मे ही हमने देखा, इतनी जगह पड़ी हुई है कि २३ नहीं १०० विद्यार्थियों के लिए तरकारी उगाई जा सकती है। इसमे अध्या-महोदय की अकर्मण्यता और प्रबन्ध-समिति के सदस्यो की ला-परवाही ही प्रतीत होती है। हमारी राय मे मन्दिर के अहाते के एक चौथाई भाग मे तरकारी पैदा करने की व्यवस्था होनी चाहिये।

विद्यार्थियों को घी मिलता है, लेकिन इतने कम परिमाण में कि उसका मिलना न मिलना बराबर है। फी विद्यार्थी दो तोला घी प्रति दिन मिलता है।

इन्हीं कारणों से वहां के लगभग सभी विद्यार्थियों का स्वास्थ्य गिरा हुआ है। हमारी सम्मति मे उनके लिए कुछ ऐसी व्यवस्था तुरन्त ही हो जानी चाहिये जिससे कि उन्हें पर्याप्त मात्रा में साग-भाजी, दूध और घी मिल सके।

मूर्तियों की दुर्दशा—

अनुमानतः इस समय अहार में लगभग २०० मूर्तियां हैं, प्रायः सभी खण्डित। लेकिन इस ढङ्ग से उन्हें डाल रक्खा गया

है कि देखकर दुःख होता है। पाठशाला के पीछे के दो कमरों में, जहां कि मूर्तियां पड़ी हुई हैं, हम गये तो दुर्भाग्यवश हमारे पैर खण्डित मूर्तियों पर पड़ गये! तमाम मूर्तियां एक दूसरे के ऊपर इतनी बेतरतीबी से पड़ी हुई हैं कि बिना मूर्तियों पर पैर रक्खे भीतर जाकर उनको देखा ही नहीं जा सकता। उठा-उठा कर इधर से उधर पटकने से इन मूर्तियों की और भी बुरी हालत हो गई है।

माना कि वहां कोई संग्रहालय ऐसा नहीं है जहां कि उन्हें पूर्णतया व्यवस्थित रूपसे रक्खा जा सके, लेकिन फिर भी संभाल कर तो उन्हें रक्खा ही जा सकता है। क्षेत्र के मुनीम जी से पता चला कि अभी-अभी वे मूर्तियां कमरों में रक्खी गयी हैं। अब तक तो वे (आठ सौ वर्षों से) बाहर खुले मैदान में पड़ी थीं! वर्षा या धूप या उठाईगीरों से रक्षा के लिए वहां कोई साधन नहीं था। हमें प्रतीत हुआ कि मुनीम जी या क्षेत्र के और किसी अधिकारी व्यक्ति की दृष्टि में उन मूर्तियों का मूल्य कुछ है ही नहीं यदि होता तो क्या वे इतने वर्षों से इस लापरवाही के साथ पड़ी रहने दी जातीं?

हमारे सुझाव—

हमारी सम्मति में नीचे लिखी चीजों की अहार के क्षेत्र तथा पाठशाला के लिए आवश्यकता है—

१—टीकमगढ़ से अहार तक का मार्ग ठीक हो जाना चाहिए। इसके लिए श्रीमान सवाई महेन्द्र महाराजा श्री वीरसिंह

जू देव ओरछेश से सहायता की प्रार्थना की जानी चाहिये ।

२ – क्षेत्र और पाठशाला की समुचित व्यवस्था के लिए दो समितियां ऐसे उत्साही सदस्यों की बननी चाहिए, जो अपना सक्रिय सहयोग दे सकें। हिसाब-किताब को व्यवस्थित रखने की दृष्टि से भी इन समितियों का बनना जरूरी है ।

३—मूर्तियों को संग्रहीत करने तथा व्यवस्थित रूप से रखने के लिए एक संग्रहालय बनना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। एक तो मूर्तियां व्यवस्थित रूप से रक्खी जा सकेंगी, दूसरे उनके शिला-लेख पढने मे सुभीता होगा।

४—पाठशाला के लिए कम से कम दस गायों का प्रबन्ध हो जाना चाहिये, जिससे विद्यार्थियों को दूध मिल सके ।

५—मन्दिर के अहाते मे साग-भाजी उगाने का प्रबन्ध होना चाहिए। अध्यापक और विद्यार्थी मिल कर उसके लिए कम से कम दिन मे एक घण्टे शारीरिक श्रम करे।

अपील—

श्रीमान महाराजा साहब, राज्य के कर्मचारियों तथा जैन भाइयों की सेवा मे हम एक अपील करना चाहते हैं। यह गौरव की बात है कि बुन्देलखण्ड मे जैनियो के इतने तीर्थ हैं और उनमे पुरातत्व की तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इतनी प्रचुर सामग्री भरी पडी है ।

श्रीमान ओरछेश की सेवा में हमारा विनम्र निवेदन है कि वह इस ओर ध्यान देने की कृपा करें। हमारी उनसे केवल इतनी

ही प्रार्थना है कि वह टीकमगढ़ से अहार तक का रास्ता ठीक करादें। इसके लिए जैनजाति उनकी कृतज्ञ रहेगी।

जैन-भाइयों से हमारा अनुरोध है कि वे अहार के क्षेत्र तथा पाठशाला सम्बन्धी जिन ऊपर लिखी बातोंका हमने उल्लेख किया है, उन्हें जल्दी से जल्दी पूरा कराने का प्रयत्न करें। हम जानते हैं कि हमारे समाजमे इतने साधन-सम्पन्न व्यक्ति मौजूद हैं कि यदि उनमे से कोई चाहे तो अकेला ही सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। हमें आशा ही नही, पूर्ण विश्वास भी है कि हमारे धनिक महानुभाव अपनी जाति के गौरव और प्रतिष्ठा के लिए इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे।

मौके पर जाच करने के लिए कमेटी के दो सदस्य सर्व श्री मन्नालाल जी गगवाल तथा सूरजमल जी जैन उपस्थित नहीं थे, किन्तु उन्होने अपनी अनुमति दे दी थी कि रिपोर्ट में उनके नाम सम्मिलित कर लिये जाय। प्रस्ताव द्वारा प्राप्त अधिकार से श्री राजकुमार जी जैन साहित्याचार्य को कमेटी में शामिल कर लिया गया था।

इस रिपोर्ट की एक प्रति परिषद् के सभापति श्री बालचद जी कोछल वकील तथा प्रधान मन्त्री ला० तनसुखराय जी जैन की सेवा में हमने (जांच-कमेटी की रिपोर्ट) भेजी थी और प्रार्थना की थी कि वे उस पर अपने सुझाव भेजने की कृपा करें और अहार के सम्बन्ध मे अब तक जो मसाला प्रकाशित हुआ है उसे एक पुस्तिका के रूप परिषद् की ओर से छपवा दें। इससे अहार के

प्रचार कार्य में बहुत सहायता मिलेगी। इसके उत्तर मे ला० तनसुखराय जी का पत्र आया कि परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक बीना मे जून की १४-१५ तारीखो मे हो रही है उसमे मैं अवश्य सम्मिलित होऊ। श्री कोछल जी के पत्र का एक अश यहां दे रहा हूं—

"आपकी रिपोर्ट मिली। जो सुझाव आपने अपनी विस्तृत रिपोर्ट में दिये हैं, बहुत ही योग्यतापूर्ण हैं। हमारा विचार परिषद् की कार्यकारिणी कमेटी बुलाने का हो रहा है। उसमें आपकी यह रिपोर्ट पेश कर भविष्य की रूपरेखा कार्यान्वित करने की सूचना दी जायगी।

. मैं हृदय से अहार क्षेत्र की उन्नति के लिए कोशिश करूगा और परिषद् के कार्यक्रम में यह विषय लिया जायगा।"

२४-५-'४१

इसके पश्चात् जून की उक्त तारीखो मे बीना में कार्य-कारिणी की बैठक हुई। कुछ कारणो से मैं उसमें सम्मिलित न हो सका। लेकिन सुना जाता है कि उसमें अहार सम्बन्धी रिपोर्ट पेश की गई थी। परन्तु हमारे दो पत्र भेजने के बावजूद भी सभापति महोदय की ओर से हमे कोई सूचना नहीं मिली।

इस सिलसिले में झांसी से श्री विश्वम्भरदास जी गार्गीय का एक उपयोगी पत्र प्राप्त हुआ था, जिसे नीचे दिया जाता है। उसमें जिन व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर सकेत किया गया है वे विचारणीय हैं—

"आपका पत्र मिला।...अहार जैसी अव्यवस्था बुन्देलखण्ड में पुरातन इतिहास की सर्वत्र है। इस प्रांत की पुण्य भूमि के गर्भ मे महान इतिहास छिपा पड़ा है। उसके उद्धार की ओर किसी का लक्ष्य नही। हमारे सहधर्मी, इस प्रांतवासी, अकर्मण्यता व अज्ञान की नींद सोये पड़े हैं। उन्हें जगाने की ओर भी किसी का ध्यान नहीं।

बुन्देलखण्ड मे एक अहार ही क्या, कितने ही क्षेत्रों के उद्धार की आवश्यकता है। एक जैन-पुरातत्व-विभाग खुलना चाहिए। उसकी ओर से दबे पड़े इतिहास की खुदाई होनी चाहिए और उसकी रक्षा की जानी चाहिए।

हर एक तीर्थ के लिए अलग-अलग कमेटियां नहीं बननी चाहिए। इससे शक्ति का विभाजन और अपने पराये का भेद उत्पन्न होता है। अयोग्य कार्यकर्ताओं के हाथों में द्रव्य का दुरुपयोग हो रहा है।

जाच-कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है—

"क्षेत्र के किसी अधिकारी की दृष्टि में उन मूर्तियों का मूल्य कुछ है ही नहीं।" यह बिलकुल सत्य है। यही हालत खजुराहो मे है। कमेटियां पूजा-व्यवस्था का काम करने में ही इतिश्री समझती हैं। सन १९३७ में देवगढ़ को जब मैं प्रकाश में लाया था, उस समय भी मुझ से बुन्देलखण्ड के एक सर्वमान्य व्यक्ति ने कहा था—"यहां तो अनेकों क्षेत्र ऐसे ही पड़े हैं। आप किस-किस की रक्षा करेंगे?" समय का प्रताप है आज बुन्देल-

इस स्थान पर नितांत आवश्यकता है, जहां पर समस्त मूर्तियां संग्रह की जानी चाहिये। जितने भी शिलालेख मिलते हैं उन सभी की सूची बना कर प्रकाशित करनी चाहिए।

—x—

कैप्टेन एच० ए० कोठारी (स्टेट सर्जन ओरछा राज्य)

श्री अहार क्षेत्र के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त करके बड़ी प्रसन्नता हुई। यह क्षेत्र प्राचीन काल में जैनों का एक विशाल समुन्नत स्थान रहा है। यहां की बड़ी दीर्घ अवगाहना की भगवान शांतिनाथ स्वामी की मूर्ति वास्तव में अपनी अनुपम शांति छवि के कारण दर्शनीय है। यहां सैकड़ों पुरातन जैन-मूर्तियों को भग्नावस्था में देखकर यह अनुमान करना पड़ता है कि मूर्ति-खण्डकों ने यहां भी कठोरता से काम लिया है। क्षेत्र के प्रबन्धकों से अनुरोध है कि वे यहां की सभी मूर्तियों के शिला-लेखों का प्रयत्नपूर्वक संग्रह करके, उनके तथा अन्य उपलब्ध साधनों के आधार पर यहां का इतिहास लिखें। यहां की अनेकों मूर्तियां पर वि० संवत् १२०३ का उल्लेख है। यहां से लगभग १६ मील की दूरी पर स्थित बानपुर के क्षेत्रपाल की बहुत बड़ी अवगाहना की जैनमूर्ति पर संवत् १००१ है। यहां का मन्दिर तथा बानपुर का सहस्रकूट चैत्यालय एक ही कला-पारखी ने बनवाये हैं। ऐसे पुरातन गौरवमय अतिशयक्षेत्र की देखभाल और रक्षा के लिये जैनसमाज को भरसक सहयोग देना चाहिए।

—x—

श्री परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ (सूरत)

अहार-क्षेत्र जैनो की पूर्वकालीन विभूति है। यहां लगभग ३०० प्रतिमाओं का संग्रह है। जैनसमाज के जो श्रीमान गजरथों वेदी-प्रतिष्ठाओं, नवीन मन्दिर और नवीन मूर्तियों के निर्माण मे हजारों लाखों रुपया खर्च करते हैं, यदि वे इन मूर्तियों की सुव्यवस्था कराने में व्यय करें तो अनंतगुना पुण्य हो सकता है।

प्रतिमाओं मे एक बहुत बड़ी दिगम्बर मूर्ति खड्गासन है। उसके दाहिने हाथ मे एक धनुष है। यह एक वैचित्र्य देखा। और भी अनेक प्रतिमाएं हैं, जो असाधारण है।

—×—

श्री निरञ्जनप्रसाद (बिजावर)

अहार-क्षेत्र तथा यहां के प्राचीन मन्दिर और प्रतिमाओं को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। भारत के किसी भी प्राचीन संग्रहालय की भांति जैन उपासकों तथा पुरातत्व के अन्वेषकों के लिए यह जगह एक तीर्थस्थान बन सकता है, बनना चाहिए।

—×—

श्री ललिता बाई (श्राविकाश्रम बम्बई)

यहा का मन्दिर प्राचीन है और मूर्तियां प्राचीनता दर्शाती है। श्री शान्तिनाथ की १२३७ की मूर्ति के, जो २२ फीट ऊंची है, दर्शन करके मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

—×—

M. B C. M. Pugh Bareilly.

भारतवर्ष के जितने स्थान मैंने देखे हैं, उनमें सबसे अधिक आनन्ददायक मुझे यह स्थान लगा है।

—×—

श्री ठाकुरदास जैन बी० ए० (टीकमगढ़)

यह स्थान पुरातत्व की दृष्टि से बड़े महत्व का है [illegible] हां जैनों की बड़ी सारगर्भित और महत्वपूर्ण सामग्री है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से जैनसमाज के लिये और वास्तु शास्त्र की दृष्टि से समस्त भारत के लिए उपयोगिनी हो सकती है।

—×—



विषय सूची ।

शुद्धिपत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्धि	शुद्धि
१	१२	कपिलोपुर	कपिलापुर
२	७	धारण कर	धारण की ।
४	१९	इसके	इनके
५	४	राजा अयोध्यामे सिंहसेन	राजा सिंहसेन
५	१९	उत्पत्ति हुई	प्राप्ति हुई
७	१७	परिशिष्ट 'क'	परिशिष्ट 'क' मे
८	५	इस	इससे
९	११	लौकाकित	लौकान्तिक
११	२१	चलानेसे	चलनेसे
१४	१२	लिखे है	लिखा है
१४	२१	सुशीलचन्द्र	खुशालचन्द्र
१५	१०	समको	सप्तमीको
१६	१२	सहस्राम्न	सहस्राम्र
१६	२०	भगवान्के	भगवान्
१७	११	श्रावक	श्राविका
१८	२०	रहकर राज्य	रहकर फिर राज्य
१९	६	आपके	आपको
२१	१५	शरद ऋतु	शरद ऋतुके
२१	२०	उत्पत्ति हुई	प्राप्ति हुई
२४	१७	उसे	उसका
२५	२३	राजाके	राजाओके
२८	२	रक्षिता	रक्षित
२८	७	छनवे	छनवे हजार
२८	१३	त्रिभगी	विभगा
२८	२१	थी	भी
३०	४	आयेकारी	अधिकारी
३२	७	पद्मावतीके गर्भसे मिती	पद्मावतीके मिती
३२	१०	देवियो	देविया

३४	१	आपके	आयुका
३४	१८	पद्मश्री	पद्म श्री
३८	२	लिये	लिया
३९	१९	पद्मनाम	पद्मनाभ
४१	६	पारसी	पाटसी
४२	२	जाना	जानेका
४२	५	मधुपिंगलके	मधुपिंगलको
४५	७	सवारी	सवार
४६	१६	रुचायें	ऋचायें
४८	४	निश्चय	निश्चित
४९	२२	पहिलेसे	पहिले
५३	११	राक्षकोंके	राक्षसोंके
५३	१३	योजन थी	योजनकी थी
५३	१४	नगर या	नगर था
५९	११	लोकपति	लोकपाल
५९	१२	थी	था ।
६१	१५	श्रीवास	श्रीवत्स
६१	२१	अनावत	अनावर्त
६२	१	,,	,,
६२	२	स्तुति	स्तुति की
६२	४	सिद्धि	सिद्ध
६२	१६	,,	,,
६४	१४	राजी व सरसी	राजीवसरसी
६५	७	पर	यह
६६	६	किया था	लिया था
६६	१३	तन्दरी	तनूदरी
६७	७	प्रमाण	प्रणाम
७०	१३	प्रसुति	प्रसूति
७२	१२	मरुत	मरुत्त
७३	१७	मथुरके	मयुराके

७४	८	उर्ल्लंधि	दुर्लंघ्य
७५	५	,,	,,
७५	११	परागमुख	पराङ्मुख
७५	१२	कुचेष्टओओ	कुचेष्टाओंको
७६	७	बहु	बहुत
८१	१३	स० शस्त्र	सशस्त्र
८३	२	इस पर	इस प्रकार
८४	१२	इन्द्रके साथ युद्ध	इन्द्रके साथ किये हुये युद्ध
८४	२१	पुत्र ये	पुत्र ये
८९	६	सुना जनकाकि	सुना कि जनक
९०	५	चटकेगा	चढ़ावेगा
९१		इस पृष्ठमें कई स्थानपर 'भट मडल' शब्द छपा है उसकी जगह ' भामडल ' शब्द होना चाहिये	
९१	१२	भट भडलको	तब भामडलको
९२ ३	५	भटमडल	भामडल
९२	४	जनकके	जनकने
९२	१५	परागमुख	पराङ्मुख
९३	५	होनके	करनेके
९४	२१	लनको	उनको
९६	१	बाल्यवस्था	बाल्यावस्था
९६	७	सगला सफला मूर्तिको	मजला सफला भुमिको
९६	१३	हे	है
९६	१६	उज्जनी	उज्जयिनी
९६	२२	जिन प्रतिमाको नमस्कार करता था	जिन प्रतिमा बनवा ली थी जिससे कि प्रणाम करते समय जिन प्रतिमाको नमस्कार हो
९६	१६	विधुदङ्ग	विद्युदङ्ग
९९	४	बाल्याखिल्ल	बाल्यखिल्ल

९९	१०	और और खुब	और खुब
९९	१६	प्रसिद्धी	प्रसिद्धि
१००	५,६,८,१०,११,	वाल्याखिल	वाल्यखिल
१०२	१०	इस	यह
१०७	१९	वैदूर्य	वैडूर्य
१०८	४	इन दिनों	इन दिनों इनका
१०९	१	खड्ग हो लेलिया	खड्ग लेलिया
१११	३	झण्डेके	झंठेके
११२	४	भटमण्डल	भामण्डल
११९	२२	अपशकुन परन्तु	अपशकुन हुए परन्तु
१२२	६	होकर गिर गये	होकर लक्ष्मण गिर गये
१२५	४	रामपक्षके कुछ कुछ पुरुष	रामपक्षके कुछ पुरुष
१३१	६	पियोगका	वियोगका
१३१	१२	तिथिकी	तिथि आदिकी
१३३	१२,१	राज्यभिषेक	राज्याभिषेक
१३४	९	वीरतामें	वीरता की
१४०	२२	सुझे	मुझे
१४५	१२	इस	इन
१४८	३	दुत्कृत्य	दुष्कृत्य
१५०	४	केवल्यी	केवली
१५१	१५	चलकर	चमकर
१५२	७	क्रुदुम्ब	कुटुम्ब
१५२	१४	हो गया	होगया होगा।
१५६	१०	सम्बधमें यदि कुछ	सम्बंधमें कुछ
१५८	११	५० ग्रीवका पुत्र पुलस्प हुआ।	पचास ग्रीवका पुत्र पुलस्त्य हुआ।
१५९	४	वनमें	वनकी
१६०	२०	परांगमुख	पराङ्मुख
१६४	४	पद युवराज	युवराज पद





प्राचीन जैन इतिहास।

दूसरा भाग।



पाठ १.

भगवान् विमलनाथ (तेरहवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् वासुपूज्यके मोक्ष जानेके तीस सागर बाद तीर्थंकर विमलनाथ उत्पन्न हुए। आपके जन्मसे एक पल्य पहिलेसे धर्म-मार्ग बंद हो गया था।

(२) ज्येष्ठ वदी दशमीको आप गर्भमें आये। माताने सोलह स्वप्न देखे। इन्द्रादि देवों द्वारा गर्भ कल्याणक उत्सव हुआ। गर्भमें आनेके छह माह पहिलेसे जन्म होने तक रत्नोंकी वर्षा हुई और देवियोंने माताकी सेवा की।

(३) आपका जन्म कपिलापुरके राजा कृतवर्मा रानी जयस्यामाके यहां माघ सुदी चतुर्दशीको तीन ज्ञान युक्त हुआ। आपका वंश इक्ष्वाकु और गोत्र काश्यप था।

(४) साठ लाख वर्षकी आयु थी। और साठ ही धनुषका सुवर्णके समान शरीर था।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आते थे। और वहींसे आपके लिये वस्त्राभूषण आया करते थे।

(६) पंद्रह लाख वर्ष तक आप कुमार अवस्थामें रहे। बादमें राज्य प्राप्त हुआ। आपका विवाह हुआ था।

(७) आपने नीति पूर्वक तीस लाख वर्ष तक राज्य किया।

(८) एक दिन बादलोंको तितर बितर हो जाते देख आपको वैराग्य हुआ उसी समय लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की व इन्द्रादि अन्य देव आये। मिति माघ सुदी ४ को एक हजार राजाओं सहित दिक्षा धारण कर देवोंने तप कल्याणक उत्सव मनाया। तब भगवानको मन पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(९) एक दिन उपवास कर दूसरे दिन नंद नगरके राजा जयसिंहके यहा आपने आहार लिया तब देवोंने राजाके यहा पंचाश्चर्य किये।

(१०) तीन वर्ष तक ध्यान कर जिस वनमें दीक्षा ली थी उसी वनमें जंबूवृक्षके नीचे माघ सुदी ६ को चार घातिया कर्मोका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। समवशरण सभाकी देवोंने रचना की। और ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया।

(११) आपकी सभामें इस प्रकार मनुष्य जातिके सभासद थे -

५५ मदिर आदि गणधर
११०० पूर्व ज्ञानके धारी
१६९३० शिक्षक मुनि
४८०० अवधिज्ञानी
९००० विक्रियारिद्धिके धारी
५५०० केवलज्ञानी
५५०० मन पर्ययज्ञानी
३६०० वादी मुनि

६६४८५

१०३००० आर्यिका

२००००० श्रावक

४००००० श्राविकाएँ

(१२) आयुके एक मास शेष रहने तक आपने समस्त आर्यखडमें विहार किया और विना इच्छाके दिव्य ध्वनि द्वारा धर्मोपदेश आदिसे प्राणियोंका हित किया।

(१३) जब आयु एक मास बाकी रह गई तब दिव्य ध्वनि होना बंद हुआ और सम्मेदशिखर पर्वत पर इस एक माहमें शेष कर्मोंका नाश कर आठ हजार छह सौ मुनियों सहित मोक्ष पधारे। इन्द्रोंने मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाया। यह दिन आषाढ़ वदी अष्टमीका था।

पाठ २।

प्रतिनारायण मधु और नारायण धर्म और बलदेव-स्वयंभू।

(तीसरे बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण)

(१) द्वारिकापुरीके राजा रुद्रके यहाँ तीसरे नारायण धर्मका और तीसरे बलभद्र स्वयंभूका जन्म हुआ था। नारायण धर्मकी माताका नाम सुभद्रा और स्वयंभूकी माताका नाम पृथिवीदेवी था।

(२) दोनों भाइयों (नारायण और बलभद्र) में अनुपम प्रेम था।

(३) नगरपुरके राजा मधु जो कि प्रतिनारायण था और जिसने तीन खंड पृथ्वीको अपने आधीन किया था नारायणने

जीता। इन दोनोंका परस्पर युद्ध इसलिये हुआ था कि किसी राजाने प्रतिनारायण मधुके लिये दूतके हाथोंसे भेंट भेजी थी उस भेंटको इन दोनों भाइयोंने छुड़ा ली और दूतको मार डाला। तब नारद द्वारा समाचार सुन मधु लड़ने आया। और धर्म नारायणसे हार कर युद्धमें प्राण दिये। इसके जीते हुए तीन खंडके नारायणधर्म सम्राट हुए। प्रतिनारायणसे ही इन्होंने चक्र-रत्नको प्राप्त किया था।

(४) नारायणको चक्ररत्न[२] आदि सात रत्न और बलदेव स्वयंभूको चार रत्न[३] प्राप्त हुए थे।

(५) नारायणधर्मकी सोलह हजार रानियाँ थी।

(६) नारायणधर्म और प्रतिनारायण मधु ये दोनों सातवे नर्क गये और बलदेव स्वयभूने पहिले तो भाईके मरणका बहुत शोक किया पीछे भगवान विमलनाथके समवशरणमें दिक्षा धारण कर मोक्ष पधारे।

पाठ ३.

भगवान् अनंतनाथ।

(चौदहवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् विमलनाथके नव सागर बाद चौदहवें तीर्थंकर अनंतनाथका जन्म हुआ। इसके जन्मसे तीन चतुर्थांश पल्य पहिलेसे धर्म मार्ग बंद होगया था।

(२) भगवान् अनतनाथ कार्तिक कृष्ण प्रतिपदाको गर्भमें

१, २, ३, का विशेष वर्णन परिशिष्ट "क" में दिया गया है।

आये। पंद्रह मास तक रत्न वर्षा की गई। इन्द्रादि देवोंने गर्भ-कल्याणक उत्सव मनाया।

(३) इक्ष्वाकु वंशी काश्यप गोत्रके अयोध्याके राजा अयोध्यामें सिंहसेन और रानी जयश्यामा देवीके आप पुत्र थे।

(४) ज्येष्ठ वदी द्वादशीको आपका जन्म हुआ। आप तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए थे। इन्द्रादि देवोंने जन्म कल्याणक उत्सव मनाया।

(५) आपकी आयु तीस लाख वर्षकी थी और पचास धनुष ऊँचा शरीर था। वर्ण सुवर्णके समान था।

(६) साढ़े सात लाख वर्ष तक कुमार अवस्थामें रहकर पंदरह लाख वर्ष तक राज्य किया।

(७) आपके लिये वस्त्राभूषण स्वर्गसे आते थे। और साथमें क्रीडा करनेको स्वर्गसे देव भी आते थे।

(८) एक दिन आकाशमें उल्कापात देखकर आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ तब लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की। और भगवान् अनंतनाथने अपने पुत्र अनंतविजयको राज्य देकर ज्येष्ठ वदी बारसको सहेतुक नामक वनमें एक हजार राजाओं सहित दिक्षा धारण की। इस समय आपको मनःपर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति हुई।

(९) दो दिन उपवास कर विनीता नगरीके राजा विशेषके यहां आहार लिया। इन्द्रादि देवोंने राजाके यहां पंचाश्चर्य किये।

(१०) दो वर्ष तक तप कर चैत्र वदी अमावसके दिन

पीपलके वृक्षके नीचे केवलज्ञान प्राप्त किया। देवोंने समवशरण सभाकी रचना की और ज्ञान कल्याणकका उत्सव किया।

(११) भगवान्‌की सभामें इस भांति चतुर्विध संघ था।

९० जय आदि गणधर
१००० पूर्व ज्ञान धारी
३२०० वादी मुनि
३९५०० शिक्षक मुनि
४३०० अवधिज्ञानके धारी
९००० मन पर्ययज्ञानी
५००० केवलज्ञानी
८००० विक्रियारिद्धिके धारी

६६०९०

१०८००० श्रिया आदि आर्यिका
१०००००० श्रावक
३०००००० श्राविकायें।

(१२) आयुमे एक मास बाकी रहने तक समस्त आर्य-खंडमें आपने विहार किया। और धर्मोपदेश दिया।

(१३) विहार कर सम्मेद शिखर पर्वत पर पधारे। वहा पर दिव्य ध्वनिका होना बद हुआ। तब एक मासमे शेष चार कर्मोका नाश कर मिती चैत्र वदी आमावस्याको छह हजार एकसो साधुओं सहित मोक्ष पधारे। तब इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणकका उत्सव मनाया।

पाठ ८.

प्रतिनारायण मधुसूदन, और बलदेव सुप्रभ नारायण पुरुषोतम।

(चौथे नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र)

(१) भगवान् अनंतनाथ स्वामीके तीर्थकालमें काशी नरेश मधुसूदन प्रतिनारायण हुआ और सुप्रभ बलदेव हुए व पुरुषोत्तम नारायण हुए।

(२) बलदेवका नाम सुप्रभ था और नारायणका नाम पुरुषोत्तम था।

(३) द्वारिकाके[1] राजा सोमप्रभकी महारानी जयावतिसे बलभद्र—सुप्रभ उत्पन्न हुए और महारानी सीतासे[2] नारायण—पुरुषोत्तमका जन्म हुआ।

(४) नारायणकी आयु तीस लाख वर्षकी थी और शरीर पचास धनुष ऊंचा था।

(५) नारायण सात रत्नोंके और बलभद्र चार रत्नोंके स्वामी थे। प्रतिनारायणने चक्ररत्न सिद्ध किया था। इन तीनोंकी विशेष संपत्तिका वर्णन परिशिष्ट 'क' जानना चाहिये।

(६) नारायणकी सोलह हजार और प्रतिनारायणकी आठ हजार रानियां थीं।

---

१ एक जगह उत्तरपुराणमें द्वारिकाके राजा और दूसरी जगह खड्गपुरके राजा लिखा है।

२ इसका नाम आगे चल कर उत्तरपुराणकारने ही सुदर्शना लिखा है।

(७) प्रतिनारायण मधुसूदनने विजयार्द्ध पर्वतकी इस ओर (दक्षिणबाजू) तक राज्य प्राप्त किया था। और सब राजाओंको अपने वशमें किया था।

(८) मधुसूदनने जब नारायण पुरुषोत्तमसे कर व भेंट मांगी तब वे देनेसे नामजूर हुए। इस दोनोंका परस्पर युद्ध हुआ। मधुसूदनने नारायण पुरुषोत्तम पर चक्र चलाया पर यह चक्र नारायणकी प्रदक्षिणा देकर उनके हाथोंमें गया तब पुरुषोत्तम नारायणने मधुसूदन पर चलाया, और जिससे उसकी मृत्यु हुई। वह मर कर सातवें नरक गया। उसके तीन खण्डके राज्यके अधिकारी नारायण पुरुषोत्तम हुए।

(९) नारायणने आयुपर्यंत राज्य किया। फिर मर कर नरक गये। इनके देहातसे बड़े भाई सुप्रभने बहुत शोक किया। अंतमें सोमप्रभ जिनके समीप दिक्षा धारण कर मोक्ष गये।

पाठ ५।

भगवान् धर्मनाथ।

(पंद्रहवें तीर्थंकर)

(१) चौदहवें तीर्थंकर भगवान अनतनाथ मोक्ष जानेके चार सागर बाद भगवान् धर्मनाथ (पंद्रहवें तीर्थंकर) उत्पन्न हुए। आपके जन्मसे आधापल्य पहिलेसे धर्म मार्ग बंद था।

(२) वैशाख शुक्ल त्रयोदशीको भगवान् धर्मनाथ रत्नपुरके राजा भानुकी रानी देवी सुप्रभाके गर्भमें आये। आप कुरुवंशी काश्यप गोत्रके थे। गर्भमें आनेके छह मास पूर्वसे जन्म होने

तक स्वर्गसे रत्न वर्षा हुई। माताकी सेवा देवियोंने की। व इन्द्रादि देवोंने गर्भमें आनेपर गर्भ कल्याणक उत्सव मनाया।

(३) माघ सुदी त्रयोदशीको भगवान् धर्मनाथ तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए। इन्द्रादि देवोंने जन्मकल्याणक किया।

(४) आपकी आयु दश लाख वर्षकी थी और शरीर एकसो अस्सी हाथ ऊँचा था, वर्ण सुवर्णके समान था।

(५) ढाईलाख वर्ष तक कुमार अवस्थामें रहकर आप राज्य-पद पर सुशोभित हुए। आपके लिये वस्त्राभूषण और साथमें क्रीडा करनेको देव स्वर्गसे आते थे।

(६) राज्य करते हुए आपने एक दिन उल्कापात होता हुआ देखा। जिसे देखकर आपको वैराग्य हुआ। लौकांतिक देवोंने आकर स्तुति की। अपने पुत्र सुधर्मको राज्य देकर माघ सुदी त्रयोदशीके दिन शालिवनमें आपने दिक्षा धारण की। इन्द्रोंने तप कल्याणक उत्सव मनाया। भगवान्को दिक्षा धारण करते ही मन:पर्यय ज्ञानकी प्राप्ति हुई। भगवान्के साथ एकहजार राजा-ओंने दिक्षा धारण की थी।

(७) छह दिन तक उपवास कर पाटलीपुरके राजा धन्यषे-णके यहां आहार लिया। देवोंने राजाके घर पंचाश्चर्य किये थे।

(८) एक वर्ष तक तप कर शालिवनमें सप्तछदके वृक्षके नीचे पौष सुदी पूनमके दिन भगवान्को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। देवों द्वारा समवशरणकी रचना की गई। व इन्द्रादि देवोंने केवलज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया।

(९) आपकी सभामें इस भांति चतुर्संघ था—

४३ गणधर
९०० पूर्व ज्ञानधारी
४०७०० शिक्षक मुनि
३६०० अवधिज्ञानधारी
४५०० केवली
७००० विक्रियारिद्धिके धारी
७००० मन पर्यय ज्ञानी
२८०० वादी मुनि.

६६५४३)

६२४०० सुव्रता आदि आर्यिका
१००००० श्रावक
४००००० श्राविका

(११) आयुमे एक मास बाकी रहने तक आपने आर्यखडमें विहार किया। फिर सम्मेद शिखरपर पधारे । शेष एक माहमे बचे हुए चार कर्मोका नाश कर मिती ज्येष्ठ सुदी चोथके दिन आठसो नो मुनियों सहित मोक्ष पधारे । इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणकका उत्सव मनाया ।

पाठ ६.

प्रतिनारायण-मधुकीड़-नारायण पुरुषसिंह, बलदेव-सुदर्शन ।

(पाचवें प्रति नारायण, नारायण और बलभद्र)

(१) भगवान् धर्मनाथके समयमें प्रतिनारायण मधु कैटभ-नारायण पुरुषसिंह और बलदेव सुदर्शन हुए थे ।

(२) बलदेव सुदर्शन और नारायण पुरुषसिंह खगपुरके राजा सिंहसेनके पुत्र थे। बलदेवकी माताका नाम विजया देवी और नारायणकी माताका नाम अंबिका देवी था। आपका वंश इक्ष्वाकु था।

(३) प्रति नारायण मधुक्रीड या मधुकैटभ (दोनों नाम थे) हस्तिनागपुर (कुरुजांगल देश) का राजा था। इसने तीन खंड पृथ्वी विजयार्द्ध पर्वतकी इस ओर तक—दाहिनी बाजू तक वश की थी और सम्पूर्ण राजाओंको आधीन किया था व चक्र रत्न प्राप्त किया था।

(४) नारायण पुरुषसिंह सप्त रत्न आदि संपत्तिके स्वामी हुए थे और बलभद्रको चार रत्न प्राप्त थे। इनकी संपत्तिका वर्णन परिशिष्ट 'क' में दिया गया है।

(५) नारायणकी सोलह हजार रानियां थीं और प्रति नारायणकी आठ हजार।

(६) मधुकैटभ (प्र० ना०) ने पुरुषसिंह (नारायण) और सुदर्शन (बलभद्र) के वैभव व बल पराक्रमके हाल सुन कर दूत भेजा और कर व भेंट मांगी जिसे देनेसे नारायण बलभद्रने इनकार किया। तब दोनोंका परस्पर युद्ध हुआ। जिसमें नारायण पुरुषसिंहने विजय प्राप्त की। नारायणको मारनेके लिये मधुकैटभने जो चक्र चलाया था वह नारायणकी प्रदक्षिणा दे उनके हाथमें जाकर ठहर गया फिर उसी चक्रके नारायण द्वारा चलानेसे प्रतिनारायण-

की मृत्यु हुई और वह नरक गया। नारायणकी आयु दश लाख वर्षकी थी और शरीर पेंतालीस धनुष ऊँचा था।

(७) लाखों वर्षों तक राज्य कर अंतमें नारायण–पुरुषसिंह भी नर्क गया। भाईकी मृत्युसे बलभद्रने बहुत शोक किया था। अतमें श्री धर्मनाथ तीर्थंकरके समीप दिक्षा ली और मुक्ति गये।

पाठ ७।

चक्रवर्ति मघवा।

(तृतीय चक्रवर्ति)

तीसरे चक्रवर्ति मघवा अयोध्याके राजा सुमित्र और रानी सुभद्राके पुत्र थे। आपका वश इक्ष्वाकु था। आयु पांच लाख वर्षकी और शरीरकी ऊचाई एक सो सत्तर हाथ थी। इनको चक्ररत्न आदि सात निर्जीव और सात सजीव रत्न प्राप्त हुए थे। नवनिधिया थीं, इनकी पूर्ण संपत्तिका वर्णन परि-शिष्ट 'ख' मे दिया गया है। इन्होंने छह खण्ड पृथ्वी विजय की। बत्तीस हजार राजाओंके ये स्वामी थे। छनवे हजार रानियाँ थीं। लाखों वर्ष राज्यकर अन्तमें **अभयघोष** जिनके समीप दिक्षा-धारण की और तपकर मोक्ष गये। आपके पुत्रका नाम **प्रियमित्र** था। यही प्रियमित्र चक्रवर्ति मघवाका उत्तराधिकारी हुआ। मघवा चक्रवर्ति भगवान् धर्मनाथके तीर्थकालमें हुए थे।

पाठ ८।
सनत्कुमार।
(चौथे चक्रवर्ति)

(१) भगवान् धर्मनाथके ही तीर्थकालमें मघवा चक्रवर्तिके बाद सनत्कुमार चौथे चक्रवर्ति हुए थे। ये अयोध्याके राजा सूर्यवंशी अनतवीर्य और रानी सहदेवीके पुत्र थे। ये बड़े भारी रूपवान थे। इनके रूपकी प्रशंसा स्वर्गमें इन्द्रादिदेव किया करते थे। साड़े इकतालीस धनुष ऊंचा शरीर था और आयु तीन लाख वर्षकी थी। चौदह रत्न, नव निधियां आदि सम्पति जो कि प्रत्येक चक्रवर्तिको प्राप्त होती है प्राप्त हुई थी। (देखो परिशिष्ठ 'ख') छह खण्डको इन्होंने विजय किया। बत्तीस हजार राजा इनके आधीन थे। छनवे हजार रानियां थीं

(२) इनका रूप इतना सुंदर था कि एक दिन इन्द्रसे स्वर्गमें इनके रूपकी प्रशंसा सुन दो देव आये। और छिपकर रूप देखने लगे। उस रूपसे देवोंको बड़ा संतोष हुआ। फिर प्रगट होकर चक्रवर्तिसे अपने आनेका हाल निवेदन किया।

(२) एक दिन चक्रवर्तिको ससारकी अनित्यताका ध्यान हुआ तब अपने पुत्र देवकुमारको राज्य दे शिवगुप्त जिनके समीप बहुतसे राजाओं सहित दिक्षा धारण की।

(३) तप करते समय इनके शरीरमें कुष्ट आदि अनेक भयंकर रोग उत्पन्न हुए जिनसे शरीरकी सुंदरता नष्ट हो गई। तब परीक्षार्थ देवोंने वैद्यका रूप धारण किया और इनके समीप आये। देवोंमें और इनमें इस भांति बातचीत हुई—

देव (वैद्य रूपमें)–स्वामिन्! मैं बड़ा प्रसिद्ध वैद्य हूं। आपके शरीरमें रोगोंका समूह देख कर मुझे दुःख होता है, आज्ञा दीजिये कि मैं इन्हें दूर करूं।

सनत्कुमार (मुनीश–पहिलेके चक्रवर्ती)–वैद्यवर, इन शारीरिक रोगोंसे मेरी कुछ भी हानि नहीं होती। किंतु जन्म मृत्युके जो रोग हैं वे बहुत दुःख दे रहे हैं, यदि आपमें शक्ति हो तो उन रोगोंको दूर करिये।

यह उत्तर सुनकर देव चुप हो गया और फिर प्रगट हो कर स्तुति की। *

(४) अन्तमे इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। और मोक्ष पधारे।

नोट—पद्मपुराणमे सनत्कुमार चक्रवर्तिको नागपुरके राजा लिखे है और उनका नाम विजय लिखा है। और सनत्कुमारके वैराग्य धारण करनेके संबंधमें लिखा है कि जब स्वर्गसे देव रूप देखने आये तब सनत्कुमार व्यायाम करके उठे ही थे उनके शरीर पर अखाडेकी रज लगी हुई थी जिस पर भी इनका रूप देवोंको बहुत सुंदर लगा। फिर जब ये स्नानादि कर राज सभामें बैठे तब देव प्रगट रूपसे देखने आये उस समय देवोंने कहा कि पहिले देखे हुए रूपसे इसमें न्यूनता है यह सुन कर सनत्कुमारको वैराग्य हुआ।

---

* यह कथा व रोग होनेका वर्णन संस्कृतके मूल उत्तर पुराणमें नहीं है। यहा सुशीलचन्द्रजीके अनुवादसे ली गई है। पर यह कथा जैन समाजमें भी प्रसिद्ध है। पद्मपुराणकारने भी रोग होना माना है।

पाठ ९।

भगवान् शांतिनाथ।

(सोलहवें तीर्थंकर और पांचवें चक्रवर्ति)

(१) भगवान् धर्मनाथके पौन पल्य कम तीन सागर बाद भगवान शांतिनाथ हुए। धर्मनाथ स्वामीके तीर्थकालके अंतिम पाव पल्य तक धर्म मार्ग बंद रहा जिसे शांतिनाथ स्वामीने चलाया।

(२) भगवान्के पिताका विश्वसेन और माताका नाम एरादेवी था। ये हस्तिनापुरके राजा और काश्यप वंशके थे।

(३) भगवान् शांतिनाथ भादों सुदी सप्तको गर्भमें आये। माताने सोलह स्वप्न देखे। गर्भमे आनेके छहमास पहिलेसे जन्म होने तक देवोंने रत्नवर्षा की। और गर्भमें आनपर गर्भ कल्याणक उत्सव मनाया। माताकी सेवामें देवियां रखी गई थी।

(४) भगवान् शांतिनाथका जन्म ज्येष्ठ वदी चौदसको हुआ। इन्द्रादि देव भगवानको सुमेरु पर ले गये और जन्म कल्याणक उत्सव मनाया। जन्मसे आप भी मतिज्ञानादि तीन ज्ञानयुक्त थे।

(५) आपकी आयु एक लाख वर्षकी थी और शरीर चालीस धनुष ऊंचा था। वर्ण सुवर्णके समान था।

(६) भगवान् शांतिनाथकी दूसरी माता (विमाता)के गर्भसे चक्रायुद्ध नामक पुत्रका जन्म हुआ यह आपका छोटा भाई था।

(७) भगवान्‌का कुमार काल बत्तीस हजार वर्षका था। उसके पूर्ण होनेपर आप पिताके राज्यासन पर बैठे ।

(८) भगवान् शांतिनाथ पाचवें चक्रवर्ति हुए थे । इसलिये भरत आदि चक्रवर्तियोंको जो चौदह रत्न, नवनिधि, छह खड पृथ्वीकी मालिकी आदि सपत्ति प्राप्त हुई थी वह इनको भी हुई । आपकी भी छनवे हजार रानियॉ थीं ।

(९) पचवीस हजार वर्ष तक चक्रवर्ति महाराजाधिराजकी अवस्थामें रहकर भगवान एक दिन कॉच (दर्पण) में अपने दो मुँह देखकर चकित हुए और अपने पूर्व भवके वृत्तात जान ससारको अनित्य समझ वैराग्यका चितवन करने लगे। तब लौकांतिक देवोंने आपके विचारोंकी स्तुति व प्रशंसा की । फिर अपने पुत्र नारायणको राज्य देकर सहस्राम्र वनमें आपने दिक्षा धारण की । इस समय इन्द्रादि देवोने गर्भ कल्याणकका उत्सव मनाया था । भगवान्‌का दिक्षा दिन ज्येष्ठ वदी चौथ था । तप धारण करने समय भगवान्‌को चोथे मन पर्यय ज्ञानकी प्राप्ति हुई । भगवान्‌के साथ चक्रायुध आदि एक हजार राजाओंने भी दिक्षा ली थी ।

(१०) पहिले ही पहिल दो दिनका उपवास धारण कर उसके पूर्ण होनेपर मंदिरपुरमें राजा सुमित्रके यहॉ आहार लिया। इसपर देवोंने राजाके ऑगनमे पंचाश्चर्य किये ।

(११) आठ वर्ष तक तप कर पोष सुदी दशमीको भगवान्‌के केवलज्ञानी हुए । तब इन्द्रादि देवोंने समवशरण सभा बनाई व ज्ञान कल्याणक उत्सव किया ।



(१२) भगवान्‌का चतुर्विध[1] संघ इस भांति था।

३६	चक्रायुध आदि गणधर
८००	पूर्वज्ञानके धारी
४१८००	शिक्षक मुनि
३०००	अवधिज्ञानी
४०००	केवलज्ञानी
६०००	विक्रियारिद्धिके धारी
४०००	मन पर्ययज्ञानी
२४००	वादी मुनि
६२०३६	

६०३००	हरिषेणा आदि आर्यिका
२०००००	हरिकीर्ति आदि श्रावक
४०००००	अर्हदासी आदि श्राविका।

(१३) आयुके एक मास बाकी रहने तक आपने आर्यखंडमें विहार किया। बाद सम्मेदशिखर पर पधार कर एक मासमें शेष कर्मोका नाश कर ज्येष्ठ वदी चतुर्दशीको मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया।

१–मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारोंका संघ (समूह) चतुर्विध संघ कहलाता है।

पाठ १०.

भगवान् कुंथुनाथ।

(सत्रहवें तीर्थंकर और छठवें चक्रवर्ति)

(१) भगवान् शांतिनाथके मोक्ष जानेके आधे पल्य बाद भगवान् कुंथुनाथ हुए थे।

(२) हस्तिनागपुरके कुरुवंशी राजा सूरसेनकी रानी कांताके गर्भमें भगवान् कुंथुनाथ श्रावण वदि दशमीको आये। माताने सोलह स्वप्न देखे। गर्भमें आने पर इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक उत्सव मनाया। देवियां माताकी सेवामें रखी गईं। आपके गर्भमें आनेके छह मास पूर्वसे जन्म होने तक स्वर्गसे रत्न वर्षा होती थी।

(३) भगवान्का जन्म वैशाख सुदी प्रतिपदाको हुआ। आप भी तीन ज्ञान सहित उत्पन्न हुए थे। इन्द्रादिकोंने मेरु पर्वत पर लेजाना, अभिषेक व स्तुति करना आदि जन्म कल्याणक उत्सव किया।

(४) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव और पहिरने आदिको वस्त्राभूषण आते थे।

(५) आपकी आयु पंचानवे हजार वर्षकी थी। और शरीर तीस धनुष ऊंचा था।

(६) आपने तेवीस हजार सातसो पचास वर्ष तक कुमार अवस्थामें रह कर राज्य प्राप्त किया।

(७) आप इस युगके छठवें चक्रवर्ति हुए हैं। आपको भी चक्र रत्न आदि चौदह रत्न, नवनिधि, छह खंड पृथ्वीकी मालिकी आदि संपत्ति भरत आदि चक्रवर्तिके समान प्राप्त हुई थी।

(८) एक दिन वनमें क्रीड़ाके लिये आप गये थे, वहांसे लोटते समय आपने एक मुनि देखे जिन्हें देखकर आपको वैराग्य हुआ। लौकांतिक देवोंने आकर आपकी स्तुति की। फिर पुत्रको राज्य देकर चक्रवर्ति भगवान् कुंथुनाथने एक हजार राजाओं सहित वैशाख सुदी एकमके दिन दीक्षा धारण की। आपके मनः-पर्यय ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्द्रादि देवोंने तप कल्याणकका उत्सव मनाया।

(९) दो दिन उपवास कर हस्तिनागपुरके राजा धर्ममित्रके यहां आपने आहार लिया। देवोंने राजाके यहां पंचाश्चर्य किये।

(१०) सोलह वर्ष तक तप कर चैत्र सुदी तीजको भगवान् केवलज्ञानी हुए। इन्द्रादि देवोंने समवशरणकी रचना आदिसे ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया।

(११) भगवान्‌की सभामें इस भांति चतुर्विध संघ था।

३५ स्वयंभू आदि गणधर
७०० पूर्व ज्ञानधारी
४३१५० शिक्षक मुनि
२५०० अवधि ज्ञानी
३२०० केवल ज्ञानी।
५१०० विक्रिया धारी
३३०० मनःपर्यय ज्ञानधारी
२०५० वादी मुनि
―――――
६००३५

१०३५० माविता आदि आर्यिका
२००००० श्रावक
३००००० श्राविकायें

(१२) आयुके एक मास शेष रहने तक आपने आर्य खंडमें विहार किया फिर सम्मेद शिखर पधारे। वहां दिव्य ध्वनि होना बंद हुआ और शेष कर्मोंका एक माहमें नाश कर वैशाख सुदी प्रतिपदाको आप मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया।

पाठ ११.

भगवान् अरहनाथ।

(अठारहवें तीर्थंकर और सातवें चक्रवर्ति)

(१) भगवान् अरहनाथ तीर्थंकर कुंथुनाथस्वामीके मोक्ष जानेके दश अरब वर्ष कम सवा पल्य बाद मोक्ष गये। भगवान् कुंथुनाथके शासनके अंत समयमें धर्म मार्ग बंद रहा।

(२) भगवान् अरहनाथ सोमवंश काश्यपगोत्री हस्तिनापुरके राजा सुदर्शनकी महारानी मित्रसेनाके गर्भमें फाल्गुण सुदी तृतीयाको आये। आपके गर्भमें आनेके छह मास पहिलेसे जन्म होने तक पंद्रह मास स्वर्गसे रत्नोंकी वर्षा हुई। माताकी सेवाके लिये देवीयाँ रखी गईं। देवोंने गर्भकल्याणक उत्सव मनाया। माताने पूर्व तीर्थंकरोंकी माताओंके समान सोलह स्वप्न देखे।

(३) भगवान् अरहनाथका जन्म मार्गशीर्ष सुदी चतुर्दशीको तीन ज्ञान सहित हुआ। इन्द्रादि देवोंने मेरु पर भगवान्का अभिषेक करना आदि अनेक उत्सवों द्वारा जन्मकल्याणकका उत्सव मनाया।

(४) भगवान्के साथ खेलनेको देवगण स्वर्गसे आते थे। और स्वर्गसे ही वस्त्राभूषण आया करते थे।

(५) इनकी आयु चौरासी हजार वर्षकी थी और तीस धनुष ऊँचा शरीर था। आपका वर्ण सुवर्णके समान था।

(६) इकवीस हजार वर्ष तक आपका कुमारकाल था और इकवीस हजार वर्ष तक आपने मंडलेश्वर महाराज होकर राज्य किया। फिर आप छह खंड, चौदह रत्न, नवनिधिके स्वामी होकर चक्रवर्ति महाराजाधिराज हुए। और एकवीस हजार वर्ष तक चक्रवर्ति होकर राज्य किया। आपकी संपत्ति भरत आदि चक्रवर्तिके समान थी, आपकी छनवे हजार रानियाँ थीं।

(७) एक दिन शरदऋतु बादलोंके देखते देखते आपको वैराग्य हुआ। लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की। फिर अपने पुत्र विंदुकुमारको राज्य देकर आपने दीक्षा धारण की। आपके साथ एक हजार राजाओंने दीक्षा ली थी। दीक्षा दिन मार्गशीर्ष सुदी दशमी थी। दीक्षा समय आपको चतुर्थ मन.पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति हुई।

(८) एक दिन उपवास कर दूसरे दिन आपने चक्रपुरके राजा अपराजितके यहाँ आहार लिया। देवोंने राजाके घर पंचाश्चर्य किये।

(९) सोलह वर्ष तक तप करने पर मिती कार्तिक सुदी बारसके दिन भगवान्के चार घातिया कर्मोंका नाश हुआ। और केवलज्ञान प्रगट हुआ। तब इन्द्रादि देवोंने ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया।

(१०) भगवान्की सभामें इस भांति चतुर्विध संघ था।

३० कुभार्य्य आदि गणधर
६१० पूर्वांग ज्ञानके धारी
२९८२९ शिक्षक मुनि
२८०० अवधिज्ञानी
२८०० केवलज्ञानी
४३०० विक्रिया रिद्धिधारी
२०५५ मन:पर्यय ज्ञानी
११०० वादी
५००३०
६०००० यक्षिला आदि आर्यिकायें
११०००० श्रावक
३००००० श्राविका

(११) आयुमें एक मास शेष रहने तक आपने समस्त आर्यखंडमें विहार किया। और जब आयु एक मासकी रह गई तब आप सम्मेदशिखर पधारे। दिव्यध्वनि होना बंद हुई। इस एक मासमें भगवान् शेष कर्मोंको नाश कर चैत्र वदी अमावसको मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकका उत्सव मनाया।

पाठ १२.

अरहनाथ स्वामीके समयके अन्य प्रसिद्ध पुरुष।

(१) भगवान् अरहनाथके कालमें चक्रवर्ति, नारायण, बलदेव आदिके सिवाय जो प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं उनमेंसे कुछ पुरुषोंकी जीवन घटना इतिहासमें मिलती है शेषकी नहीं। इन पुरुषोंका नाम इस भांति हैं–सहस्त्रबाहु, पारताख्य, कृतवीर्य, जमदग्नि, परशुराम स्वेतराम।

(२) सहस्त्रबाहु अयोध्याका राजा था। और पारताख्य कान्यकुब्जका राजा था। यह सहस्त्रबाहुका ससुर था, इसने अपनी पुत्री चित्रमती सहस्त्रबाहुको दी थी।

(३) जमदग्नि पारताख्यका भानेज श्रीमतीका पुत्र था। श्रीमतीके मर जानेके कारण पारताख्य तापसी होगया था।

(४) कृतवीर्य सहस्त्रबाहुका पुत्र था।

(५) एक बार स्वर्गमें पूर्व जन्मके दो मित्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंके पूर्व जन्मके नाम दृढग्राही और हरिशर्मा था। दृढग्राही क्षत्रिय राजा था और हरिशर्मा ब्राह्मण था। राजा दृढग्राहीने जैन साधुओंकी दीक्षा ली थी। और हरिशर्मा तापसी हुआ था। दोनों मरकर स्वर्गमें उत्पन्न हुए। दृढ़ग्राही राजा मर कर सौधर्म देव हुआ और हरिशर्मा ज्योतिषी देव। स्वर्गमें दृढ़ग्राही राजाके जीव सौधर्मने हरिशर्माके जीव ज्योतिषी देवसे कहा कि देखो हम जिन दीक्षाके प्रतापसे उच्च श्रेणीके देव हुए और तुम तापस हुए जिसके कारण निम्न श्रेणीका देव होना पड़ा।

तब वह कहने लगा कि तापसी साधु होना कम फल देनेवाला क्यों है ? ऐसी तापसियोंके तपमें क्या अशुद्धता है ? तब सौधर्म देवने कहा कि इसका प्रत्यक्ष उदाहरण तुम्हे मैं पृथ्वीपर बतलाऊंगा ऐसा कहकर दोनोंने चकवाचकवीका रूप धारण किया। और ऊपर जिस जमदाग्नि तापसीका वर्णन दिया गया है उसके समीप आकर परस्पर बातें करने लगे। चकवाने कहा कि चकवी तुम यहाँ ठहरना, मै अभी आता हूँ। इस पर चकवीने शपथ खानेका हठ किया। और कहा कि तुम शपथ लो कि यदि मै न आऊँ तो "जमदग्निके समान तापसी होऊँ" चकवाने यह शपथ अस्वीकार की इस पर जमदग्नि क्रोधित होकर कहने लगा कि तूँ मुझ समान तपस्वी होना क्यों नहीं चॉहता, तब चकवाने कहा कि महाराज ! शास्त्रोंका वचन है कि 'अपुत्रस्य गति नास्ति" अर्थात् जिसके पुत्र न हो उसकी गति नहीं होती और आपके समान तापसी होनेसे पुत्र नहीं हो सकता अतएव मैंने आप समान होनेकी इच्छा नहीं की तब जमदग्नि भी पुत्रके लोभसे विवाह करनेको तैयार हुआ और अपने मामा पारतारव्यके पास जाकर कन्या मांगी। मामाने कहा कि मेरी सौ पुत्रियोंमेंसे जो तुझे चाहे उसे मैं तेरे साथ विवाह कर दूंगा। जमदग्नि पुत्रियोंके पास गया पर जो समझदार और बडी थीं उन्होने तो इसे नहीं चाहा। एक बालिका रेतीमें खेल रही थी उसे केलाका फल दिखाया और कहा कि तू मुझे चाहती है तब उसने स्वीकार किया। फिर उसीके साथ पारताख्यने विवाह कर दिया। जमदग्निने उसका नाम रेणुमती रक्खा। इस रेणुमतीके दो पुत्र हुए। परशुराम और श्वेतराम। ये

दोनों बड़े बलवान् थे। जमदग्निके इस प्रकार विवाह पर उतारू हो जानेसे सौधर्मने तापसियोंके तपकी अशुद्धता अपने मित्रको बतलाई कि इन तापसियोंका मन कितना अस्थिर रहता है। जमदग्निने इस प्रकारके तापसियोंके विवाहको प्रवृत्ति धर्म कहकर प्रख्यात किया।

(६) जमदग्निकी स्त्री रेणुमतीके बड़े भाई अरिंजय मुनि एक वार रेणुमतीके यहां आये और उसे सम्यक्त अंगीकार कराया और सर्व इच्छित फल देनेवाली एक धेनु (गौ) और एक फरसा (शस्त्र विशेष) रेणुमतीको दिया।

(७) राजा सहस्रबाहु और उसके पुत्र कृतवीर्य एक वार जमदग्निके यहा आये और उस धेनुसे प्राप्त पदार्थोंका भोजन किया। तब कृतवीर्यने उस धेनुको मांगा। पर रेणुमती देनेको तैयार नहीं हुई। तब कृतवीर्य बलपूर्वक उसे छुड़ाकर ले गया। और जमदग्निको मार डाला।

(८) जमदग्निके–पुत्र परशुराम और स्वेतरामने घर आनेपर जब पिताके मारनेके समाचार सुने तो क्रोधित होकर वे दौड़ कर गये और मार्गमें ही सहस्रबाहु और उसके पुत्र कृतवीर्यको मारा। और फिर इक्कीस वार पृथ्वी परसे क्षत्रियोंको निःशेष किया।

(९) इसी परशुरामके भयसे सहस्रबाहुकी गर्भवती रानी चित्रमतीको उसके बड़े भाई सांडिल्यने बनमें रखा जिसके गर्भसे चक्रवर्ति सुभौम उत्पन्न हुए।

(१०) एक वार निमित्त ज्ञानीके यह कहने पर कि तुम्हारा शत्रु उत्पन्न हो गया है और उसकी परीक्षा यह है कि जिसके आगे तुम्हारे मारे हुए राजाके दांत भोजनके पदार्थ हो जावे वही

तुम्हारा शत्रु होगा। इस पर परशुरामने सबका निमंत्रण किया। उसमें सुभौम भी आये। भोजनशालाके अधिकारीने क्रमशः दांत बतलाना शुरू किये। सुभौमके पास आते ही वे दांत सुगंधित चावल हो गये। बस सुभौम शत्रु समझा गया। उसे परशुरामने पकड़वाना चाहा पर निष्फल हुआ। फिर दोनोंका युद्ध हुवा। इसी युद्धमें सुभौमको चक्ररत्न और राजरत्नकी प्राप्ति हुई। चक्ररत्नसे सुभौमने परशुरामको मारा।

नोट.–हरिवंश पुराणकारने लिखा है कि परशुरामने ७ वार क्षत्रियोंको मारा था।

पाठ १३.

चक्रवर्ति सुभौम।

(आठवें चक्रवर्ति)

(१) आठवें चक्रवर्ति महाराजाधिराज सुभौम भगवान् अरहनाथके मोक्ष जानेके दो अरब बत्तीस वर्ष बाद उत्पन्न हुए थे।

(२) चक्रवर्ति सुभौम इक्ष्वाकु वंशी अयोध्याके राजा सहस्रबाहुके पुत्र थे। जिस समय इनका जन्म हुआ था उस समयके पहिले ही इनके पिता व भ्राता परशुरामके हाथो मारे जा चुके थे।

(३) जिस समय चक्रवर्ति गर्भमें थे उस समय चक्रवर्तिकी माता (गर्भवती) चित्रमतिको उसका तापसी बडा भाई सांडिल्य

१–२ सहस्रबाहु और परशुरामका वर्णन गत पाठमें दिया गया है।

परशुरामके भयसे अपने साथ ले गया और वनमें सुसिद्धार्थ नामक जैन मुनिसे सब समाचार कहे व रानी चित्रमतीको बिठलाकर मुनिसे यह कहकर कि मैं अपने आश्रमको देखकर अभी आता हूं क्योंकि वह सूना है और आकर इसे ले जाऊँगा चला गया। कुछ समय बाद रानी चित्रमतीने गर्भ प्रसव किया और उससे चक्रवर्ति सुभौम उत्पन्न हुए।

(४) जिस वनमें चक्रवर्ति उत्पन्न हुए थे वहांके वन देवताने इन्हें भरतक्षेत्रके भावी चक्रवर्ति समझ इनकी व माता चित्र-मतीकी उचित सेवा की। और उसकी संरक्षामे बालक सुभौम बढ़ने लगे।

(५) एकवार चित्रमतीके पूछने पर मुनि सुसिद्धार्थने कहा था कि यह बालक सोलहवें वर्षमें चक्रवर्ति होगा।

(६) कुछ समय बाद सांडिल्य अपनी बहिन और भानेजको अपने स्थान पर ले गया और पृथ्वीको स्पर्श करते हुए जन्म होनेके कारण बालकका नाम सुभौम रखा।

(७) परशुरामने एकबार अपने शत्रुको जाननेकी परीक्षाके लिये सबका निमंत्रण किया उसमें सुभौम भी गये थे। भोजन करते समय परशुराम द्वारा मारे हुए राजाओंके दांत सबको दिख-लाये। वे दांत सुभौमको दिखलाते ही सुगंधित चावल हो गये। बस शत्रु पकड लिया गया। अर्थात् सुभौम शत्रु माना गया। परशुरामने इसे बुलाया पर यह नहीं गया। तब दोनोंका युद्ध हुआ। जब सुभौम जीता नहीं जा सका तब परशुरामने अपना मदोन्मत्त हाथी सुभौम पर छोड़ा वह हाथी सुभौमके वश हुआ

और चक्रवर्तिके सात सजीव रत्नोंमेंसे गजरत्न बना उसी समय सुभौमको हजार देवोंद्वारा रक्षिता चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई उसके द्वारा सुभौमने परशुरामको मारा।

(८) परशुरामको जीतनेके बाद नव निधियाँ और बाँकीके बारह रत्न उत्पन्न हुए। सुभौमने छह खंड पृथ्वीकी विजय की और भरत आदि चक्रवर्तिके समान संपत्तिका स्वामी हुआ। चक्रवर्ति सुभौमकी छनवे रानियाँ थीं।

(९) एक दिन चक्रवर्तिके अमृतरसायन नामक रसोइयाने कुछ पदार्थ बड़े हर्षके साथ चक्रवर्तिको परोसा। चक्रवर्ति, उस नये पदार्थको न खाकर केवल उस पदार्थके नाम मात्र सुनते ही क्रोधित हुआ और रसोइयाके शत्रुओंके बहकानेमें आकर उसे दंड दिया। रसोइया क्रोधित होकर मरा और कुछ पूर्व पुण्यके उदयसे ज्योतिषी देव हुआ। वहाँ विभंगी अवधिज्ञानसे चक्रवर्ति द्वारा प्राप्त दंडका स्मर्ण कर चक्रवर्तिको मारनेके लिये व्यापारी बनकर आया और स्वादिष्ट फल चक्रवर्तिको खिलाये। जब वे फल न रहे तब चक्रवर्तिने उससे फिर मांगे। व्यापारी रूपधारी देव कहने लगा कि वे फल अब तो मै नहीं ला सकता क्योंकि वे तो अमुक देवताने बडे आराधनसे प्राप्त किये थे, यदि आपकी इच्छा है तो इन फलोंके वनमें चलो वहाँ आप इच्छानुसार भक्षण कर सकेंगे। जिह्वालंपटी सुभौम उस ठग व्यापारीके साथ मंत्रियोंके रोकनेपर भी गया। इधर पुण्यक्षीण हो जानेके कारण चक्रवर्तिके घरसे चौदह रत्न और नौनिधियाँ नष्ट हो गईं। उधर चक्रवर्तिका जिहाज जब बीच समुद्रमें पहुंचा तब व्यापारी वेशधारी देवने

रसोईयाका रूप धारण कर अपना वैर प्रगट किया और उसका बदला चुकानेके लिये चक्रवर्तिके जिहाजको समुद्रमें डुबा दिया। चक्रवर्तिका अंत हुआ और वह मर कर नरक गया।

(१०) चक्रवर्ति सुभौमकी आयु साठ हजार वर्षकी थी और शरीर सुवर्णके रंगके समान था व शरीरकी ऊंचाई अठावीस धनुषकी थी।

(नोट) पद्मपुराणकारने सुभूमिके पिताका नाम कार्तिवीर्य और माताका नाम तारा लिखा है। व लिखा है कि सुभौम अतिथि बनकर परशुरामके यहां भोजनको गया तब परशुरामने दांत पात्रमें रख बताये सो दांत चावल होगये और पात्र चक्र हुआ। इस चक्रसे सुभौमने परशुरामको मारा। और पृथ्वीको ब्राह्मणवर्णसे निःशेष की। हरिवंशपुराणमें भी सुभौम चक्रवर्तिके पिताका नाम कार्तिवीर्य और माताका नाम तारा लिखा है। और तापसीका नाम कौशिक है। हरिवंश पुराणमें यह उल्लेख नहीं है कि वह तापस सुभौमकी माताका भाई था। और न सिद्धार्थ मुनिका ही कुछ उल्लेख है। महापुराणकारने बन देवताकी संरक्षणतामें इनका पालन होना लिखा है पर हरिवंशपुराणमें लिखा है कि ये कौशिक नामा तापसीके आश्रममें ही गुप्तरीतिसे पले थे। हरिवंशपुराणकारने भी इन्हें परशुरामके यहां निमंत्रित होकर जानेका कोई उल्लेख नहीं किया है किंतु यह लिखा है कि इनके भावी श्वसुर अरिंजयपुरके विद्याधर राजा मेघनाथको निमित्तज्ञानी और केवलीकेद्वारा जब यह विदित हुआ कि उसकी पुत्री पद्मश्री चक्रवर्ति सुभौमकी पट्टरानी होगी और

सुभौमके जन्मादिका उसे पता मिला तब वह स्वयं हस्तिनापुरमें तापसके आश्रममें आया और सुभौमको शस्त्र शीलनमें निपुण जानकर जो कुछ केवलीके द्वारा जाना था सो सब कहा तब मेघनाथके साथ सुभौम परशुरामके यहां गया वहां इसे भोजनशालाके आयेकारी जब भोजन कराने लगे तब क्षत्रियोंके दांत खीरके समान हो गये। बस शत्रुके आनेके समाचार परशुरामको भेजे गये और परशुराम फरसा लेकर मारने आये। इधर जिस थालीमें चक्रवर्ति भोजन कर रहे थे वह थाली चक्रके समान होगई और उसके द्वारा सुभौमने परशुरामको मारा। और इकवीसवार ब्राह्मणोंको मारा। हरिवंशपुराणमें गजरत्नकी व सुभौमके मरनेकी उक्त कथाका उल्लेख नहीं पाया जाता।

पाठ १४.

प्रतिनारायण-निशुंभ, बलदेव नंदिषेण, नारायण पुंडरीक।

(छठवें प्रतिनारायण, बलदेव और नारायण)

(१) नारायण पुंडरीक और बलदेव नंदिषेण सुभौम चक्रवर्तिके छह अर्व वर्ष बाद उत्पन्न हुए।

(२) नारायण और बलदेव इक्ष्वाकुवंशी चक्रपुरके महाराज वरसेनके पुत्र थे। बलदेवकी माताका नाम वैमयंती था और नारायणकी माताका नाम लक्ष्मीवती था।

(३) नारायणकी आयु साठ हजार वर्षकी थी और शरीर अट्ठावीस धनुषका था।

(४) इन्द्रपुरके राजा उपेन्द्रसेनने अपनी कन्या पद्मावती-का विवाह नारायण पुंडरीकके साथ किया था।

(५) प्रतिनारायण-निशुंभने तीन खंड पृथ्वी वश की थी। यह पुंडरीक और पद्मावतीके विवाहसे असंतुष्ट हुआ और नारा-यण बलदेवसे लडनेको आया।

(६) युद्धमें जब निशुंभने पार नहिं पाया तब नारायण पर चक्र चलाया, वह भी नारायणके दाहिने हाथमें ठहर गया फिर नारायणके चलाने पर उसी चक्रसे निशुंभ मारा गया और मरकर नरक गया।

(७) नारायण पुंडरीक तीन खंडके स्वामी हुए। और अर्द्ध चक्री कहलाये। ये सोलह हजार रानियोंके स्वामी थे। तीन खंड पृथ्वीके अधिपति हुए। इनके यहा सात रत्न उत्पन्न हुए थे। इनके बडे भाई बलदेवको चार रत्न प्राप्त थे।

(८) नारायण अपनी आयु भोगविलासोंमें ही व्यतीत कर नरक गये और बलदेव-नदिषेणने दिक्षा ली और तप कर आठों कर्मोका नाश किया और मोक्ष पधारे।

पाठ १५.

भगवान् मल्लिनाथ।

(उगनीसवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् मल्लिनाथ अठारहवें तीर्थंकर अरहनाथके मोक्ष जानेके दस अर्ब वर्ष बाद मोक्ष गये।

(२) भगवान् मल्लिनाथ वंग प्रान्तके मिथिलापुरके इक्ष्वाकुवंशी काश्यप गोत्री महाराज कुंभकी महारानी पद्मावतीके गर्भसे मिती चैत्र सुदी प्रतिपदाको गर्भमें आये। आपके गर्भमें आनेके छह मास पहिलेसे और जन्म होने तक इन्द्रोंने पिताके घर पर रत्न वर्षा की थीं। देवियों माताकी सेवामें रही थी। माताने सोलह स्वप्न देखे थे। इन्द्रादि देवोंने गर्भ कल्याणकका उत्सव मनाया था।

(३) मार्गशीर्ष सुदी ग्यारसके दिन आपका जन्म हुआ। जन्मसे ही आप तीन ज्ञान धारी थे। इन्द्रादि देवोंने जन्म कल्याणकका उत्सव मनाया।

(४) आपके लिये स्वर्गमे वस्त्राभूषण आते और वहींके देवगण साथमें क्रीड़ा करनेको आते थे।

(५) आपकी आयु पचपन हजार वर्षकी थी और शरीर पचीस धनुष ऊँचा था। आपके शरीरका वर्ण सुवर्णके समान था।

(६) आप सो वर्ष तक कुमार अवस्थामें रहे। जब आपके विवाहकी तैयारी की गई और नगर सजाया गया तब आपने इसे आडंबर और साधारण पुरुषोंका कार्य समझ वैराग्यका चितवन किया।

(७) वैराग्य होते ही लोकांतिक देवोंने आकर स्तुति की। फिर आपने श्वेत नामक वनमें तीनसों राजाओं सहित मार्गशीर्ष सुदी ग्यारसके दिन दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवोंने तप कल्याणकका उत्सव मनाया।

इसी समय भगवान् मन:पर्यय ज्ञानके धारी हुए।

(८) दो दिन उपवास कर मिथिलापुरमें नंदिषेण राजाके यहा आहार लिया तब देवोंने राजाके आँगनमें पंचाश्चर्य किये।

(९) भगवान् मल्लिनाथने छह दिनमें ही तपकर कर्मोंका नाश किया और पौष वदी प्रतिपदाके दिन केवलज्ञानके धारी सर्वज्ञ हुए। इन्द्रादि देवोंने ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया।

(१०) आपकी सभाका चतुर्विध सघ इस भांति था।

२८	विशाखदत्त आदि गणधर
५५०	पूर्व ज्ञानके धारी
२९०००	शिक्षक मुनि
२२००	अवधिज्ञानी
२२००	केवलज्ञानी
१४००	वादी मुनि
२९००	विक्रिया रिद्धिके धारी
१७५०	मन:पर्ययज्ञानी
४०००२८	
५५०००	बंधुषेणा आदि आर्यिका
१०००००	श्रावक
३०००००	श्राविकायें

(१७) आपके एक मास शेष रहने तक आपने समस्त आर्यखंडमें विहार किया और उपदेश दिया। जब एक मास आयु रह गई तब आप सम्मेदशिखर पर पधारे। इस समय दिव्य ध्वनिका होना बंद हो गया था। इस एक मासमें बाकीके चार कर्मोंका नाश कर फाल्गुन सुदी पंचमीको भगवान् मल्लिनाथ मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने भगवानका निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया।

पाठ १६

चक्रवर्ति–पद्म।

नौवाँ चक्रवर्ति।

(१) भगवान् मल्लिनाथके समयमें नौवें चक्रवर्ति पद्म उत्पन्न हुए थे। इनके पिताका नाम पद्मनाथ और माताका ऐरावणी था। इनका वंश इक्ष्वाकु था। और ये काशी देशकी वाराणसी नगरीके राजा थे। चक्रवर्ति पद्मने दिग्विजय कर छह खंड पृथ्वी-को वश किया और चक्ररत्न आदि चौदहरत्न, नवनिधि आदि चक्रवर्तिकी संपत्ति प्राप्त की। इनकी पृथ्वी सुंदरी आदि आठ पुत्रियां थीं जो सुकेत नामक विद्याधरके पुत्रोंको दी थीं। चक्रवर्ति पद्मश्री छनवे हजार रानियोंके पति थे। एक दिन बाद-लोंको बिखरते देख संसारसे उदास हो दीक्षा लेनेको तैयार हुए। मंत्रीने आपको दीक्षा लेनेसे बहुत रोका। आपका मंत्री नास्तिक था वह परलोक आदि नहीं मानता था पर आपने नहीं माना और अपने पुत्रको राज्य दे सुकेत आदि बहुतसे राजाओंके साथ

समाधिगुप्त नामक जिनेन्द्रसे दीक्षा ली और अन्तमें कर्मोंका नाशकर मोक्ष प्राप्त किया। इनकी आयु तीस हजार वर्षकी थी।

(नोट) पद्मपुराणकारने इनका नाम महापद्म लिखा है। और पिताका नाम पद्मरथ और माताका मयुरी लिखा है। और कहा है कि इनकी पुत्रियोंको विद्याधर हरके ले गये फिर उन्हे चक्रवर्तिने छुडाया। इन पुत्रियोंने दीक्षा ली। इन पुत्रियोंको बड़ा गर्व था। ये विवाह करना नहीं चाहती थीं। चक्रवर्तिने पद्म नामक पुत्रको राज्य देकर विष्णु नामक पुत्र सहित दीक्षा ली थी।

पाठ १७

प्रतिनारायण-बलिन्द्र-बलदेव, नंदमित्र-नारायण-दत्त

(सातवें प्रतिनारायण बलदेव और नारायण)

(१) ये तीनों श्री भगवान् मल्लिनाथके ही तीर्थकालमें हुए हैं। बलदेव नंदमित्र और नारायण-दत्त बनारसके इक्ष्वाकु वंशी राजा अग्निशेखरके पुत्र थे। नंदमित्रकी माताका नाम अपराजिता था और दत्तकी माताका नाम केशवती था।

(२) प्रति नारायण-बलिन्द्र विजयार्द्ध पर्वतके मदरपुरका स्वामी था। इसने तीन खण्ड पृथ्वीको अपने वश किया था। इसकी आठ हजार रानियां थीं।

(३) नारायण-दत्तकी आयु तेवीस हजार वर्षकी थी और शरीर बावीस धनुष ऊंचा था। इसका वर्ण नीला था। और बलदेवका चन्द्रके समान था।

(४) नंदमित्र और दत्तके पास भद्र क्षीरोद नामक एक बड़ा बलवान मदोन्मत्त हाथी था उसे भेंटमें देनेके लिये प्रति-नारायणने मंगाया तब नारायणने उसके बदलेमें प्रतिनारायण-की कन्या मांगी। बस दोनोंका युद्ध हुआ। उस समय नारायण-दत्तके मामा विद्याधर केशरी विक्रमने सिंहवाहिनी गरुडवाहिनी दो विद्याएं दोनों भाइकोंको दीं। और युद्धमें नारायण पर प्रति नारायणने जो चक्र चलाया था उसी चक्रके द्वारा नारायणने बलिन्द्रको मारा और वह नरक गया।

(५) नारायण–दत्त सात रत्न तीन खंड पृथ्वी और सोलह हजार रानियोंके स्वामी हुए। बलदेव नंदमित्रको चार रत्न प्राप्त हुए थे।

(६) दत्तने भोगविलासमें ही जीवन व्यतीत किया और मर कर नरक गया। बलदेव–नंदमित्रने सभूत नामक भगवान्के समीप तप धारण कर मोक्ष प्राप्त किया।

पाठ १८.

भगवान्–मुनिसुव्रतनाथ।

(वीसवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् मल्लिनाथके मोक्ष जानेके चौपन लाख वर्ष बाद वीसवें तीर्थंकर भगवान् मुनिसुव्रत उत्पन्न हुए। ये इस भवसे तीसरे भव पहिले भरतक्षेत्रके अंगदेशमें चंपापुरके राजा थे। नाम हरिवर्मा था। उस भवमें अनंतवीर्य स्वामीसे दीक्षा लेकर चौदवें स्वर्ग गये वहांसे चय कर मुनिसुव्रतनाथ नामक वीसवें तीर्थंकर हुए।

(२) भगवान् मुनिसुव्रत, राजगृही (मगध) के हरिवंशी महाराजा सुमित्रकी रानी सोमादेवीके गर्भमें श्रावण वदी द्वितियाको आये। आपके गर्भमें आनेके छह मास पूर्वसे आपके जन्म होने तक स्वर्गसे रत्नोंकी वर्षा होती रही। देवियां माताकी सेवामें नियत हुई। गर्भमें आने पर माताने सोलह स्वप्न देखे। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणकका उत्सव किया।

(३) आपका जन्म मिती वैशाख वदी १० मी को हुआ। जन्मसे ही आप तीन ज्ञानधारी थे। इन्द्रादि देवोंने आकर जन्म कल्याणकका उत्सव किया।

(४) आपकी आयु तेतीस हजार वर्षकी थी और शरीर बीस धनुष ऊंचा था। आपके शरीरका रंग मोरके कंठके रंग समान था।

(५) आपके लिये वस्त्राभूषण स्वर्गसे आते थे और वहींसे देवगण भी क्रीडा करनेको आया करते थे।

(६) आप सोल हजार पॉचसो वर्ष तक कुमार अवस्थामें रहे बाद पंद्रह हजार वर्ष तक आपने राज्य किया।

(७) एक दिन महाराज मुनिसुव्रत मेघ घटाको देख रहे थे। इन घटाओंको देखकर वहॉ एक हस्ती था उसने अपने उस बनकी (जहॉं वह हाथियोंके साथ रहा करता व पैदा हुआ था) यादसे खाना पीना छोड दिया। उसकी यह हालत देखकर मुनि-सुव्रत महाराजने अवधिज्ञानसे उस हाथीके पूर्व भव जानकर समीप बैठे हुए मनुष्योंको हाथीके पूर्व भव बतलाते हुए कहने लगे कि देखो यह निर्बुद्धि हाथीका जीव अपने पूर्व भवकी तो याद नहीं

करता और बनकी यादके कारण भोजन करना छोड दिया है। महाराजका सब कहना हाथीने सुन लिये और उसी समय उसे अपने पूर्व भवका स्मर्ण हो आया। फिर गृहस्थके व्रत उस हाथीने धारण किये। इधर महाराज मुनिसुव्रतने वैराग्यका चितवन किया। लौकांतिक देवोंने आकर आपकी स्तुति की। फिर आपने राजकुमार विजयको राज्य देकर वैशाख वदी दशमीको एक हजार राजाओं सहित दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवोने तप कल्याणकका उत्सव किया। इसी समय मुनिसुव्रतनाथ स्वामीको मन पर्यय-ज्ञानकी प्राप्ति हुई।

(८) आपका मुनि अवस्थाका सबसे पहिला आहार राजगृहीमें वृषभसेन राजाके घर हुआ। देवोंने राजाके घर पर पचाश्चर्य किये।

(९) ग्यारह महिने तप कर चैत्र वदी नौमीके दिन आपको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। समवशरण सभाकी रचना इन्द्रादि देवोंने की और ज्ञान कल्याणकका उत्सव मनाया।

(१०) आपकी सभाका चतुर्विध संघ इस भांति था।

१८	मल्लि आदि गणधर
५००	द्वादशांग ज्ञानके धारी
२१०००	शिक्षक मुनि
१८००	अवधिज्ञानी
१८००	केवलज्ञानी
२२००	विक्रिया रिद्धिके धारी
१५००	मनःपर्यय ज्ञानके धारी
१२००	वादी मुनि
३००१८	

५०००० पुष्पदंता आदि आर्यिका
१००००० श्रावक
३००००० श्राविका

(११) एक मास आयुमें बाँकी रहने तक आपने आर्यखंडमें विहार किया। फिर दिव्य ध्वनिका होना बंद हुआ। आपने सम्मेदशिखर पर पधार कर आयुके अवशेष एक मासमे बाकीके चार कर्मोका नाश किया और फागुन वदी एकादशीको एक हजार साधुओं सहित मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने आकर निर्वाण कल्याणकका उत्सव किया।

(नोट) पद्मपुराणकारने भगवान मुनिसुव्रतकी माताका नाम पद्मावती लिखा है। हरिवंश पुराणमें भी यही नाम है।

पाठ १९.

चक्रवर्ति हरिषेण।

(दशवा चक्रवर्ति)

(१) चक्रवर्ति हरिषेण तीसरे भवमें भगवान् अनंतनाथके तीर्थंकालका एक बडा राजा हुआ था। पर उसका नाम व उसके राज्यका पता इतिहासमें नहीं है। वहांसे वह स्वर्ग गया और स्वर्गसे चय कर हरिषेण हुआ। हरिषेण भोगपुरके महाराज इक्ष्वाकुवंशी राजा पद्म नामका पुत्र था। हरिषेणकी माताका नाम ऐरादेवी था। हरिषेणकी आयु दश हजार वर्षकी थी। और शरीर वीस धनुष ऊंचा था।

(२) एक वार चक्रवर्ति हरिषेण अपने पिता पद्मनाभके साथ वनमें गया। वहां अनंतवीर्य मुनिसे धर्मतत्व श्रवण कर पद्मनाभने हरिषेणको राज्य देकर दीक्षा ली। और हरिषेणने श्रावकके व्रत लिये।

(३) चक्रवर्तिके पिता पद्मनाभने बहुत तप किया और तपसे कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया। जिस दिन पद्मनाभ केवलज्ञानी हुए उसी दिन हरिषेणकी शस्त्रशालामें चक्र-रत्न, खड्ग रत्न और दंड रत्न आदि उत्पन्न हुए। वनपालने पद्मनाभके केवलज्ञानके समाचार और शस्त्रशालाके अधिपतिने रत्नोंकी उत्पत्तिके समाचार एक साथ कहे। चक्रवर्ति हरिषेण पहिले पिताके केवलज्ञानकी पूजाको गया। वहांसे आकर रत्नोंकी उत्पत्तिका हर्ष मनाया। नगरमें सात सजीव रत्नोंमेंसे पुरोहित, गृहपति, सिलावट और सेनापति ये चार रत्न उत्पन्न हो चुके थे। तीन सजीव रत्न—अश्व-हाथी और चक्रवर्तिकी पट्टरानी होने योग्य कन्या विद्याधर विजयार्द्ध पर्वतसे लाये। फिर चक्रवर्तिने छह खंड पृथ्वीकी दिग्विजय की। पूर्वके चक्रवर्तियोंके समान इनकी भी संपत्ति थी। और ये भी छनवे हजार रानियोंके पति थे।

(४) एक वार कार्तिक मासकी अष्टान्हिकामें महा व्रतकी पूजा कर आप आकाश देख रहे थे सो आकाशमें चंद्रको राहु द्वारा ग्रसित देख आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ और अपने पुत्र महासेनको राज्य दे सीमंतक पर्वत पर श्री नाग मुनिश्वरके निकट जिन दीक्षा धारण की। दीक्षा ग्रहण करनेके पहिले आपने बहुत

कुछ दान दिया था। आपके साथ बहुतसे राजाओंने भी दीक्षा ली थी। अंतमें मृत्यु हो जाने पर चक्रवर्ति हरिषेणका जीव सर्वार्थसिद्धिको गया।

(नोट) पद्मपुराणकार हरिषेणके पिताका नाम हरिकेतु और माताका नाम वप्रा लिखते हैं। इनके वर्णनमें लिखा है कि इन्होंने जिनमंदिरोंको बनवा कर पृथ्वी पाटसी दी थी। ये कपिल नगरके राजा थे।

पाठ २०

यज्ञकी उत्पत्ति।

दशवे चक्रवर्ति हरिषेणके हक हजार वर्षके बाद अयोध्यामें महाराजा सगर हुए थे। इन्हींके द्वारा पशुओंके हवन करनेवाले यज्ञ चले हैं। इसीके समयमें अथर्ववेदकी उत्पत्ति हुई। यज्ञकी प्रवृत्ति और अथर्ववेदकी उत्पत्तिके विषयमें जैन इतिहास इस प्रकार कहता है कि—

(क) चारणयुगलपुर नामक नगरका राजा सुयोधन था। इसकी रानीका नाम अतिथि था। इनकी एक सुलसा नामक कन्या थी। इस कन्याका स्वयंवर सुयोधनने किया और उसमे राजकुमारोंको निमंत्रित किया।

(ख) सगर भी जानेको तैयार हुआ। पर तैल लगाते समय माथेके बालोंमें सफेद बाल दिखनेके कारण जाना उचित नहीं समझा। पर मंदोदरी नामक धाय और विश्वभूत मन्त्रीने आकर कहा कि हम आपके ऊपर प्रयत्नसे सुल-

साको आशक्त कर सकेंगे आप अवश्य पधारें। इन दोनोंके कहनेमें आकर राजा सगरने जाना निश्चय किया। इधर विश्वभूत और मंदोदरीने जाकर सुलसाको भी सगरपर आशक्त किया। पर सुलसाकी माताने अपने भाई पोदनपुर नरेश महाराज तृणपिंगलके पुत्र मधुपिंगलके वरमाला पहिनानेका आग्रह किया, इसे सुलसाने स्वीकार किया। मदोदरीका आना जाना सुलसाकी माताने बंद कर दिया तब मंत्री विश्वभूतिने मधुपिंगलको स्वयंवर सभामें ही न आने देनेका षड्यंत्र रचा। अर्थात् वर परीक्षा संबंधी एक स्वयंवर विधान नामक ग्रंथ लिखकर जमीनमें गाढ़ आया और कुछ दिनोंबाद प्रगट किया कि यह महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ पृथ्वी तलसे निकला है और बहुत मान्य है। और उसे राजकुमारोंकी सभामें पढ़कर सुनाया। उसमे लिखा गया था कि जिसकी आंख पीली हो उसे न तो कन्या देना चाहिये और न ऐसोंको स्वयंवरमें आने देना चाहिये। मधुपिंगलकी आंखे पीली थीं अतएव वह स्वयं वहांसे अपनेमें यह दुर्गुण जानकर लज्जित और क्रोधित होकर निकल गया और हरिषेण गुरुके निकट तप धारण किया। राजा सगरका सुलसाके साथ विवाह हो गया। और मधुपिंगल संयमी होकर तप करने लगा। एक दिन वह किसी नगरमें आहार लेने गया। वहाँ एक निमित्तज्ञानीने इसके शरीर लक्षणोंको देखकर कहा कि यह राजा होना चाहिये फिर यह

भीख क्यों माँगता है। इससे मालूम होता है कि लक्षण शास्त्र सत्य नही है। तब दूसरे निमित्त ज्ञानीने कहा कि नहीं, पहिले तो यह राजा ही था परन्तु सगरके मंत्रीके जालके कारण इसे यह पद धारण करना पडा है। निमित्त ज्ञानियोंकी बातचीतसे मधुपिंगलको क्रोध उत्पन्न हुआ। और निश्चय किया कि मैं भविष्यमे इस तपके प्रभावसे सगरका नाश कर सकूं ऐसी शक्तिका धारक बनूं।

(ग) मरकर मधुपिंगल तपके प्रभावसे असुरकुमार जातिके चौसठ हजार महिषासुरोंका अधिपति महाकाल नामक महिषासुर हुआ। और अवधिज्ञानसे पूर्वभवके सगर राजाके वैरको जानकर बदला लेनेको उद्यत हुआ।

(घ) वह वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर व कई असुरोंको शिष्य-के रूपमें साथ लेकर पृथ्वी तलपर आया और वनमें फिरते हुए क्षीरकदंबके पुत्र पर्वतसे मिला। क्षीरकदंब धवल प्रदेशके स्वस्तिकावतीनगरीका राजपुरोहित था। इसके पुत्रका नाम पर्वत था। पर्वतकी बुद्धि मंद थी और अर्थको विपरीत रूपसे ग्रहण करती थी। पर्वत क्षीरकदंब हीके पास पढ़ा था। इसके साथ साथ स्वस्तिकावतीका राजपुत्र और एक विदेशी ब्राह्मण कुमार नारद भी क्षीर-कदंबसे पढ़ा था। ये तीनों सहाध्यायी भी थे। नारद विद्वान् और धर्मात्मा था। एक दिन क्षीरकदंब अपने तीनों शिष्योंके साथ वनमें गया था वहाँ श्रुतधर नामक

दिगम्बर जैन साधु अपने तीन शिष्योंको अष्टांग निमित्त-ज्ञान पढ़ा रहे थे। क्षीरकदंब और उसके शिष्योंके वनमें पहुँचने पर श्रुतधर मुनिने अपने शिष्योंसे क्षीरकदंबके तीनों शिष्योंका भविष्य पूछा। शिष्योंने कहा कि वसु नामक राजपुत्र हिंसा धर्मको सत्य धर्म प्रगट करनेके कारण नरक जायगा। पर्वत नामका शिष्य यज्ञकी प्रवृत्ति चलानेके कारण नरक जायगा। और नारद अहिंसा धर्मका प्रचार करेगा और सर्वार्थसिद्धि जायगा। इस भविष्यको क्षीरकदंब भी सुन रहा था उसे यह भविष्य सुनकर बड़ा दुःख हुआ पर भवितव्य पर श्रद्धा रख कर समय व्यतीत करने लगा। कुछ दिनों बाद राजा वसुके पिता महाराज विश्वासुने तप धारण किया और वसु राज सिंहासन पर बैठा। एक दिन वसु वनमें गया, वहा पर ठोकर खाकर आकाशसे पक्षी गिरते देखा। इसने अपना बाण फेंका वह भी ठोकर खाकर गिरा। वसु यह भेद जाननेके लिये बाणके गिरनेके स्थान पर पहुंचा वहा उसे आकाश स्फटिक नामक पाषाणका स्तंभ दिखा जो कि दूसरोंको दिखाईमें नहीं आता था। इस स्तंभको वसु अपने यहां लाया और उसका सिंहासन बनाया। वह सिंहासन अधर रहता था उस पर बैठ कर वसु राज्य कार्य करने लगा। लोगोंमें यह प्रसिद्धि हुई कि महाराज वसुका सिंहासन न्याय और सत्यके कारण अधर रहता है। अब क्षीरकदंबके पास दो शिष्य रह गये। एक दिन ये दोनों शिष्य वनमें हवनकी काष्टादि सामग्री लेने गये थे वहां

नदीका जल पीकर मोरडियोंका समूह लौट कर आ रहा था। नारदने दूर ही से देख कर कहा कि पर्वत ! इन मोरोंमें एक मोर और सात मोरडी हैं। आगे जाकर जब वे मोर आदि देखे तो मालूम हुआ कि नारदका कहना सत्य है। फिर आगे चल कर नारदने कहा कि पर्वत इस मार्गसे एक अंधी हथनी जिस पर गर्भवती स्त्री सवारी थी गई है। स्त्री सफेद साड़ी पहने थी। और उस गर्भवतीने संतानका प्रसव भी कर दिया है। नारदका यह भी कहना सत्य निकला। तब पर्वतने आकर मातासे कहा कि मुझे पिताने पूरी विद्या नहीं पढाई, नारदको पढाई है। पर्वतके पितासे उसकी माताने यह बात कही। उन्होंने पर्वतकी बुद्धिकी मंदता बतला कर कहा कि मुझे सब शिष्य समान है, इसकी बुद्धि ही विपरीत है। तब परीक्षाके लिये आटेके दो बकरे बनाकर क्षीरकदंवने पर्वत और नारद दोनोंको दिये और आज्ञा दी कि जहां कोई न देख सके ऐसे स्थानपर इनके कानोंको छेदकर मेरे पास लाओ। पर्वत वनमें जाकर निर्जन स्थान देख कान छेद लाया। पर नारदने कहा कि पहिले तो ऐसा स्थान ही नहीं मिलता जहाँ कि कोई न देख सके। दूसरे यद्यपि यह जड़ वस्तु है तो भी इसमे पशुका भाव रख उसकी स्थापना की गई है अतएव इसके कर्ण छेदनेमें अवश्य कुछ न कुछ मेरे भाव हिंसारूप होंगे अतः मैं यह कृत्य नहीं कर सकता। तब क्षीरकदंवने अपने पुत्रको अयोग्य

समक्ष राजा वसुसे उसकी और उसकी माताकी पालना करनेको कहकर और अपने पद पर नारदको बिठला कर दीक्षा धारण की। नारद और पर्वत दोनों उसी नगरमें पठन पाठनका कार्य करने लगे। एक दिन सर्व साधारणके सन्मुख दोनोंका शास्त्रार्थ इस विषय पर हुआ कि हवनादिमें अज शब्दका क्या अर्थ करना चाहिये। नारद कहता था कि जिनमें उत्पन्न होनेकी शक्ति नहीं है ऐसे जूने जौ (जव) को अज कहते है और पर्वत अज शब्दसे पशुका अर्थ करता था। पर पर्वतका अर्थ मान्य नहीं हुआ। लोगोंने इसे संघसे पृथक कर दिया तब यह वनमें गया और इसे वहाँ ब्राह्मण रूपधारी उक्त महाकाल नामक असुर मिला।

असुरने पर्वतके समाचार सुनकर कहा कि मै तेरे शत्रुको नष्ट करूँगा। तं मेरे धर्मभाई क्षीरकदंबका पुत्र है। वे मेरे सहाध्यायी थे। ऐसा कहकर उसे अथर्ववेद बनाकर पढाया। इसकी साठ हजार ऋचायें थी। जब वह पढ़ गया तब महाकालने अपने साथी असुरोंको सगर राजाके ग्राममें बीमारी फैलानेकी आज्ञा दी जिसे उन्होंने तत्काल मानकर बीमारी फैलाई। इधर महाकाल और पर्वत सगरके पास जाकर कहने लगे कि यदि आप हमारे कहनेके अनुसार सुमित्र नामका यज्ञ करो तो रोगादिकी शांति हो जाय। और अथर्ववेदकी आज्ञा दिखलाकर यज्ञके लिये साठ हजार पशु व अन्य

सामिग्री इकट्ठी करनेके लिये सगरसे कहा। सगरने उनका कहना मानकर यज्ञ करना प्रारम्भ किया। उस यज्ञ पर श्रद्धा दिलानेको महाकालने अपने सेवकों द्वारा फैलाये हुए रोगोंको बंद कर दिया और यज्ञमें होमे हुए पशुओंको विमानमें बिठलाकर आकाशमे फिरते हुए दिखाया। तब राजाने अपनी रानी सुलसाको भी यज्ञमें होम दिया। पर पीछेसे उसके वियोगसे दुःखी होकर एक जैन साधुसे पूछा कि मैने जो यह कृत्य किया है वह धर्म है या अधर्म। जैन साधुने उसे अधर्म बतलाया और कहा कि तेरा सातवें दिन बज्रपातसे मरण होगा और तू नरक जायगा। सगरने यह बात उस महाकाल व पर्वतसे कही। उन्होंने जैन साधुको झूठा सिद्ध करनेके लिये सुलसाको विमानमे बैठी हुई सगरको दिखलाई और उस बनावटी सुलसासे कहलाया कि मुझे यज्ञके प्रभावसे स्वर्ग मिला है। तब सगरने फिर दृढतासे यज्ञ करना प्रारम्भ रखा और अन्तमे वज्र गिरनेके कारण अपने साथियों सहित नरक गया।

(च) सगरके मन्त्री विश्वासुने सगरका राज्य लिया और फिर यज्ञ करनेका विचार किया। क्योंकि इसे भी मारनेके लिये महाकालने सगरका रूप व सुलसाका रूप बनाकर स्वर्गोंके आनंदके साथ विश्वभूतको दिखलाया था। जब नारदने सुना कि विश्वभूत यज्ञ करना चहता है तब नारद उसके पास जाकर अहिंसा धर्मका उपदेश देने लगा। पर्वतने कहा

कि इसका कहना झूठ है हम दोनों एक गुरुके पास वेद पढ़े थे और उन्होंने हिंसाको धर्म बतलाया है। हमारे साथमें राजा वसु भी पढ़े थे। उनसे पूछा जाय। अतमे राजा वसुसे पूछना निश्चय हुआ और विश्वभूत पर्वत आदि वसुके पास गये। वसुको पर्वतकी माताने अपने पुत्रकी विजय करनेके लिये कह रखा था। वसुसे पूछने ही उसने तीनों वार पर्वतका कहना सत्य बतलाया। उसके यह कहनेसे जगतमें अशांति उत्पन्न हो गई, आकाश गड़गड़ाने लगा, रक्तकी वर्षा होने लगी और पृथ्वी फटनेका भयानक शब्द हुआ। और वसु जिस आसन पर वह बैठा था उस आसन सहित झूठके कारण पृथ्वीमें धँस गया। और मर कर नरक गया। पर महाकालने उसे भी विमानमें बैठा हुआ आकाशमें लोगोंको दिखलाया जिससे कि वेद और यज्ञके ऊपर अश्रद्धा न हो। वसुको देखकर विश्वभूतने प्रयागमें जाकर यज्ञ करना प्रारम्भ किया। इस पर महापुर आदि राजाओंने इन लोगोंकी निंदा की और नारदको धर्मका रक्षक जान कर गिरितट नामक नगर प्रदान किया। विश्वासुके यज्ञमें नारदकी आज्ञासे दिनकर देव नामक विद्याधरने अपनी विद्यासे नागकुमार जातिके देवोंको बुलाया और तब नागकुमार जातिके देवोंने उस यज्ञमें विघ्न डाला। उस विघ्नसे बचनेके लिये, यज्ञकुंडके आसपास महा कालने जिनेन्द्रकी मूर्ति रखनेकी सम्मति पर्वतको दी। क्योंकि जहां जिनेन्द्रकी मूर्ति होवी

है वहां नागकुमार कुछ कर नहीं सकते, तब पर्वतने चारों ओर जिन मूर्तियां रखीं। यह देख नागकुमार विघ्न न कर सके और इस तरह विश्वभूतका यज्ञ भी पूर्ण हो गया और वह मरकर नरक गया। तब महाकाल असुरने अपना असली रूप प्रकट कर कहा कि सगर सुलसा और विश्वभूतसे मेरा बैर होनेके कारण मैंने यह यज्ञकी प्रवृत्ति चलाई है। पर सत्य धर्म अहिंसा ही है। उसके इस कहनेका उस समय कुछ अधिक असर नहीं पडा क्योंकि यज्ञकी प्रवृत्ति चल पडी थी और पशुओंको स्वर्ग जाते देख कई लोगोंने उस मार्गपर श्रद्धा कर ली थी। तथा पशुओंके हवनसे यज्ञ करना प्रारंभ कर दिया था।

नोट—पद्मपुराणमे और इस कथामें बहुत अंतर है। इसमें तो क्षीरकदंब शिष्योंका भविष्य मुनियोंसे सुनकर घर पर आया है और बहुत दिनों बाद वसु राजाको पुत्रकी व स्त्रीकी रक्षाका भार सौंप दीक्षा ली ऐसा लिखा है, पर पद्मपुराणमें वर्णन है कि भविष्य सुननेके साथ ही क्षीरकदंबने दीक्षा ली और क्षीरकदंबकी स्त्रीने गुरु दक्षिणाके बदलेमें वसुसे अपने पुत्रकी बातको कहनेको लिये वाधित किया और वसुने वैसा किया जिसके कारण वसु नरक गया। राजा सगर, सुलसाका स्वयंवर, महाकाल, असुर आदिका और क्षीरकंदबके द्वारा ली हुई नारद पर्वतकी परीक्षाका पद्मपुराणमें वर्णन नहीं है। भगवद् गुणभद्राचार्यने तो राजा वसुके पिताका क्षीरकदंबसे पहिलेसे ही दीक्षा लेना लिखा है पर पद्मपुराणकारने पीछेसे दीक्षा लेना बतलाया है। दोनोंमें वसुके पिताके नाममें भी अतर है। पद्मपुराणकारने "ययाति नाम लिखा है और महापुराणकार विश्वासु" नाम लिखते हैं।

पाठ २१.

इस समयके एक न्यायी राजाका उदाहरण।

मलयदेशमें रत्नपुर नगरके स्वामी महाराजा प्रजापति थे। इनके पुत्रका नाम चन्द्रचूल था। चद्रचूलका प्रेम मंत्रीके पुत्र विजयसे बहुत था। लाड प्यारके कारण इन दोनोंको उचित शिक्षा न मिल सकी। अतएव ये दोनो दुराचारी हो गये। एक दिन इस नगरके कुबेर नामक एक प्रसिद्ध सेठने कुबेरदत्ता नाम की अपनी लडकीका विवाह उसी नगरके वैश्रवण सेठके पुत्र श्रीदत्तके साथ करनेका विचार किया। किसी पापी राज कर्मचारीने यह बात राजकुमारसे कही और कुबेरदत्ताके रूपकी प्रशंसा की। राजकुमार उस कन्याको अपने आधीन करने पर उतारू हुआ। यह देख वैश्योंका समुदाय महाराजा प्रजापतिके पास पहुंचा। अपने दुराचारी पुत्रसे वह पहिले ही अप्रसन्न था इसलिये उस समाचारसे वह और भी अधिक क्रोधित हुआ और कोतवालको आज्ञा दी कि दोनों युवकोंको प्राण दण्ड दिया जाय। कोतवाल इस आज्ञाको पालन करनेके लिये तैयार हुआ। परन्तु मंत्रीने नगर वासियों सहित महाराजासे इस आज्ञाको लौटानेकी प्रार्थना की। क्योंकि महाराजका उत्तराधिकारी वह एक ही पुत्र था। महाराजाने मंत्रीकी प्रार्थना यह कह कर अस्वीकृत कर दी कि तुम मुझे न्यायमार्गसे च्युत करना चाहते हो। फिर मंत्रीने दंड देनेका भार अपने शिर पर लिया। और अपने पुत्र तथा राजकुमारको साथ लेकर वनगिरि नामक पर्वत पर गया। वहां राजकुमारसे कहा कि आपका काल समीप है क्या आप मरनेको तैयार है? राज

कुमारने निर्भय होकर अपनेको तत्पर बतलाया। फिर मंत्री पर्वत पर चढ़ा। वहां महाबल नामक गणधर मुनि विराजमान थे उनको वंदना कर अपने आनेका कारण निवेदन किया। गणधर देवने कहा कि ये दोनों युवक तीसरे भवमें नारायण और बलदेव होनेवाले हैं। उनकी तुम चिंता मत करो। यह सुनकर मंत्रीने उन दोनों कुमारोंको गणधर देवके समीप उपस्थित कर धर्मोपदेश दिलाया जिसमे श्रवण कर दोनों कुमारोंने दीक्षा धारण की। मंत्री लौट गया और राजासे कहा कि मै एक सिंहके समान निर्भय वनवासी पुरुषके सुपुर्द दोनों कुमारोंको कर आया हूं। वह अपने काममें बहुत तीव्र है। और उसने सब सुख छोड रखे हे। राजाको यह सुनकर पुत्र वियोगका दुःख उमड़ा और कुछ चिन्तित हो गया। फिर मंत्रीसे सत्य २ कहनेके लिये कहा। मंत्रीने जो कुछ घटना हुई थी ठीक २ कह दी उसे सुन राजा प्रजापति बहुत प्रसन्न हुआ। और स्वयं भी दीक्षा लेनेको उद्यत हुआ। अपने कुलके एक योग्य पुरुषको राज्य देकर उसने भी महाबल गणधरसे ही दीक्षा ली। वे दोनों कुमार तप करने लगे। एक बार गत पाठमें बतलाये हुए नारायण और बलभद्रको परम ऐश्वर्यके साथ नगरमें प्रवेश करते देखकर निदान बंध किया कि हम भी इसी प्रकार नारायण बलभद्र बनें। आयुके अंतमें चार आराधनाओंको आराध कर दोनों कुमार सनत्कुमार स्वर्गमें उत्पन्न हुए। इन्हीं दोनोंके जीव इस स्वर्गसे चय कर निदान बंधके कारण राम और लक्ष्मणके रूपमें बलदेव नारायण हुए।

पाठ २२.

राक्षस वंश और वानर वंश।

(१) विद्याधरोंकी जातिमें ही एक राक्षस वंश हुआ है। विद्याधरोंकी जाति मनुष्योंमें ही होती है। ऐसे मनुष्योंका एक पृथक् देश है और उनका विद्याएँ सिद्ध करनेका व्यापार है।

(२) विद्याधरोंमे निम्नलिखित घटनाके पूर्व इस प्रकार प्रसिद्ध पुरुष हुए है।

नमि, रत्नमाली, रत्नवज्र, रत्नरथ, रत्नचित्र, चन्द्ररथ, वज्रजङ्घ, वज्रसेन, वज्रदंष्ट्र, वज्रध्वज, वज्रध्व, वज्र, सुवज्र, वज्रभृत, वज्राभ, वज्रबाहु, वज्राङ्क, वज्रसुदर, वज्रास्य, वज्रपाणी, वज्रभानु, वज्रवान्, विद्युन्मुख, सुवक्र, विद्युद्दंष्ट्र विद्युत्व, विद्युद्दाम, विद्युद्वेग, दृढरथ, अश्वधर्मा, अश्वाभ, अश्वध्वज, पद्मनाभि, पद्ममाली, पद्मरथ, सिंहजाति, मृगधर्मा, मेघास्त्र, सिंहप्रभ सिंहकेतु, शशाङ्क, चन्द्राह, चन्द्रशेखर, इन्द्ररथ, चक्रधर्मा, चक्रायुध, चक्रध्वज, मणिगीव, मण्यङ्क, मणिभासुर, मणिरथ, मन्यास, विम्योष्ठ, लम्बिनाधार, रक्तोष्ठ, हरिचन्द्र, पूर्णचन्द्र, बलिन्द्र, चंद्रमा, चूड़, व्योमचंद्र, उड़यानन, एकचूड, द्विचूड, त्रिचूड, वज्रचूड, भूरिचूड, अर्कचूड, वह्निजटी, वह्नितेज,।

(१) इस विद्याधर जातिमे भगवान् अजितनाथके समयमें पूर्णधन नामक प्रसिद्ध राजा हुआ। उसने तिलक नगरके स्वामी सुलोचन नामक राजाकी कन्या उत्पलमतीसे विवाह करना चाहा पर उसने नहीं दी। तब दोनोंमें युद्ध हुआ। पूर्णधनने सुलोचनको मारा। तब सुलोचनके पुत्र वनमें जाकर छिप रहे। इधर

सगर चक्रवर्तीको कोई अश्व उसी वनमें उडा लाया वहां सुलोच-नके पुत्र सहस्र-नयनने सगर चक्रवर्तीके साथ अपनी बहिन उत्प-लमतीका विवाह किया। चक्रवर्तीने सहस्र-नयनको विद्याधरोंकी दोनों श्रेणियोंका राजा बनाया। तब उसने पूर्णघनसे अपना बदला चुकानेके लिये युद्ध किया। युद्धमें पूर्णधन और उसके कई पुत्र मारे गये। केवल एक पुत्र मेघवाहन नामक बचा। वह भाग कर भगवान् अजितनाथके शरणमे आया। इन्द्रने उसे भयभीत देख उसके भयका कारण पूछा तब उसने अपना सब वृत्तात कहा। सहस्रनयन भी भगवानके समवशरणमे आया। वहां दोनोंने अपने पिता आदिके पूर्व-भव वृत्तांतको जान परस्परका वैर छोड़ मैत्री धारण की। तब मेघवाहन पर प्रसन्न हो कर राक्षसोंके इन्द्र भीम सुभीमने लङ्का (जो कि लवण समुद्रके पार है) और पाताल लङ्काका राज्य दिया। लङ्का ३० योजन थी। पाताल लङ्कामें एक अलङ्कारोदय नगर था जो कि एक सौ साठ इकतीस योजन १½ (डेढ) कला चौडा था। इसके साथ २ मेघवाहनको उन्होंने राक्षस नामक विद्या भी दी। अतमें मेघवाहनने भगवान अजित-नाथके समवशरणमे दीक्षा धारण की। मेघवाहनकी स्त्रीका नाम सुप्रभा था। और पुत्रका नाम महारिक्ष। मेघवाहनके दीक्षा लेनेके बाद महारिक्ष राज्याधिकारी हुआ। महारिक्षने भी श्रुतसागर मुनिके समीप दीक्षा धारण की। इनके बड़े पुत्र अमराक्ष राजा हुए और लघु पुत्र भानुरक्ष युवराज। इन्होंने भी अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा धारण की।

(४) महारिक्षकी कई पीढियोंके बाद एक रक्ष नामक राजा हुए। उनकी स्त्रीका नाम मनोवेगा था। इस दम्पतिसे राक्षस

नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। और अपने पिताके पश्चात् राज्यका स्वामी हुआ। इसकी रानीका नाम सुप्रभा था। इसी राक्षस नामक राजाके नामसे उसकी सन्तान राक्षसवंशी कहलाने लगी। इस वंशमें इस प्रकार प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं—आदित्यगति, बृहतकीर्ति ये दोनों राजा राक्षसके पुत्र थे। इनमेंसे पहिला राजा था और दूसरा युवराज। दोनोंकी स्त्रियोंके नाम क्रमशः सदनपद्मा और पुष्पनखा था। आदित्यगतिका पुत्र भिम-प्रभ हुआ। इसके १००० रानियाँ थीं और १०८, पुत्र जो बड़े बलवान थे। उन्हें पुराणकारोंने पृथ्वीके स्तम्भकी उपमा दी है। इन राजा-ओंके पश्चात् इस प्रकार राजाओंके नाम पुराणोंमें और मिलते हैं—पूजार्ह, जित्—भास्कर, सम्पद्‌कीर्ति, सुग्रीव, हरिग्रीव, श्रीग्रीव, सुमुख, सुचन्द्र, अमृतवेग, भानुगत, द्विचिन्तगत, इन्द्र, इन्द्रप्रभु, मेघ, मृगीदमन; पवि, इन्द्रजित, भानुवर्मा, भानु, मुरारि, त्रिजित, भीम, मोहन, उद्धारक, रवि, चाकार, वज्रमध्य, प्रमोद, सिंह, विक्रम, चामुण्ड, मारण, भीष्म, द्रुपवाह, अरिमर्दन, निर्वाणभक्ति, उग्रश्री, अर्हद्भक्त, अनुत्तर, गतभ्रम, अनि, चण्ड, लङ्क, मयूरवाहन, महाबाहु, मनोज्ञ, भास्करप्रभ, बृहद्गति, बृहदाङ्कत, अरिसन्त्रास, चन्द्रावर्त, महारव, मेघध्वान, ग्रहक्षोभ, नक्षत्रदमन, इत्यादि। इन सबोंकी बाबत पुराणकार कहते है कि ये बडे बली थे, कान्तिवान थे, धर्मात्मा थे। और इनकी राजधानी लंका थी। नक्षत्रदमनकी कितनी ही पीढियों बाद महाराज धनप्रभ—जिनकी रानीका नाम पद्मा था—का पुत्र कीर्तिधवल हुआ। यह कीर्ति धवल बहुत ही प्रसिद्ध और बलवान राजा हुआ था।

(५) कीर्तिधवलके समयमें एक श्रीकण्ठ नामक विद्याधर राजा था। इसकी बहिन देवीका रत्नपुरके राजा पुष्पोत्तरने अपने पुत्र पद्मोत्तरके साथ विवाह करनेके लिये श्रीकण्ठसे कई बार निवेदन किया परन्तु श्रीकण्ठने अपनी बहिन पद्मोत्तरको न दे लङ्काके राजा कीर्तिधवलको दी। एक दिन श्रीकण्ठ सुमेरु पर्वतके चैत्यालयोंकी वन्दना करके वापिस लौट रहा था तब उसे मार्गमे पुष्पोत्तरकी पुत्री पद्माभाका गाना सुनाई दिया। पद्माभा उस समय अपने गुरुके समीप वीणा बजा रही थी। पद्माभाके मधुर कण्ठ पर मोहित होकर श्रीकण्ठ पद्माभाके सङ्गीत-गृहमे आया। इधर श्रीकण्ठके रूपको देखकर पद्माभा उसपर आसक्त हो गई। पद्माभाको आसक्त जान श्रीकण्ठ, अपने विमान पर चढ़ा कर आकाश-मार्गसे पद्माभाको ले चला। जब पुष्पोत्तरने सुना तब वह श्रीकण्ठ पर और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और उस पर चढ़ाई कर दी। श्रीकण्ठ भागकर अपने बहिनोई कीर्तिधवलकी शरणमें गया; वहां भी पुष्पोत्तरकी सेना पहुंची। कीर्तिधवलने युद्धकी तैयारी की और दूतों द्वारा पुष्पोत्तरको समझाया। इधर पद्माभाने भी कहला भेजा कि मेरा पति श्रीकण्ठ ही है। दूसरेके साथ विवाह न करनेकी मुझे प्रतिज्ञा है तब पुष्पोत्तरने युद्ध बंद कर कन्याके साथ श्रीकण्ठका विवाह मार्गशीर्ष शुक्ला १ को कर दिया। कीर्तिधवलने अपने साले श्रीकण्ठको उसके पूर्व निवास स्थानपर नहीं जाने दिया और उसे बानर द्वीप दिया।

(६) यह द्वीप समुद्रके मध्यमें तीनसौ योजनका था। इसमें बन्दर बहुत ही चतुर और मनोहर होते थे। पुराणकारोंने

उन्हें मनुष्योंके समान हाथ–पैर वाले लिखा है। वह राजा भी उन बन्दरोंपर बहुत ही प्रसन्न हुआ। और उसने स्वयं कई पाले तथा उनके चित्र बनवाये। राजा श्रीकण्ठने आष्टाह्निकामें देवोंको नन्दीश्वर द्वीप जाते देख नन्दीश्वर जानेका विचार किया। और अपने विमान द्वारा गमन किया परन्तु जब मानुषोत्तर पर पर्वतसे आगे उसका विमान न जासका तब उसने अपनी निंदा की और भविष्यमे नदिश्वर जानेके योग्य होनेकी इच्छासे दीक्षा धारण की। अपना राज्य बड़े पुत्र वज्रकण्ठको दिया।

(७) वज्रकण्ठने अपने पुत्र इन्द्रायुद्ध–प्रभको राज्य देकर वैराग्य धारण किया। इन्द्रायुद्ध–प्रभके बाद इन्द्रमति, इन्द्रमतिके बाद मेरु, मेरुके पश्चात मंदिर, मदिरके अनतर समीरणगति और समीरणगतिके बाद अमरप्रभ वानर द्वीपके उत्तराधिकारी हुए। अमरप्रभने लंकाके राक्षसवंशी राजाकी कन्या गुणवतीसे विवाह किया। गुणवती जब घर पर आई और उसने श्रीकण्ठके बनवाये चित्रोंको देखा तब वह बहुत डरी। उसे डरते देख अमरप्रभ अपने सेवकों पर नाराज हुआ कि ऐसे चित्र मेरे महलमे क्यों बनवाये गये। परन्तु जब उसे यह मालूम हुआ कि ये चित्र उसके आदि पुरुष महाराज श्रीकण्ठने बनवाये है। और श्रीकण्ठके बादके उत्तराधिकारी भी मंगलिक कार्योंमें उन चित्रोंको बनवाते रहे हैं तब उसने उन चित्रोंकी बडी प्रतिष्ठा करना प्रारम्भ की। यहा तक कि सबको मुकुट और ध्वजा पर भी बदरोंका चित्र रखनेकी आज्ञा दी। तथा विजयार्द्धकी दोनों श्रेणियोंका विजय किया। इसने जब ध्वजाओं पर वानरोंका चित्र रखनेकी

आज्ञा दी तब इसका वंश वानर वंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। अमरप्रभ भगवान् वासुपुज्यके समयमें हुआ था।

(८) अमरप्रभके बाद कपिकेतु, विक्रमसम्पन्न, प्रतिबल, गगनानंद, खेचरानद, गिरिनंद आदि क्रमश उत्तराधिकारी हुए।

(९) भगवान् मुनिसुव्रतनाथके समयमें वानरवशमें महोदधि नामक राजा हुआ। और लंकाका उत्तराधिकारी विद्युत्केश हुआ। इन दोनोंमें बहुत गाढ़ी मैत्री थी। विद्युत्केश दीक्षा धारण कर स्वर्ग गया। जब यह समाचार महोदधिने सुने तब उसने भी दीक्षा धारण की।

(१०) विद्युत्केशका उत्तराधिकारी सुकेशी और महोदधिका प्रतिचन्द्र हुआ। प्रतिचन्द्रने भी अपने पुत्र किहिकन्धको राज्य दे और छोटे पुत्र अधको युवराज बना दीक्षा धारण की।

(११) राजा किहिकन्धके गलेमें आदित्यपुरके राजा विद्यामदिरकी पुत्री श्रीमालाने स्वयम्वर मण्डपमें वर माला डाली। इसपर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीके रत्नपुर नामक नगरके राजा अशनिवेगका पुत्र विजयसिंह क्रोधित हुआ और दोनोंका युद्ध हुआ। युद्धमे विजयसिंह मारा गया। तब विजयसिंहके पिता अशनिवेगने युद्ध किया। इधर लङ्काके राजा सुकेशीने किहिकन्धकी सहायता की। परन्तु युद्धमें अशनिवेगने किहिकन्धके छोटे भाई अन्धको मारा। तब किहिकन्ध, सुकेशीके इस प्रकार समझानेसे कि इस समय शत्रु बलवान् है अतएव इसे निर्बल होने तक छिप कर रहना उचित है, युद्धसे पीठ दिखा कर अपने मित्र सुकेशीके साथ पाताल लङ्का चला गया। कुछ दिनों बाद किहिकन्धने करन-

तट नामक वनमें किहिकन्धपुर नगर बसाया और वहीं रहने लगा। अशनिवेगके दूत निर्घातने लङ्का ले ली। सुकेशी पाताल लङ्कामें ही रहता था। सुकेशीके माली सुमाली और माल्यवान नामक तीन पुत्र हुए। इन तीनोंने निर्घातको मारकर अपनी राजधानी लङ्का पुन: छुड़ा ली तथा विजयार्धकी दोनो श्रेणियोंको जीत लिया।

(१३) बानर वंशमें किहिकन्धके सूर्यरज और रक्षरज नामक दो पुत्र हुए। और सूर्यकमला नामक पुत्री हुई। जिसका मेघपुर-के राजा मेरुके पुत्र मृगारिदमनके साथ विवाह किया।

(१४) माली, सुमाली और माल्यवान इन तीनों भाइयोंकी एक २ हजार रानियॉं थीं। सुकेशीके वैराग्य धारण करने पर बडे पुत्र माली उत्तराधिकारी हुए। उधर किहिकन्धने भी सूर्यरजको राज्य देकर दीक्षा धारण की। माली और उसके दोनों भाई बडे बलवान तथा अभिमानी थे, इन्हें इन्द्र विद्याधरने युद्धमे जीता।

(१५) इन्द्र, रथनूपुरके राजा सहस्रारि विद्याधरका पुत्र था।

(१६) इन्द्र बड़ा बलवान राजा था। जब इन्द्र गर्भमें आया था उस समय उसकी माताको इन्द्रके समान विलास करने-की इच्छा हुई थी। इसीलिये इसका नाम भी इन्द्र रक्खा। इन्द्रने भी अपने सर्व कार्य स्वर्ग तथा इन्द्रके समान किये। लोक-पालोंकी स्थापना की। और उनके नाम भी वेही रक्खे जो उर्ध्व लोकके स्वर्गके लोकपालोंके हैं। अपनी सभाके सभासद भी स्वर्ग ही के समान नियत किये। मन्त्रीका नाम बृहस्पति रक्खा। हाथीका ऐरावत नाम रक्खा। साराश यह है कि जैन शास्त्रोंमें स्वर्ग और उसके इन्द्रकी विभूति, सभा आदिका जिस प्रकार वर्णन है, उसकी नकल विद्याधर इन्द्रने की।

(१७) इन्द्रकी सहायताके अभिमानसे जब विद्याधरोंने लंकाके स्वामी मालीकी आज्ञा माननेमें आनाकानी की तब मालीने विद्याधरों पर चढ़ाई की। विद्याधरोंने इन्द्रकी सहायतासे मालीको युद्धमें मारा।

(१८) मालीके मरने पर सुमाली और माल्यवान्‌का इन्द्रने पीछा किया। और कुछ दूर आगे जाकर सोम नामक लोकपालको लंका विजय करनेकी आज्ञा दे आप लौट आया। और अपने माता पिताके चरणोंपर नमस्कार किया। माली मारे गये।

(१९) सुमाली और माल्यवान् भागकर पाताल लंका पहुंचे।

(२०) लंका विजय कर इन्द्रने अपनी ओरसे वैश्रवण नामक विद्याधरको लंकाका लोकपति बनाया। वैश्रवण बड़ा बली थी। इसके पिताका नाम विश्रव था जो यज्ञपुरका स्वामी था। इसकी माता कौतुकमङ्गल नामक नगरके राजा कामबिंदुकी कन्या कौशिकी थी। जिसकी छोटी बहिन केकसीका विवाह सुमालीके पुत्र रत्नश्रवाके साथ हुआ था।

(२१) रत्नश्रवा महान विद्वान और धर्मात्मा था। इसने पुष्पक नामके वनमें विद्या सिद्ध की थी। विद्या सिद्ध करते समय उसकी सेवाके लिये कामबिंदुने अपनी पुत्री केकसीको भेज दिया था। वनमें रत्नश्रवाको मानस-स्तम्भीनी विद्या सिद्ध हुई। उस विद्याके द्वारा उसने उस वनमें पुष्पाङ्कित नगर बसाया और फिर केकसीके साथ विवाह किया। केकसी महान गुणी और रूपवती थी। इस दम्पतिमें परस्पर बड़ा प्रेम था। येही दोनों रावणके मातापिता हैं।

पाठ २३।

आठवें प्रति नारायण रावण और उनके बन्धु।

(१) रानी केकसीने रावणके गर्भमें आनेके पहिले तीन स्वप्न इस प्रकार देखे थे—

(१) एक सिंह अनेकों गजेन्द्रोंके गण्डस्थल विदारण करता हुआ आकाशसे पृथ्वीपर आया और रानीके मुखमें प्रविष्ट होकर कुक्षिमें ठहर गया।

(२) सूर्य रानीकी गोदमें आया।

(३) चन्द्रको अपने सन्मुख उपस्थित देखा।

(२) इन स्वप्नोंके फलमें राजा रत्नश्रवाने रानीसे कहा कि तेरे तीन पुत्र होंगे। जो बलवान, धर्मात्मा और बड़े तेजस्वी होंगे। पहिला पुत्र क्रूर और उद्धत होगा।

(३) जिस समय रावण गर्भमें आया उसी समयसे माताकी चेष्टा क्रूर हो गई और उसका स्वभाव उद्धत हो गया।

(४) रावण जब उत्पन्न हुआ तब उसके वैरियोंके यहाँ अशुभ चिन्ह हुए। रावण महा बलवान सुन्दर और तेजस्वी था। राक्षस वंशके मूल पुरुष मेघवाहनको भीम इन्द्रने जो हार दिया था उसे रावणने उत्पन्न होनेके पहिले ही दिन—पास रक्खा हुआ था सो—उठा लिया। उस हारकी रक्षा हजार देव करते थे। हारकी ज्योतिमें रावणके कई प्रतिबिम्ब रावणके पिताको दिखाई दिये अतएव उसका नाम दशानन प्रसिद्ध हुआ।

(५) रावणके बाद कुम्भकर्ण, कुम्भकर्णके बाद चन्द्रनखा और

उसके पश्चात् विभीषण उत्पन्न हुआ। कुम्भकर्ण और विभीषण शान्त प्रकृतिके थे। रावण बडा क्रूर, अभिमानी और उद्धत था।

(६) एक दिन वैश्रवण (जो कि इन्द्र द्वारा नियुक्त लङ्काका अधिकारी था) विमान पर बैठा बड़े गर्वके साथ आकाश–मार्गसे जा रहा था। उस समय रावण अपनी माताकी गोदमें बैठा हुआ था। रावणने मातासे पूँछा कि यह कौन है ? माताने उत्तरमें कहा कि यह तेरी मौसीका बेटा है। और इन्द्रका कर्मचारी है। लङ्कामें इन्द्रकी ओरसे रहता है। बड़ा अभिमानी और बलवान् है। इन्द्रने तेरे दादा मालीको मार कर हमसे लङ्का छीन ली है। तेरे पिता लङ्काको पुनः अपने अधिकारमें लौटा लानेकी चितामें सदा मग्न रहते हैं और तेरे पर उनका भरोसा है। इस पर विभीषणने मातासे कहा कि–"जननी ! तू योद्धाओंकी माता है। तुझे इस प्रकार दूसरोंकी प्रशसा करना उचित नहीं। रावण बडा बलवान है। इसके समान किसीमें बल नही है। इसके शरीरमें श्रीवास आदि कई शुभ लक्षण है।" रावणने कहा "माता ? मैं स्वय अपनी प्रशसा क्या करूँ ! परन्तु इतना मैं कहता हूं कि जितना बल सम्पूर्ण विद्याधरोंमें है, उतना मेरी एक भुजामें है।

(७) इसके बाद रावण और उसके साथ दोनों भाई भीम-नामक बनमें विद्या सिद्ध करनेके लिये गये। इनके कार्यमें जम्बूद्वीपके रक्षक अनावत नामके देवने विघ्न डाले परन्तु इन तीनों भाइयोंने विघ्नोंकी पर्वाह नहीं की। तब रावणको अनेक विद्याएं सिद्ध हुई तथा कुम्भकर्णको पांच और विभीक्षणको चार

विद्याएँ सिद्ध हुई। उक्त अनावृत देवने रावणके धैर्यको देख कर स्तुति और आपत्तिके समयमें स्मरण करने पर उपस्थित होनेका वचन दिया। रावणकी विद्यासिद्धिसे राक्षसवंश और वानरवंशमें महा हर्ष हुआ। रावणको जो विद्याएँ सिद्धि हुई उनमेंसे कईएकोंके नाम इस प्रकार हैं—

नभः संचारिणी, कामदायिनी, कामगामिनी, दुर्निवारा, जगत्कंपा, प्रगुप्ति, भानु मालिनी, अणिमा, लघिमा, क्षोभा, मनस्तंभकारिणी, सवाहिनी, सुरध्वसी, कौमारी, वधकारिणी, सुविधाना, तमोरूपा दहना विपलोदरी, शुभप्रदा, रजोरूपा, दिन रात्रि विधायिनी वज्रोदरी, समाकृष्टि, अदर्शिनी, अजरा, अमरा, अनल स्तंभी, तोयस्तंभिनी, गिरिदारिणी, अवलोकिनी, ध्वंसी, धीराघोरा, भुजंगिनी, वीरिनी, एक भुवना, अवध्यादारुणा, मदनासिनी, भास्करी, भयसंभुति ऐशानि, विजिया, जमाबंधिनी, मोचनी, वाराही, कटिलाकृति, चित्तोद्भवकरी, शांति, कौबेरी, वशकारिणी, योगेश्वरी, बलोत्साही, चंडा, भीति प्रवर्षिणी इत्यादि।

(८) कुम्भकर्णको उन पांच विद्याओंके नाम जो उसे सिद्धि हुई इस प्रकार हैं:—सर्व हारिणी, अति संवर्द्धिनी, ज्रंभिनी, व्योमगामिनी, और निद्रानी।

(९) विभीषणको जो चार विद्याए सिद्ध हुई उनके नाम इस प्रकार है—सिद्धार्था, शत्रुदमनी, व्याघाता, आकाशगामिनी।

(१०) इन तीनों भाइयोंको विद्या सिद्ध होनेपर सुमाली, माल्यवान्, रत्नश्रवा, केकसी, सूर्यरज, रक्षरज आदि रावणके पास आये। और उन्होंने रावणकी बहुत २ प्रशंसा की। रावणने

भी इनकी बहुत सेवा की। विद्याओंकी सिद्धिसे रावणकी कीर्ति बहुत कुछ फैल गई थी।

(११) असुरसङ्गीत नगरके राजा मयने अपनी पुत्रीका विवाह रावणके साथ करनेका विचार कर पुत्रीको लेकर रावणके पास आया। रावण उस समय चन्द्रहास्य खड्गकी सिद्धि कर सुमेरु पर्वत पर चैत्यालयोंकी वन्दना करने गया था। अतएव रावणकी भगिनीने राजा मय, उनकी पुत्री, और उनके मंत्रियोंका आतिथ्य-सत्कार किया।

(१२) फिर रावण आकर सबोंसे मिला। चैत्यालयमें जाकर पूजन की। पूजनके अनन्तर जब रावण, मय आदि आकर बैठे तब रावणकी दृष्टि मयकी पुत्री मन्दोदरी पर पड़ी। मन्दोदरी बड़ी रूपवती थी। मन्दोदरीको देखकर रावण मोहित हुआ। रावणको मोहित जान मयने मदोदरीको रावणके सन्मुख उपस्थित कर प्रार्थना की कि आप इसके पति होना स्वीकार करें। रावणने स्वीकार किया और उसी दिन रावणसे मन्दोदरीका विवाह हुआ।

(१३) मन्दोदरी रावणकी अन्य राणियोंकी पट्टरानी हुई। एक दिन रावण मेघवर पर्वत पर क्रीड़ा करने गया था वहां छ हजार राजकन्याएं भी क्रीड़ा कर रही थीं। रावण भी उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। उन कन्याओंमें और रावणमे परस्पर अनुराग उत्पन्न हो गया। अतएव उन कन्याओंके साथ रावणने गन्धर्व विवाह किया। यह देख उन कन्याओंके साथ जो सेवक आये थे उन्होने उन कन्याओंके माता पितासे जब यह निवेदन किया तब वे बड़े क्रोधित हुए और अपने सामन्तोंको रावणको पकड़नेके

लिये भेजा परंतु रावणने उन्हें मार भगाया तब वे स्वयं कई राजा मिल कर रावणपर चढ कर आये। यह देख उन कन्याओंने रावणसे छिप जानेके लिये कहा। तब रावणने कहा तुम मेरा बल नहीं जानती। मै इन सबको मार भगाऊँगा। यह कह विमान पर चढ़ और आकाश मार्गमे युद्ध किया और मुख्य २ राजाओं-को नागपॅाशमें बांध लिया। तब उन कन्याओंने रावणसे प्रार्थना कर अपने गुरुजनोंको छुडाया। उन्होंने भी रावणको बड़ा बलवान् योद्धा समझ अपनी २ कन्याओंके साथ रावणका विवाह कर दिया। रावण उन छ. हजार स्त्रियोंके साथ स्वयप्रभनगर आया, वहा उसका बहुत सत्कार हुआ।

(१४) कुम्भकर्णका विवाह कुम्भपुरके राजा मन्दोदरकी पुत्री तड़ित्मालासे हुआ।

(१५) और विभीषणका ज्योतिप्रभ नगरके राजा विशुद्ध-कमलकी पुत्री राजी व सरसीसे हुआ। जैन पुराणकारोंका कहना है कि कुम्भकर्ण और विभीषण बडे धर्मात्मा और सदाचारी थे। तथा कुम्भकर्णको बहुत ही अल्प निद्रा थी।

(१६) कुम्भकर्ण वैश्रवणके राज्यमें उत्पात मचाने लगा। तब वैश्रवणने सुमालीके पास दूत भेज कर कहलाया कि तुम अपने पौत्रोंको अन्यायसे रोको नहीं तो तुम्हारे लिये ठीक नहीं होगा। दूतके इस कथन पर रावण बड़ा क्रोधित हुआ और उसे मारनेको तैयार हुआ परन्तु विभीषणके मना करने पर उसने दूतको न मार सभासे बाहर निकाल दिया। वैश्रवणसे जब दूतने यह

समाचार कहे तब रावण व वैश्रवणका युद्ध गुञ्ज नामक पर्वत पर हुआ । उस युद्धमें रावणकी जय हुई । रावणने युद्धमें भिंडिपाल नामक अस्त्र विशेषके आघातसे वैश्रवणको मूर्छित कर दिया था। जब वैश्रवण आरोग्य हुआ तब वह इतना अशक्त हो गया था कि वह स्वय कहने लगा कि जिस तरह पुष्प रहित वृक्ष किसी कामका नहीं उसी प्रकार बलरहित सामतका होना निरर्थक है । पर विचार कर उसने दीक्षा धारण की । वैश्रवणके पास जो पुष्पक-विमान था उसे रावणने प्राप्त किया । इस प्रकार अपनी प्राचीन राजधानी लंकाको हस्तगत कर फिर विद्याधरोंकी दक्षिण श्रेणी विजय की ।

(१७) दक्षिण श्रेणी विजय कर जब रावण लौट रहा था तब रास्तेमें हरिषेण चक्रवर्तीके बनवाये हुए मंदिरोंकी वंदना की और वहां ठहरा । दूसरे दिन एक मदोन्मत्त गजराजको वशमें किया जिसका नाम त्रैलोक्य-मण्डल रक्खा । यहीं पर एक दूतने वानर वंशियों और इन्द्रके यम नामक लोकपालके परस्पर युद्ध होनेके समाचार कहे तथा वानर वंशियोंकी सहायतार्थ प्रार्थना की । यह समाचार सुनते ही रावण बिना किसीको लिये वानर-वंशी राजा सूर्यरज और रक्षरजकी सहायतार्थ चल दिया यह देख सेनापति और सेना भी रावणके पीछे चल दी । यम बड़ा बलवान् था । उसने अपने राज्यमें एक नकली नरक बनवा रक्खा था । जिसमें वह शत्रुओं और अपराधियोंको कैद करवा कर दुःख दिया करता था । रावणने पहिले पहिल इसी नरकको ध्वंश किया ।

और उससे सूर्य-रज, रक्षरज तथा अन्य बन्दी जनोंको छुड़वाया। यह समाचार सुनते ही यम विशाल सेनाके साथ रावणसे लड़ने आया। घनघोर युद्ध हुआ। अंतमें रावणकी जय हुई। यम अपने जमाई और स्वामी इन्द्रके पास भाग गया। रावणने किहि-कंधपुर सूर्यरजको दिया। वानर वंशियोंकी यही पुरानी राजधानी थी। जिसको इन्द्रने छीन किया था। रक्षरजको किहिकम्पुरका राज दिया। यमके द्वारा इन्द्रने जब रावणके समाचार सुने तब इन्द्र रावणसे लड़नेको उद्यत हुआ। परन्तु मंत्रियोंने रावणके बलकी प्रशंसा कर इन्द्रको इस युद्धमे पराङ्मुख किया। इस प्रकार रावणका प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। यमको जीत कर रावण अनेक राजाओंके साथ लंकामें आये। सर्व प्रजा राव-णके पास आकर रावणकी प्रशंसा करने लगी।

(१८) एक दिन रावण राजा प्रवरकी पुत्री तन्दरीसे विवाह करनेके लिये गया हुआ था। इस अवसरमे राजा मेघप्रभका पुत्र खरदूषण आकर रावणकी बहिन चन्द्रनखाको हर ले गया। खरदूषण बलवान् और चौदह सहस्र विद्याधरोंका स्वामी था। इसे प्रबल समझ कुम्भकर्ण विभीषणने पीछा नहीं किया। रावण जब घर आया और यह समाचार सुना तब क्रोधित हो और विना किसीको संग लिये खरदूषणको मारने जाने लगा। मंदोदरीने उन्हें उस समय मना किया और कहा कि तुम्हारी बहिन जब खरदूषण हर ले गया ऐसी अवस्थामें उसे मारनेसे चन्द्रनखा विधवा हो जायगी। अतएव अब खरदूषणका पीछा करना उचित नहीं। यह सम्मति रावण मान गया।

(१९) इधर वानर वंशियोंमें सूर्यरजके यहां बाली और सुग्रीव नामक दो पुत्र तथा श्रीप्रभा नामक कन्या उत्पन्न हुई। सूर्यरज बालीको राज देकर मुनि हो गये। बाली बडा बलवान् और धर्मात्मा था। इसे देवशास्त्र गुरुके सिवाय अन्यको प्रणाम न करनेकी प्रतिज्ञा थी। बलके कारण यह रावणको भी कुछ नहीं समझता था। इसी लिये क्रुद्ध होकर रावणने दूतके द्वारा बालीसे कहलाया कि तुम यातो मेरी आज्ञा मानो, प्रमाण करो, और अपनी बहिन श्रीप्रभा मुझे दो अथवा युद्ध करो। बालीने प्रणाम करनेकी बातके सिवाय अन्य सब स्वीकार किया। परन्तु रावणने स्वीकार न कर बालीपर चढाई की। बाली भी युद्धके लिये उद्यत हुआ परन्तु मन्त्रियोंने उसे रोका। उस समय बालीने अपने य उद्गार निकाले—"मन्त्रिगण! मैं आत्मश्लाघा नहीं करता परन्तु मैं इस रावणको और इसकी सेनाको बांये हाथकी हथेलीसे चूर कर सकता हूं। परन्तु मैं विचार करता हूं कि इस क्षणिक जीवनके लिये मैं निदय कर्म क्यों करूं?। मेरे जिन हाथोंने भगवान् जिनेन्द्रको प्रणाम किया, भगवान् जिनेन्द्रकी पूजा की, और दान किया, तथा पृथ्वीकी रक्षा की, वे हाथ दूसरेको प्रणाम कैसे कर सकते है? जो हाथोंको जोड़कर दूसरोंको प्रणाम करता है वह तो किंकर है—गुलाम है। उसका जीवन और ऐश्वर्य निरर्थक है।" यह कह कर बालीने अपने छोटे भाई सुग्रीवको राज्य देकर श्रीगगनचंद्र मुनिके द्वारा दीक्षा ली। और विकट तप करने लगे। सुग्रीवने रावणकी आज्ञा मानना स्वीकार किया और अपनी बहिनका रावणके साथ विवाह किया।

(२०) रावणने विद्याधरोंकी सम्पूर्ण सुंदर२ कन्याओंके साथ विवाह किया। एक दिन रावण नित्यलोक नगरके राजा नित्यलोक जिनकी राणीका नाम श्रीदेवी था—की पुत्री रत्नावलीसे विवाह कर नव वधूको साथ ले पुष्पक विमान द्वारा आरहा था। कैलाश पर्वत पर आते ही जिन मंदिर और वाली मुनिके प्रभावसे विमान आगे न चल सका। वाली मुनि उस समय वहां तप कर रहे थे। रावणने विमान अटकनेका कारण अपने मंत्री मारीचसे पूंछा। मंत्रीने कहा अनुमान होता है कि यहां कोई साधु ध्यान कर रहे हैं। अतएव यातो नीचे उतर कर उनकी वंदना करो अथवा विमान लौट कर दूसरे मार्गसे ले चलो। तब रावण नीचे उतरा। वाली मुनिको देख कर रावणको पूर्व शत्रुता स्मरण हो आई और वाली मुनिराजकी निंदा करने लगा। तथा विद्याबलसे पर्वतके नीचे बैठ पर्वतको उखाडना चाहा। पर्वत डगमगाने लगा। उस समय मुनिराजने पर्वत परके जिन मंदिरोंकी रक्षाके विचारसे अपनी काय ऋद्धिको कार्यमें परिणत करना उचित समझ अपने पैरके अंगुष्ठको पर्वत पर धीरेसे दबाया। उनके अंगुष्ठ दबाने मात्रसे जो रावण पर्वतको उखाड फेंकनेका विचार कर रहा था वह पर्वतके भारसे दबने लगा। आँखें फट कर बाहर आनेकी दशामें हुईं. नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे। तब रावणकी स्त्री, मंत्री आदिने क्षमा प्रार्थना की जिससे मुनिराजने अपने अंगुष्ठको ढीला किया फिर रावणने पर्वतके नीचेसे निकल कर वाली मुनिकी स्तुति और अपराधक्षमाकी प्रार्थना की। उस समय भक्तिके वश हो रावणने अपनी भुजामेंसे

नस निकाल कर उससे वीणा बजाई। इस घटनाके पूर्व समय तक रावण "रावण न कहला कर दशानन कहलाता था। परन्तु इस घटनामें पर्वतके भारसे जब उसे रुदन करना पड़ा तबसे वह "रावण" कहलाया। वाली मुनिने यद्यपि जिन मंदिर कैलाश पर्वत तथा जीवोंकी रक्षाके लिये काय ऋद्धि द्वारा रावणसे कैलाश पर्वतकी रक्षा की थी तो भी यह कार्य मुनि धर्मके विरुद्ध था। इसलिये अपने गुरुसे आपने प्रायश्चित्त लिया और घोर तप कर केवल ज्ञान प्राप्त किया।

(२१) इस समय रावणने जो स्तुति गान किया था उससे प्रसन्न होकर धरणेन्द्र वहां आया और रावणसे कहा कि स्तुति गानसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं इस लिये वर मांगो। रावणने कहा कि जिनेन्द्र-भक्तिसे अधिक और कोई वस्तु नहीं जो मैं मांगू। धरणेंद्रने कहा कि यह आपका कहना ठीक है, जिनेन्द्र-भक्तिसे ही मनुष्य बड़े २ सांसारिक पद और परम्परा मोक्ष प्राप्त कर सकता है, तो भी हमारा तुम्हारा मिलन निरर्थक न जावे; इसलिये अमोघ विजया नामक शक्ति मैं तुम्हें देता हूं। तुम इसे ग्रहण करो। रावणने धरणेंद्रके द्वारा दी हुई शक्ति ग्रहण की। और करीब १ मास तक कैलाश पर्वत पर रहा।

(२२) (क) कैलाशसे आकर रावण दिग्विजयके लिये निकला। संपूर्ण राक्षसवंशी और वानरवंशी विद्याधरोंने रावणकी आधीनता स्वीकार की। (ख) फिर रावण रथनपुरके स्वामी इन्द्रको विजय करने चला। पाताल लंकामें जाकर डेरा दिया। वहांके

स्वामी खदूषणने—जो रावणका बहिनोई था—रावणको रत्नोंका अर्घ दिया और आधीनता स्वीकार कर अपनी सेना रावणकी सेवामें उपस्थित की। खरदूषणको रावणने अपने ही समान सेनापति बनाया। खरदूषणकी सेनामें हिडम्ब, हैहिडंब, विकट, त्रिजट, हय, माकोट, सुजट, टक, किहिकन्धाधिपति, सुग्रीव, त्रिपुर, मलय, हेमपाल, कोल, वसुन्दर, आदि अनेक राजा थे। रावणकी सेना एक हजार अक्षौहिणीसे भी कुछ अधिक हो गई थी।

(ग) खरदूषण पाताललंकाके चन्द्रोदर नामक विद्याधरके मर जाने पर वहाका अधिकारी बन गया था। और उसकी स्त्री अनुराधाको निकाल दिया था। अनुराधा उस समय गर्भिणी थी। अतएव बड़े कष्टोंसे वह वन २ भटकती फिरी और इसी प्रकारकी दुःखमय स्थितिमें उसने प्रसुति की। उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रका नाम विराधित रक्खा गया। जब यह बडा हुआ तब अपने शत्रु खरदूषणसे बदला लेनेका प्रयत्न करने लगा। परन्तु इसका कोई सहायक नहीं था। जहां जाता वहा इसका कोई सन्मान नहीं करता। लाचार जिनेन्द्रके मंदिरोंकी वंदना करना तथा तटस्थ होकर आकाश मार्गसे पृथ्वीके संग्रामादिको देख कर ही मनोविनोद करना इसने उचित समझा।

(घ) पाताल लंकासे चल कर रावण विध्याचल पर्वत परसे होता हुआ नर्मदाके तट पर आया। और वहां डेरा दिया। इसके डेरेसे कुछ ऊंचास पर माहिस्मती नगरीका राजा सहस्ररश्मि

जलयन्त्रके द्वारा जल बाध कर अपनी रानियों सहित क्रीडा कर रहा था। प्रात काल जब रावण जिनेन्द्रकी पूजा करने लगा तब सहस्ररश्मिके जलयंत्रोंसे बंधा हुआ जल छूट गया और जल-प्रवाह बडे वेगसे रावणके स्थान पर आया। रावणने जिनेन्द्रकी प्रतिमाको मस्तक पर रख कर सहस्र रश्मिको पकडनेकी आज्ञा दी और आप फिर जिनेन्द्रकी पूजा करनेमें लग गया। आज्ञा पाकर कई राजा, सेना सहित सहस्ररश्मिको पकडने गये। पहिले रावणकी सेना आकाश मार्गसे मायामयी शस्त्रास्त्रोंके द्वारा युद्ध करती थी। परन्तु देववाणीके द्वारा देवोंने इसे अन्याय युद्ध कहा क्योंकि सहस्ररश्मि भूमिगोचरी था और भूमि परसे युद्ध कर रहा था। तब रावणकी सेना लज्जित हो पृथ्वी पर आई, दोनोमे घोर युद्ध हुआ। सहस्ररश्मिकी सेना पहिले हटी परन्तु फिर सहस्र-रश्मिके युद्धके लिये स्वयं उद्यत होने पर उसने रावणकी सेनाको हटाया। रावणकी सेना करीब १ योजन पीछे हट गई। यह संवाद सुन रावण स्वयं आया। और युद्ध कर सहस्ररश्मिको जीता पकडा। उस समय सन्ध्या हो गई थी। रात्रिमें सहस्ररश्मि कैद रहा। सहस्ररश्मिके पिता शतबाहुने—जिन्होंने मुनि दीक्षा ले ली थी—जब सहस्ररश्मिके कैद होनेका वृत्तांत सुना तब स्वयं रावणके पास आये। रावणने मुनि शतबाहुकी बहुत अभ्यर्थना की। शतबाहुने सहस्ररश्मिको छोडनेके लिये कहा। रावणने सहस्ररश्मिको छोड कर उनसे कहा कि मै आपकी सहायतासे इन्द्रको जीतूगा और फिर तुम्हारा मेरी पत्नी मंदोदरीकी छोटी बहिनके

साथ विवाह करा दूँगा। परन्तु सहस्ररश्मिने कहा कि मुझे अब वैराग्य हो गया है इसलिये मैं अब इन सांसारिक कार्योंमें प्रवृत्त नहीं होना चाहता। यह कह कर अपने पिता मुनि शतबाहुसे दीक्षा ली और अपने मित्र अयोध्याके स्वामी अरण्यके पास दीक्षा ग्रहणके समाचार भेजे। अरण्यने भी सहस्त्ररश्मिके दीक्षा ग्रहणके समाचार सुन दीक्षा ली क्योंकि दोनों मित्रोंमें एक साथ दीक्षा लेनेकी प्रतिज्ञा थी।

(ङ) यहांसे रावण फिर आगे उत्तर दिशाकी ओर बढ़ा। मार्गमें सम्पूर्ण राजाओंको वशमें करता, चलता था। जिन मंदिर बनवाता था। जीर्णोद्धार करता था। हिंसकोंको दण्ड देता था। दरिद्रियोंको दान देता और जैनियोंसे प्रेम करता था। (च) मार्गमें राजपुर नामक नगर मिला। वहाँका राजा मरूत यज्ञ कर रहा था। देवर्षि नारद आकाश मार्गसे जा रहे थे। उन्होंने राजपुरमें विशेष चहल पहल देखी। नारदका स्वभाव कौतूहली था। वे पृथ्वी पर उतरे। जब उन्होंने देखा कि राजा यज्ञ कर रहा है और उसमें पशुओंका हवन कर रहा है तब नारदने राजासे यज्ञ न करनेके लिये कहा। इस पर राजाने कहा कि हम कुछ नहीं समझते। हमारे यज्ञाचार्य सम्वर्तसे आप धार्मिक चर्चा करो। तब नारद और सम्वर्तमें विवाद हुआ। जब सम्वर्त नारदको न जीत सका तब कई यज्ञकर्ता ब्राह्मणोंके साथ नारद पर आक्रमण करने लगा। नारदने भी अपने शारीरिक अंगों द्वारा उनके प्रहारोंको बचाया और स्वयं प्रहार किया। परन्तु प्रहार करनेवाले अधिक थे इसलिये नारदके प्राण संकटमें आ पड़े। इधर रावणका

दूत राजपुरके राजाके पास आया था, उसने जब यह हाल देखा तब वह दौडा हुआ रावणके पास गया। और नारदको यज्ञकर्त्ताओं द्वारा दुःख पहुंचानेके समाचार कहे। रावणने अपने कई सामन्तोंको नारदकी रक्षाके लिये भेजा। और स्वयं भी तेज बाहनों पर चढ कर वहां पहुचा। नारदको उनसे बचाया और यज्ञकर्ताओंको बहुत पीटने लगा। यज्ञकर्ता, रावणसे विनय अनुनय करने लगे और आगेसे ऐसा न करनेकी प्रतिज्ञा की। तब नारदने रावणको समझा कर यज्ञकर्ताओंको छुड़ाया। राजापुर नरेशने भी रावणकी स्तुति कर आधीनता स्वीकार की और अपनी पुत्री कनकप्रभाका रावणसे विवाह किया। रावण वहां एक वर्ष तक रहा। कनकप्रभासे कृतचित्रा नामक पुत्रीका जन्म हुआ।

(छ) रावणको इसी बीचमे इतना समय लग गया कि कृतचित्रा विवाह योग्य हो गई थी। इसलिये रावणने मंत्रियोंसे सलाह ली कि कृतचित्राका विवाह किसके साथ करना उचित है। क्योंकि इन्द्रके साथ युद्ध करनेमें जीतनेका कुछ निश्चय नहीं अतएव कृतचित्राका विवाह कर डालना उचित है। तब मथुराके नरेश हरिवाहनने अपने पुत्र मधुको बुला कर रावणको दिखलाया। मधु विद्वान्, रूपवान, चतुर और विनयी था। रावणका भक्त था। रावणने उसे पसंद किया। मंत्रियोंने भी उसीके लिये सम्मति दी। अतएव रावणने कृतचित्राका विवाह मधुके साथ कर दिया। मधुको असुरेन्द्रके द्वारा त्रिशूलरत्नकी प्राप्ति भी हुई थी। क्योंकि असुरेन्द्र और मधु दोनों पूर्व

जन्मके मित्र थे। असुरेंद्र पूर्वजन्ममें दरिद्री था और मधु राजा था। मधुके जीवने दरिद्रमित्रको धन धान्यादि सामग्रीसे पूर्ण कर अपने समान बना लिया था। पूर्वजन्मकी इस कृपाके बदलेमें असुरेंद्रने मधुको त्रिशूलरत्न दिया था। (ज) कृतचित्राका विवाह कर रावण सेना सहित आगे बढ़ा। और कैलाश पर्वतके निकट पहुंचा। गंगाके तटपर डेरा डाला। यहा तक आनेमें रावणको १९ वर्षका समय लगा। यहींसे इन्द्रसे युद्ध करना था। क्योंकि इन्द्रका नलकूबर नामक लोकपाल इसी स्थानके समीप उलंधिपुरमें रहता था। जब लोकपालने रावणका आना सुना तब उसने इन्द्रको दूतों द्वारा पत्र भेजा। इन्द्र पाण्डुक वनके चैत्यालयोंकी वंदनाको जा रहा था। नलकूबरके दूत उसे मार्गहीमें मिल गये। इन्द्रने उत्तर दिया कि तुम नगरकी रक्षा करो। मैं बहुत शीघ्र दर्शन करके लौटता हूं। तब नलकूबरने नगरके आसपास सौ योजन ऊंचा और तीन योजन चौडा वज्रशाल नामक कोट बनवाया। इसकी बुर्जें सर्पाकृतिकी थी। इसमेंसे अग्निके फुलिङ्ग निकलते थे। एक योजनमें ऐसे यन्त्र बना दिये थे जो मनुष्योंको जीता ही निगल जाते थे। रावण मन्त्रियों सहित इस यन्त्र रचनाको तोड़नेके विचारमे लगा। इधर नलकूबरकी स्त्री रावण पर आसक्त थी। उसने रावणके पास अपनी दूती भेजी। रावणने पहिले तो दूतीको यह दुष्कृत्य करनेके लिये अस्वीकार किया। परन्तु विभीषण आदि मन्त्रियोंने कहा कि राजा छलकपट करके भी अपनी कार्य सिद्धि करते है। अतएव नलकूबरकी स्त्रीको यहां बुला लो। वह आप पर आसक्त है। अतएव नगरविजयका मार्ग

आपको मम्भव है कि वह बतला दे। रावणने यही उपाय किया। और उसकी सखीसे कहा कि तुम्हारा कहना हमें स्वीकार है। उसे यहा ले आओ। उपारम्भा (नलदूँवरकी स्त्री) रावणके पास आई और सम्भोग करनेकी इच्छा प्रगट की। रावणने कहा कि मेरी इच्छा उर्लंघिपुर नगरमें तुम्हारे साथ रमनेकी है। अतएव नगरके कोटको नष्ट करनेका उपाय बताओ। तब उसने आसाल नामक विद्या दी। और नानाप्रकारके दिव्यास्त्र दिये, जिनके द्वारा रावणने उस रचनाको नष्ट किया। नलदूँवर रावणको नगर जीतते देख युद्धके लिये सन्मुख हुआ। दोनों ओरसे युद्ध हुआ पर विभीषणने उसे पकड़ लिया। रावणने नलदूँवरकी स्त्री उपा-रम्भाको बहुत समझा कर दुष्कृत्यसे परांगमुख किया। उसकी बात गुप्त रक्खी। नलदूबर अपनी स्त्र की कुचेष्टाओंओ नहीं जान सका। नलदूँबरने रावणकी आधीनता स्वीकार की। रावणने उसे छोड़ दिया। यहा रावणके कटकमें सुदर्शनचक्र-रत्न उत्पन्न हुआ। (झ) इस तरह नलदूँवरको जीत रावण आगे बढ़ा और वैताढ्य पर्वतके समीप डेरा डाला। इन्द्रने रावणको समीप आते देख पितासे कहा कि मैंने कई वार रावणको नष्ट कर डालनेका विचार किया परन्तु आप मनाही करते रहे, अब शत्रु प्रबल हो गया है। अब क्या उपाय करना चाहिये? इन्द्रके पिता सहस्त्रारने कहा कि तुम शीघ्रता मत करो, मंत्रियोंसे सम्मति मिला लो। हमारी समझसे रावण प्रबल है उससे युद्ध करना उचित नहीं। उससे मिल लेना ही ठीक है और अपनी रूपवती कन्याका भी उसके साथ पाणि ग्रहण करना ठीक है। इस पर इन्द्रको क्रोध उत्पन्न

हुआ । उसने पिताके वचनका तिरस्कार करते हुए कहा कि संग्राममें प्राण देना उचित है परन्तु किसीके आगे नम्र होना उचित नहीं । यद्यपि हम दोनों विद्याधर होनेके नाते बराबर हैं परन्तु विद्या, बुद्धि और बलमें हम रावणसे अधिक हैं । ऐसा कह कर आयुधशालामें जा युद्ध की तैयारी करने लगा । रावण और इन्द्रमें घोर युद्ध हुआ । अंतमें इन्द्रको रावणने पकडा । तब इन्द्रके पिताने रावणसे मिल कर इन्द्रको छुडाया । इस पर इन्द्र बहु उदास हुआ और उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया । इतनेमें वहां चारण मुनि आये । उनसे इन्द्रने दीक्षा धारण की । (ञ) इस प्रकार इन्द्रको जीत कर रावण चैत्यालयोंकी वंदनाके लिये गया । मार्गमें अनंतवीर्य केवलीकी गंधकुटी देख वहां केवली भगवानके दर्शनार्थ रावण गया । कुम्भकर्ण, विभीषण आदि भी साथमें थे । कुम्भकर्णने धर्मका विशेष व्याख्यान सुननेकी जिज्ञासा प्रगट की । रावणादिने उपदेश सुना तब धर्मरथ मुनिने रावणसे कुछ प्रतिज्ञा लेनेके लिये कहा । तब रावणने यह प्रतिज्ञा ली कि जब तक कोई पर स्त्री मुझे न चाहेगी, मै उसके साथ संभोग नहीं करूंगा । कुम्भकर्णने जिनेन्द्रका अभिषेक प्रति दिन करने तथा मुनियोंके आहारका समय टल जाने पर आहार करनेकी प्रतिज्ञा ली । विभीषण और हनुमानने श्रावकके व्रत धारण किये ।

(१३) रावणके १८००० रानियां थीं । रावण प्रतिनारायण थे । और इनका जन्म भगवान् मुनिसुव्रतनाथको मोक्ष हो जानेके बाद हुआ था ।

पाठ २४.

नारद (१)

एक ब्रह्मरुचि नामक ब्राह्मण था। उसकी स्त्रीका नाम कुर्मी था। वह ब्राह्मण तापसी हो गया; और वनमें जाकर कन्द-फल फलादिसे उदर निर्वाह करता हुआ रहने लगा। उसकी स्त्री उसके साथ रहती थी। वहां उसे गर्भ रहा। एक समय कुछ मुनि वहाँ आये। तापसी ब्रह्मरुचि अपनी स्त्रीके साथ उनके पास गया। स्त्रीको गर्भिणी देख मुख्य मुनिराजने तापसीसे कहा कि भाई! जब तूने संसारको छोड़ वनमें रहना स्वीकार किया है फिर कामादिका सेवन क्यों करता है? मुनिके उपदेशसे उसने मुनिव्रत स्वीकार किया। स्त्रीने भी श्रावकके व्रत लिये और वनमे ही रहने लगी। दशवें मास पुत्र प्रसव किया। पुत्र लक्षणोंसे धर्मात्मा और पुण्यात्मा प्रतीत होता था। कुर्मीने विचार किया कि जीवोंका इष्टानिष्ट कर्माधीन है। माताकी गोदमें रहते भी पुत्र मरणको प्राप्त हो जाया करते हैं तो यदि मैं इस पुत्रके साथ भी रहूं तो भी कुछ लाभ नहीं। जो कुछ इसके भाग्यमें होना होगा वह होगा यह विचार कर पुत्रको वनमें छोड़ अलोकनगरमें आकर इन्द्रमालिनी नामक आर्यिकासे दीक्षा ली। इधर उस पुत्रको जम्भ नामक देव उठा कर ले गया। और उसका लालन पालन कर विद्या पढ़ाई। वह बड़ा विद्वान् हुआ। उसे युवा अवस्थामें ही आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई। और उसने क्षुल्लकके व्रत धारण किये। परन्तु उसका स्वभाव न तो

अधिक वैराग्यमय था और न गृहस्थावस्थाका ही प्रेमी था। महाशीलवान् था। कौतूहली था। कलहप्रिय था। गानेका बहुत बडा शौकीन था। इसका राजा महाराजाओं पर बहुत प्रभाव पड़ता था। पुरुष स्त्रियोंमें बहुत इसका सन्मान था। सदा आकाशमार्गमें भ्रमण किया करता था। लोग इसे देवर्षि कहकर पुकारते थे। इसका दूसरा नाम नारद था। इनकी गणना १६९ महा पुरुषोंमें है। ये मोक्षगामी हैं। पर इस पर्यायसे नरक गये हैं क्योंकि यह कलहप्रिय थे। स्थान २ पर इनके सम्बन्धमें जो वर्णन आया है उससे पाठक इनके स्वभावका परिचय पाजावेंगे।

पाठ २५.

हनुमान।

(१) विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें आदित्यपुर नामक नगर था। वहाके राजाका नाम प्रह्लाद था। उनकी राणी केतुमती थी। राजा प्रह्लाद् जैनी और राणी केतुमती नास्तिक थी। इनके पुत्रका नाम पवनञ्जय था। पवनञ्जयका दूसरा नाम वायुकुमार भी था।

(२) पवनञ्जयके साथ महेन्द्रपुरके राजा महेन्द्रने अपनी पुत्री अञ्जनीका विवाह करनेका विचार किया। राजा महेन्द्र कैलाश पर्वत पर आये। प्रह्लाद् भी उन्हें वहा आ मिले। तब राजा महेन्द्रने अपने विचार प्रगट किये। राजा प्रह्लादने उनके कथनको स्वीकार किया। ज्योतिषियोंने तीन दिनके बाद ही मान

सरोवरके तट पर पवनंजय और अञ्जनाके विवाहका मुहूर्त दिया।

(३) पवनञ्जयने जब अपने विवाहका समाचार सुना तब उन्हें अञ्जनाको देखनेकी प्रबल इच्छा हुई। अपनी इच्छाको उन्होंने प्रहस्त नामक मित्रसे प्रगट की। अञ्जना बड़ी विदुषी, रूपवान् और चित्रकला–प्रवीण नारी थी। पवनञ्जय और प्रहस्त विमानों-द्वारा अंजनाको देखनेके लिये गये। अजना उस समय अपनी दासियोंके साथ महलके झरोखोंमें बैठी हुई थी। इसके रूपको देखकर पवनंजय सन्तुष्ट हुआ। उस समय दासी वसत-तिलकाने पवनंजयके साथ पाणिग्रहण होनेके कारण अजनाके भाग्यको सराहा। परन्तु दूसरी दासीको पवनंजयकी प्रशसा अच्छी नहीं लगी। उसने कहा कि पवनजय अयोग्य वर है। यदि विद्युत्प्रभ-कुमारसे सम्बन्ध होता तो उचित था। पवनजयको दासीके इन वचनोंसे क्रोध उत्पन्न हो आया। और वह दासी तथा अंजनाको मारनेका विचार करने लगा। परन्तु प्रहस्त मित्रके अनुरोधसे उसने अपने क्रोधका सवरण किया। और डेरे पर आकर अपने नगरको जानेके लिये उद्यत हुआ तब पिता और श्वसुरने बहुत रोका। अंतमें–यह निश्चय कर कि विवाह करके अजनाको छोड़ दूगा–वहीं ठहर गया।

(४) मानसरोवर पर विवाह हुआ। पवनञ्जय अपने निश्च-यके अनुसार अजनासे सम्बंध नहीं रखता था। अंजना पतिकी अप्रसन्नतासे सदा दुखी रहती थी। वह महा सती और पतिव्रता थी। इस दुःखके कारण यहां तक शक्ति हीन हो गई थी कि

अपने पतिका चित्र बनाते समय भी वह लेखनीको स्थिर नहीं रख सकती थी।

(४) कितने ही वर्षोंके बाद एक वार रावणने वरुणसे युद्ध ठान रक्खा था। और वरुणके पुत्रने खर–दूषणको पकड लिया था। इस कारण रावणने अपने कई आधीन राजाओंको सहायतार्थ बुलाया था। अतः पल्हाद जानेको उद्यत हुए। परन्तु पवनंजयने पितासे कहा कि मेरे होते हुए आपको जाना उचित नहीं। विशेष अनुरोधसे पिताकी आज्ञा प्राप्त कर पवनंजय रावणकी सहायतार्थ चले। उस समय पतिके दर्शनार्थ अंजना द्वार पर आई। इस पर पवनंजय बहुत क्रुद्ध हुआ। पवनजय सेनाके सहित चले और मानसरोवर पर डेरा डाला। वहां चकवीको चकवाके वियोगसे दुःखी देख उन्हें अंजनाके दुःखका भान हुआ और अब वे अंजनासे मिलनेके लिए विकल होने लगे परन्तु पितासे विदा हो कर आये थे इससे किस प्रकार घर लौटना, इस पर विचार करने लगे मित्र प्रहस्तसे सम्मति ली। अतमें बहाना करके जानेका निश्चय किया।

(५) तदनुसार मुद्गर नामक सेनापतिको सेनाका भार देकर दोनों मित्र चैत्यालयोंकी वंदनाके बहाने अपने घर आये। वहां अंजना और पवनंजयका संयोग हुआ। प्रातःकाल जब पवनंजय जाने लगे तब अंजनाने गर्भकी आशंका प्रगट की और माता पितासे अपने आनेके समाचारोंको कहनेके लिये पवनंजयसे अनुरोध किया। पर पवनंजय वैसा करना उचित न समझ अपना कंकण और मुद्रिका अंजनाको दे शीघ्र आनेका वचन दे कर चले गये।

(७) अंजनाको गर्भ रहा । पवनंजयकी माताने अंजना पर व्यभिचारका दोष लगाया । और क्रूर नामक कर्मचारीके साथ अंजनाको उसके पिताके नगरके समीप वनमें छुड़ा दिया ।

(८) अंजना पिताके यहां गई परन्तु उसकी ऐसी स्थिति देख पिताने भी दुराचारिणी समझ अपने नगरसे निकलवा दी । दूसरे रिश्तेदारोंने भी उसे आश्रय नहीं दिया । तब अपनी सखी वसंतमालाके साथ वनमें चली गई ।

(९) वन महा-भयंकर था । किसी गुफामें रहनेका विचार कर दोनों एक गुफामें पहुंची । उसमें एक चारण ऋद्धिधारी मुनिके दर्शन हुए । दोनोंने वंदना कर अंजनाके कर्मोंका वृत्तांत पूछा । मुनिने सब वृत्तान्त कह धीरज बधाया और आकाश मार्गसे चले गये । दोनों बाला वहा रहने लगीं । एक रात्रिको वहा सिंह आया । वसन्तमाला स० शस्त्र थी । उसने अंजनाके रक्षकका कार्य किया, परन्तु भयभीत दोनों थीं । यह देख अपनी स्त्रीके अनुरोधसे उस गुफाके रक्षक एक गन्धर्व देवने अष्टापदका रूप धारण कर सिंहको भगाया और इन दोनोंका भय दूर किया ।

(१०) उस गुफामें दोनों बालाएँ मुनिसुव्रतनाथकी प्रतिमा विराजमानकर उसकी भक्ति करने लगीं । उसी गुफामें अंजनाकी प्रसूति हुई । बालकके जन्मसे अँधेरी गुफा प्रकाशित हो गई । बालक बड़ा शुभ लक्षणवाला था । उसे देखनेसे अंजनाको परम सन्तोष हुआ । अंजनाके पुत्रका जन्म चैत्र सुदी ८ (अष्टमी) को अर्द्धरात्रिके समय हुआ ।

(११) दूसरे दिन आकाशमार्गसे एक विमान जाते देख इन्हें फिर भय हुआ। अञ्जना भयके कारण रुदन करने लगी। एक अबलाकी आक्रन्दन ध्वनि सुन विमानवालोंने विमान नीचे उतारा। और उस गुफामें आकर बडी नम्रतासे सब वृत्तान्त पूछा। वे हनुरुह द्वीपके स्वामी राजा प्रतिसूर्य थे जो कि अञ्जनाके मामा थे। जब उन्होंने अपना वृत्तान्त प्रगट किया तब अञ्जनाको परम हर्ष हुआ। अञ्जनाका दुखमय वृत्तान्त सुन प्रतिसूर्यने उन्हें अपने घरपर चलनेके लिये कहा। अञ्जना और उसकी सखी दोनो प्रतिसूर्यके विमानपर आरूढ़ हो चलीं।

(१२) मार्गमें अञ्जना अपने पुत्रको खिला रही थी कि उसके हस्तसे बालक छूट पड़ा और नीचे जमीनपर आ गिरा। सब विलाप करने लगे। अञ्जना विकल हो गई। फिर विमान नीचे उतारा गया। और बालकको देखा तो एक पर्वत पर बालक पड़ा हुआ हँस रहा है। बालकके आघातसे पर्वतके खण्ड २ हो गये थे। क्योंकि यह चरमशरीरी था और कामदेव था। बालकका यह प्रताप देख सब प्रसन्न हुए और इसे भावी सिद्ध समझ कर प्रतिसूर्यने सह–कुटुम्ब तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार किया। वहांसे बालकको उठा विमानके द्वारा हनुरूह द्वीप पहुंचे। वहां बहुत उत्सव किया गया। और पर्वत पर गिरने तथा पर्वतके खण्ड करनेके कारण बालकका नाम श्रीशैल रक्खा। और हनुरूह क्षेत्रमें आनेके कारण दूसरा नाम हनुमान भी रक्खा। इस प्रकार हनुमानका जन्म हुआ।

(१३) इधर हनुमानके पिता पवनंजयने वरुणको जीता और उसे रावणकी शरणमें लाये। इस पर युद्ध समाप्त होने पर जब पवनञ्जय घर पर आये तब मातापितादिका अभिवादन किया। मित्रको अञ्जनाके महलोंमें भेजा। परन्तु वहां जब उसे न देखा तब इधर उधर तलाश कर दोनों मित्र राजा महेन्द्रके यहां गये। वहां भी जब न पाई तब वनमें गये। और हाथी व वस्त्राभूषणका त्याग कर वियोगी योगीका रूप धारण किया। और अपना समाचार मित्रके द्वारा पिताके पास भेजा।

(१४) पिता, श्वसुर, मामा आदि कुटुम्बी पवनञ्जयके पास आये। माता पिताने समझाया पर पवनंजय न माने। तब मामा प्रतिसूर्यने जब अञ्जनाके समाचार कहे तब उनका चित्त शान्त हुआ। और सहकुटुम्ब हनुरूह द्वीप गये। वहांसे अन्य सब चले आये। पवनञ्जय, हनुमान, अञ्जना वहीं रहे।

(१५) इधर वरुणने फिर रावणके विरुद्ध शिर उठाया। अतः रावणने अपने आधीनस्थ राजाओंका स्मरण फिर किया। तब प्रतिसूर्य और पवनञ्जय, हनुमानको राज्य दे युद्धमें जानेको तैयार हुए। परन्तु हनुमानने वैसा न करने दिया और स्वयं युद्धमें गया। रावणने इसका बहुत सत्कार किया। युद्धमें अद्भुत वीरता दिखाई। शत्रुके पुत्रोंको बन्दी किया। युद्ध समाप्त होनेके बाद रावणने अपनी बहिन चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमाके साथ हनुमानका विवाह किया। और कर्णकुण्डलपुरका राज्य दिया।

(१६) किहकंपुरके राजा नलकी पुत्री हरमालतीके साथ भी हनुमानका विवाह हुआ। यहां एक हजार स्त्रियोंके साथ

हनुमानने विवाह किया। यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि पूर्वकालमें कन्याओंका विवाह पूर्ण युवावस्थामें हुआ करता था। वर्तमान कालके समान अबोध बालिकाएं नहीं ब्याही जाती थीं। जहां २ विवाहका प्रसङ्ग आया है पुराणकारोंने कन्याओंके यौवनकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। साथमें पहिलेकी कन्याएं प्रायः अपने पतिको स्वयं चुनतीं थीं। इसके लिये यातो स्वयंवर किया जाता था या चित्रका उपयोग होता था। राजा सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागाको जब कई राज–कुमारोंके चित्र दिखलाये गये तब वह हनुमानके चित्रको देख कर उनके साथ विवाह करनेको स्वीकृत हुई। इसी तरह पद्मरागाका चित्र हनुमानने देख कर विवाह करना स्वीकार किया।

(१७) इन्द्रके साथ युद्धमें भी हनुमान रावणके साथ थे।

(१८) जब दिग्विजय कर रावण लौट रहा था तब हनुमानने अनंतवीर्य श्रुत केवलीके पाससे श्रावकके व्रत लिये।

(नोट) हनुमानका इससे आगेका वर्णन प्रसंगानुसार दिया जायगा।

पाठ २६.

रामचन्द्र-लक्ष्मण।

(आठवें बलदेव और नारायण) तथा उनके साथी अन्य प्रसिद्ध पुरुष:—

(१) महाराज दशरथ राजा अरण्यके पुत्र थे। जब राजा अरण्यने पुत्र अनंतवीर्यके साथ दीक्षा ली तब राज्य–भार दशर-

श्रको दिया। दशरथने दर्भस्थलके राजा कौशलकी पुत्री कौशल्या और कमलशंकुल नगरके राजा सुबंधुकी पुत्री सुमित्रा और महाराज नामक राजाकी पुत्री सुप्रभासे विवाह किया।

(२) दशरथ बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने अपनी माताके बनवाये मंदिरोंका जीर्णोद्धार कराया। दशरथको सम्यग्दर्शन हो गया था। दशरथने नवीन मंदिर भी बहुतसे बनवाये थे।

(३) एक दिन नारदने आकर दशरथसे कहा कि रावणसे किसी निमित्तज्ञानीने कहा है कि दशरथ और जनककी संतानके द्वारा रावणका मरण होगा। इस पर विभीषणने आप दोनोंको (दशरथ और जनकको) मारनेका प्रण किया है। इस पर इन दोनों राजाओंको नारदने राज्यसे निकल जानेकी सलाह दी और मंत्रियोंने अपने २ राजाओंके पुतले इस प्रकारके बनवाये जो इन्हींके रूप-रंगके थे। तथा उनमें शारीरिक कोमलता थी. और कृत्रिम रक्त भी था। उन पुतलोंको महलोंमें रख कर यह प्रसिद्ध कर दिया कि महाराज बीमार हैं। रावणके दूत राजाओंकी बीमारीका वृत्तांत ले कर विभिषणके पास आये। विभीषणने आकर दोनों पुतलोंका सिर काट समुद्रमें डाला। और रावणके मारे जानेके भयसे निश्चिन्त हो गया। परन्तु पीछे इस घोर पापका विचार कर पश्चात्ताप किया और आगेसे ऐसा कुकर्म न करनेकी प्रतिज्ञा की।

(४) दशरथ और जनक घूमते २ कौतुकमंगल नगर पहुंचे। वहांके राजा शुभमति और रानी पृथुश्रीकी पुत्री कैकयीका स्वयंवर हो रहा था। कैकयी बड़ी विदुषी कन्या थी। नाट्यशास्त्र, युद्धशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र, षड्दर्शन

और व्याकरणमें निपुण थी। ये दोनों राजा भी स्वयंवरमें एक ओर जाकर खड़े हो गये। कैकयीने लक्षणोंसे दशरथको किसी बड़े कुलका और प्रतापी समझ उनके गलेमें वरमाला डाली। इस पर अन्य कई उपस्थित राजकुमार बड़े अप्रसन्न हुए। और युद्ध करनेको तैयार हुए। इनमें हेमप्रभ मुख्य था। दशरथने युद्ध किया। कैकयीने उनके रथके सारथीपनेका कार्य किया। कैकयीने इस चतुरतासे सारथीका कार्य किया कि एक मात्र दशरथने हजारों योद्धाओंको जीता। कैकयीके इस कार्यसे प्रसन्न हो दशरथने उसे वर मांगनेके लिये कहा। कैकयीने कहा कि आवश्यकता पड़नेपर इस वरका उपयोग करूंगी। दशरथने स्वीकार किया।

(५) रावणद्वारा आई हुई विपत्ति दूर होजानेपर दशरथ राज्यमें आ गये। यहाँ रामचन्द्रका जन्म कौशल्याके गर्भसे हुआ। गर्भके समय कौशल्याको चार स्वप्न आये। पहिले स्वप्नमें ऐरावत हाथी देखा। दूसरे स्वप्नमें केशरीसिंह, तीसरे और चौथेमें क्रमशः सूर्य और पूर्ण चन्द्र देखे। इन स्वप्नोंके फलके लिये रानी पतिके पास गई। पतिने कहा कि इन स्वप्नोंपरसे विदित होता है कि तुम्हारी कुक्षिसे मोक्षगामी, परमबलवान् पुत्र उत्पन्न होगा। रामचन्द्रके जन्म समय बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया।

(६) सुमित्राके गर्भसे लक्ष्मण उत्पन्न हुए। इनके गर्भमें आते समय सुमित्राने भी उत्कृष्ट स्वप्न देखे थे। जिस दिन दशरथके घर लक्ष्मणका जन्म हुआ उसी दिन रावणके घर अशुभ

घटनाएँ हुईं।

(७) फिर कैकयीसे भरत और सुप्रभासे शत्रुघ्न उत्पन्न हुए।

(८) जब ये चारों पुत्र बड़े हुए तब इन्हें पढनेके लिये गुरुको सौंपा। इनका—बाणविद्याका गुरु आरिनामक एक ब्राह्मण था।

पाठ २७.

सीताके पूर्वज, सीताका जन्म और रामलक्ष्मणादिका विवाह।

(१) भगवान् मुनिसुव्रतनाथके पुत्र राजासुव्रतने बहुत समय तक राज्य किया। फिर अपने पुत्र दत्तको राज्य दे कर दीक्षा ली और मोक्ष गये।

(२) दत्तका पुत्र एलावर्धन, एलावर्धनका श्रीवर्धन, श्रीवर्धनके श्रीवृक्ष, श्रीवृक्षके सञ्जयन्त, सञ्जयन्तके कुणिमा, कुणिमाके महारथ, महारथके पुलोमई आदि अनेक राजाओंके पश्चात् महाराज वासवकेतु हुए। ये मिथिला नगरीके राजा थे। इनकी राणीका नाम विपुला था। इनसे महाराजा जनक उत्पन्न हुए।

(३) महाराज जनककी राणीका नाम विदेहा था। इनसे पूत्र और पुत्रीका एक साथ जन्म हुआ। परन्तु पुत्रको उसके पूर्व जन्मका वेरी एक देव आकर ले गया। पहिले तो वह द्वेषसे मारनेके अभिप्रायसे ले गया था परन्तु पीछे इस कार्यको बुरा समझ अपने पाससे आभूषण पहिनाकर नवजात बालकको पृथ्वी

पर रख गया। पुत्रहरणसे विदेहको बहुत कष्ट हुआ। जनकने दशरथकी सहायतासे बालकको बहुत ढूंढाया परन्तु नहीं मिला। जनक बहुत छोटे राजा थे। सम्भव है कि वे केवल मिथिला नगरीके ही राजा हों। क्योंकि उन्हें छोटी २ बातोंमें महाराज दशरथकी सहायता लेनी पडती थी।

(४) पुत्रीका नाम सीता रक्खा गया। उसे देवद्वारा छोड़े हुए बालकको रथनूपुरका राजा चंद्रगति नामक विद्याधर ले गया और उसे पुत्रके समान रक्खा। नगरमें यह घोषणा की कि रानीको गुप्त गर्भ था, उससे पुत्र उत्पन्न हुआ है। और बहुत उत्सव मनाया।

(५) सीता परम सुंदरी थी। जब सीता युवा अवस्थामें आई तब जनकने रामचन्द्रके साथ इनका विवाह करना चाहा। क्योंकि महाराज जनक रामचन्द्रके गुणोंपर उस समयसे बहुत मोहित हो गये थे जब अर्द्ध बर्बरदेशके म्लेच्छोंने आर्यावर्त पर आक्रमण किया था। म्लेच्छ बढ़ते २ जब जनककी राज्य सीमापर आये तब जनक और उनके भ्राता कनकने युद्ध किया और महाराज दशरथसे भी सहायता मागी। दशरथने अपने पुत्र राम, लक्ष्मणको सेना सहित भेजा। जिस समय जनक और कनक म्लेच्छोंसे युद्ध करते २ म्लेच्छोंके प्रबल आक्रमणके कारण पीछे हट रहे थे, उसी समय उन्हें रामकी सहायता मिली। रामचन्द्रने घनघोर युद्ध किया और उन म्लेच्छोंका नाश किया। उनके भागते समय म्लेच्छ सेनामें केवल दश सवार ही शेष रह गये थे। म्लेच्छ महा दुष्ट थे, मांस भक्षी और बड़े अत्याचारी थे, उनका

रङ्ग काला और ताम्र वर्ण था। दांत कोढ़ीके समान थे। गेरू आदिके रङ्गसे शरीर रङ्गते थे। छाल पहिनते थे। वृक्षोंके पत्तोंका छत्र उनपर फिरता था। जब इन भयानक पुरुषोंसे रामचंद्रने जनककी रक्षा की तब जनकने रामके गुणोंपर मुग्ध हो सीताका उनके साथ विवाह करना चाहा।

(६) नारदने जब सुना जनक कि सीताका रामके साथ विवाह करना चाहता है। तब नारद सीताको देखने गये। सीता उस समय अपने निवास-गृहमें काचमें मुह देख रही थी। नारद सीताके पीछेसे आये। काचमें जटाधारी, अपरिचित साधुवेशधारी पुरुषका प्रतिबिम्ब देख सीता डरकर वहांसे भागी। नारद भी महलोंमें सीताके पीछे जाने लगे। परन्तु द्वारपालोंने रोका और पकड़नेको तैयार हुए। नारद आकाश मार्गमें चले गये।

(७) अब नारदको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे सीतासे ईर्षा करने लगे। उन्होंने सीताका एक चित्रपट तैयार किया। और उसे भामण्डल (जो कि सीताका भाई था जिसे देव लेजाकर पृथ्वी पर छोड़ गया था और चन्द्रगति विद्याधरने अपना पुत्र माना था) को दिखलाया। यद्यपि भामण्डल उसका भाई था। परन्तु उसे यह विदित नहीं था। वह अपनेको चन्द्रगति विद्याधरका पुत्र मानता था। भामण्डल सीता पर आशक्त हुआ। जब यह समाचार चन्द्रगतिको विदित हुए तो उन्होंने चपलवेग विद्याधरको जनकके लानेको भेजा। उस विद्याधरने घोड़ेका रूप धारण कर अपने ऊपर जनकको बिठला चन्द्रगतिके पास आका-

शमार्गसे उड़ा लाया। चन्द्रगतिने अपने पुत्रके लिए सीताको मागा। जनकने कहा कि मैने रामचन्द्रको देना स्वीकार किया है। इस पर बहुत वादविवाद हुआ। अतमें यह निश्चय हुआ कि विद्याधरोंके पास जो वज्रावर्त और सागरावर्त नामक धनुष है उनमेंसे जो वज्रावर्त धनुषको चढ़ेगा वही सीताका पति होगा। दोनों धनुष जनकके यहा पहुँचाये गये।

(८) जनकने स्वयंवर किया। इक्ष्वाकुवंशी, नागवंशी, सोमवंशी, उग्रवंशी, हरिवंशी, कुरवंशी, राजागण उपस्थित हुए। जनकने क्रमशः वज्रावर्तके पास राजाओंको भेजा परन्तु उन धनुषोंकी विकरालता देख सब भयभीत होकर वापिस आ जाते थे। धनुषमेंसे बिजलीके समान चारों ओरसे अग्निकी ज्वाला निकलती थी, माया रचित सर्प फुंकार करते थे। जब किसी राजाका साहस नही हुआ तब रामचंद्रने उस धनुषको चढाया। रामचंद्रके देखते ही वह धनुष शान्त हो गया था। उसको चढ़ाते समय बड़ा भयानक शब्द हुआ था। अब सीताने रामके गलेमें वरमाला डाली।

(९) लक्ष्मणने सागरावर्त धनुष चढाया। लक्ष्मणके कृत्य पर मोहित हो विद्याधरोने अपनी १८ कन्याओंके साथ लक्ष्मणका विवाह किया।

(१०) रामका प्रताप और बल देख भरत मन ही मन विचारने लगे कि हम एक माता–पिताके पुत्र और एक कुलके होते हुए भी इनके समान बल और प्रताप मुझमें नहीं है। सीता अद्भुत सुंदरी और परमपुण्यात्मा है। भरतकी मुखमुद्रासे

सीताने भरतका अभिप्राय जान रामसे कहा कि नाथ ! भरत मन ही मन उदास हो रहा है। कहीं विरक्त न हो जाय। अतएव मेरे काका कनककी पुत्रीका स्वयंवर करके उसके द्वारा इनके गलेमें वरमाला डलवा देना उचित है। सीताका कथन सबने स्वीकार किया। तदनुसार कनकने अपनी पुत्री लोकसुंदरीका स्वयंवर किया। लोकसुंदरीने भरतके गलेमें वरमाला डाली। फिर सीता और लोकसुंदरीका क्रमश राम और भरतके साथ विवाह हुआ।

(११) जब इनके विवाह समाचार भटमंडलने सुने तब वह सीताको हरनेके लिये तत्पर हुआ। माता पिताने बहुत समझाया पर न माना और मंत्रीगण सहित अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हो सीताको हरनेके लिये चला। जब वह उस स्थान पर आया जहां देव इसे जन्मते ही उठा कर रख गया था। भटमंडलको जाति स्मरण हुआ। उसने अपने पूर्वभव तथा वर्तमान भवके वृत्तांत जान लिये। जातिस्मरण होते ही भटमंडल मूर्छित हो गया। मंत्रीगण चंद्रगतिके पास ले आये। जब भटमंडल मूर्छा-रहित हुआ तब उसने अपना सब वृत्तात पितासे कहा और भगिनी सीताके साथ विवाह करनेकी अपनी इच्छाकी निंदा करने लगा। चंद्रगतिने संसारकी पापमय तथा भ्रमपूर्ण दशा देख तप करनेका निश्चय किया। और सर्वमूर्ति आचार्यके पास दीक्षा लेने आया। उस समय सर्वमूर्ति मुनि चातुर्मासके कारण अयोध्याके समीपवाले महेन्द्रोदय नामक वनमें आये हुए थे। चंद्रगति भी वहां आया। वहीं उसने दीक्षा ग्रहण की तथा भटमंडलको राज्य दिया और कहा कि तुम्हारे पुर्व माता-पिता तुम्हारे लिये दुःखी होंगे; तुम

उनसे मिलो। दशरथ भी चंद्रगतिके दीक्षाग्रहण उत्सवमें शामिल हुए। रामचंद्र, लक्ष्मण, सीता आदि भी आये। महाराजा जनक भी आये। वहीं भटमंडलका सबसे परिचय हुआ। भटमंडलने पिता जनकसे अपने नगरको चलनेके लिये कहा। जनकके भाई कनकको राज्य दिया और भटमडलके साथ गये। भटमंडल एक मास तक अयोध्या रहे थे।

पाठ २८.

महाराज दशरथका वैराग्य, राम लक्ष्मणका वनवास।

(१) कुछ दिनों बाद राजा दशरथ फिर आचार्य सर्वभूतिके पास वन्दनार्थ गये। वहा अपने पूर्वभव तथा धर्मोपदेश सुन चित्तमे वैराग्य उत्पन्न हुआ। घर आकर मन्त्री, सामन्त तथा कुटुम्बियोंका दरबार कर उसमे वैराग्य ग्रहण करनेकी इच्छा प्रगट की। कुछ लोगोंने मना किया परन्तु नहीं माना। पिताकी इच्छा देख भरतने भी वैराग्य धारणकी कामना की। कैकयीने जब पति पुत्रको वैराग्य लेने देखा तब पुत्रको वैराग्यमे परांगमुख करनेके लिये राजसभामें आई और आधे सिंहासन पर बैठी। राजा दशरथको वैराग्य न लेनेके लिये समझाया। जब उन्होंने नहीं माना तब अपना वर चाहा। राजाने कहा कि "मांगो, तुम्हें क्या चाहिये?" तब रानीने कहा कि राज्य मेरे पुत्रको दो। दशरथने स्वीकार किया। और रामचन्द्रको बुलाकर कहा कि "बेटा! मैंने तेरी कैकयी माताके कार्यसे प्रसन्न हो एक

बार कहा था कि जो चाहो सो मांगो तब कैकयीने कहा था कि अभी मुझे आवश्यकता नहीं है, आप अपना बचन रक्खें, जब आवश्यकता होगी तब मांगूंगी। सो आज जब उसने मुझे और अपने पुत्र भरतको वैराग्य लेते देखा तब मोहसे विह्वल हो पुत्रको वैराग्यसे पराङ्‌मुख होनेके लिये मुझसे वर मांगा है, कि मैं भरतको राज्य दूं। यद्यपि नीति और न्यायके अनुसार तुम्हें राज्य देना चाहिये परन्तु अपने बचनकी रक्षा तथा कैकयीकी रक्षाके लिये मुझे ऐसा करना पडता है। अगर न करूं तो कैकयी प्राण त्याग करेगी। तुम सुपुत्र हो, आशा है कि स्वीकार करोगे।" रामचन्द्रने उत्तर दिया—"पूज्यवर! पुत्रका धर्म यही है कि पिताके पावित्र्यकी रक्षा करे। हमारे होते यदि आपके बचन भंग हुए तो हमारा होना न होना समान है। आप मेरी चिन्ताको छोडो, मैं अब कहीं अन्यत्र जाकर रहूंगा। ऐसा कह पिताके चरणोंमें नमस्कार कर अन्यत्र जानेको तत्पर हुए।

(२) रामको जाते देख दशरथको मूर्छा आगई। फिर माताके पास गये। माताने भी बहुत रोका, साथ चलनेका हठ किया, परन्तु सबको समझाकर जानेको उद्यत हुए। पतिको जाते देख सीता भी उद्यत हुई। उसने भी सासु-श्वसुरसे विदा मांगी। इस घटनासे लक्ष्मणको क्रोध उत्पन्न हुआ। और मन ही मन पिताकी निन्दा करने लगे। परन्तु फिर यह विचार कर कि मुझे इन विचारोंसे क्या? पिताजी दीक्षा लेनेको उद्यत हुए हैं ऐसे समयमें मुझे ऐसे विचार करना अनुचित है। अतएव शान्त हुए और

रामचन्द्रके साथ जानेको उद्यत हुए। जब ये दोनों भाई सीताके सहित चले, तब मातापिता, भाई इनके साथ२ जाने लगे। रामने मातापिताको बहुत कुछ समझा कर धैर्य बंधाया और लौटा दिया। नगरके लोग हाहाकार करने लगे। रामचन्द्रके जानेसे सर्व जन दुःखी हुए। सामन्त, मन्त्री आदि बड़ा पश्चाताप करने लगे। सामन्तोंने भेंटे दीं परन्तु रामने कुछ भी स्वीकार नहीं किया। राम लौटाने की चेष्टा करते पर कोई नहीं मानता। अन्तमें नगरके बाहर आकर अर्हनाथ स्वामीके मंदिरमें दर्शनार्थ गये और वहीं रात्रिभर ठहरना निश्चित किया। रात्रिको फिर माता यहां पर आई। अन्तमें सबकों सोते हुए छोड अर्द्धरात्रिके समय तीनो जनें उठकर चल दिये।

(३) परन्तु कुछ लोगोंकी उस समय भी निद्रा खुल गई और वे रामचद्रके पीछे हो लिये। उन्हें रामचंद्रने बहुत समझाया। कुछ तो मान कर लौट आये, कई साथ ही में रहे। जब परिबात्रा नामक वनमें पहुंचे तब फिर साथियोंको समझाया उस समय भी कुछ अपने २ स्थानोंको लौट गये और कई फिर भी साथमें रह गये। इस वनमें एक महाभयङ्कर अथाह नदी थी। उसके आसपास भीलादि जंगली मनुष्य रहा करते थे। जब इस नदीके तीरपर रामचंद्रादि पहुंचे तब उनके साथी नदीको देखकर बड़े चिन्तित हुए। और रामसे प्रार्थना करने लगे कि आप हमें पार लगाओ। परन्तु रामने उनकी एक भी नहीं सुनी। राम लक्ष्मण, सीता तीनों नदी पार करने लगे। पुण्यके प्रतापसे नदीका जल कमक २ रह गया। यह देख इस तटपर खड़े हुए

साथी सब आश्चर्य करने लगे और लौटने लगे। विदग्ध—विनय, मेरुक्रूर, श्रीनागदमन, धीर, शत्रुदमन आदि राजाओंने दीक्षा ली। कईएकोंने श्रावकोंके व्रत लिये।

(४) रामके वन चले जानेके पश्चात् दशरथने सर्वभूति मुनिके पाससे दीक्षा धारण की और तप करने लगे। परन्तु इन्हें कभी २ पुत्रोंका स्मरण हो आया करता था। अन्तमें संसार भावनाका बार २ चितवन करनेसे दशरथका मोह छूटा।

(५) इधर रामचन्द्रकी माता कौशल्या और लक्ष्मणकी माता सुमित्रा पुत्र शोकसे विह्वल रहने लगीं। जब कैकयीने अपनी इन सपत्नियोंकी यह दशा देखी तब उसे करुणा उत्पन्न हुई। उसने पुत्र भरतसे कहा कि बेटा, यद्यपि तुम्हारी बड़े २ राजा सेवा करते हैं परतु राम, लक्ष्मणके विना राज्यकी शोभा नहीं है, वे परम गुणवान और पतापी है, उन्हे शीघ्र जाकर लाओ। मै भी उन्हें लौटा लानेके लिये तुम्हारे पीछे आती हूं। भरत इस आज्ञासे परम सतुष्ट हुए। और रामको लौटा लानेके लिये १००० सवारों तथा कई राजाओं सहित रामके पास गये। छ दिनोंमें रामचन्द्रके पास पहुंचे। कैकयी भी पहुंच गई: बहुत कुछ कहा परन्तु राम नहीं लौटे। प्रत्युत भरतका अपने हाथोंसे वनमें राज्याभिषेक भी कर दिया। भरत आदि लौट आये। भरतने घर आकर द्युतिभट्टारककी साक्षीसे प्रतिज्ञा ली कि अवकी बार रामचन्द्रका मिलन होते ही मैं दीक्षा धारण करूंगा। तथा श्रावकके व्रत लिये। भरत धर्मात्मा थे।

संसारकी ओर बाल्यवस्थासे ही उनकी रुचि कम थी। वे दिनमें तीनवार जिनेन्द्रका दर्शनपूजन करते थे व दान देते थे।

(६) राम चलते २ तापसियोंके आश्रममें पहुंचे। तापसियोंके आश्रममें स्त्रियां भी रहा करती थी। उन लोगोंने रामका बहुत आतिथ्य सत्कार किया। वहांसे रामचन्द्र मालवदेशमें आये। इस समय घर छोडे ४॥ मासके अनुमान हो गया था। मालवदेश की सगला सफला मूर्तिको देखकर इन्हें परम सन्तोष हुआ। परन्तु इस देशकी सीमामे कुछ दूर तक आजाने पर भी जब इन्हें बस्ती नहीं मिली तब इन्हें कुछ सन्देह हुआ कि इस परमानन्द दायिनी भूमिमें मनुष्यो की बस्ती क्यों नहीं? आखिर एक वृक्षके नीचे बैठकर लक्ष्मणको आज्ञा दी कि वृक्षपरसे चढकर देखो कि कहीं आसपास बस्ती है या नही। लक्ष्मणने देखकर कहा कि नाथ! समीपमें नगर तो बहुत विशाल दिख रहा है, परन्तु है उजाड। मनुष्य एक भी नही दिखाई देता। केवल एक दरिद्री पुरुष शीघ्रतासे इधर आ रहा है। रामने लक्ष्मणके द्वारा उस दरिद्रीको बुलवाकर पूछा कि नगर उजाड क्यों है। उसने कहा कि उज्जनीके राजा सिंहोदरका सामन्त वज्रकर्ण यहां रहता है। इस नगरका नाम दशांगपुर है। राजा वज्रकर्ण बहुत दुराचारी था। परन्तु एक दिन जैन साधुके उपदेशसे इसने दुराचारोंको छोड़ प्रतिज्ञा की कि में सिवाय जिनेन्द्रके अन्यको नमस्कार न करूंगा। परन्तु अपने स्वामी सिंहोदरके भयसे उसने यह चाल चली कि अंगूठीमें एक जिन प्रतिमाको नमस्कार करता था। किसीने यह रहस्य सिंहोदरसे कह दिया। सिंहोदरने वज्रकर्णको बुलाया। परन्तु

मार्गमें ही वज्रकर्णको सिंहोदरके कोपका कारण मालूम हो जानेसे वह अपने नगरको लौट आया। और अपनी रक्षाका प्रबन्ध कर रहने लगा। सिंहोदरने आकर नगर घेर लिया है। इसलिये यह नगर उजाड़ दीख रहा है। इस उजडे हुए नगरसे बर्तन आदि इधर-उधर पड़ी हुई वस्तुएँ मैं उठाने जा रहा हूँ। रामचन्द्रने उस दरिद्रीको रत्नोंका हार दिया। और आप उस नगरमें पहुंचे। नगरके बाहर चन्द्रप्रभुके मंदिरमें ठहर लक्ष्मणको भोजनसामग्री लेने भेजा। नगरके बाहर सिंहोदरका कटक था। इनसे सिंहोदरके द्वारपाल आदि बुरी तरह पेश आये। उन्हें नीच समझ लक्ष्मण नगरकी ओर जाने लगे। द्वार बंद था। वज्रकर्णके सामन्त द्वारपर खड़े थे और स्वयं वज्रकर्ण द्वारके ऊपर बैठा हुआ था। द्वार रक्षकोंने लक्ष्मणसे पूछताछ की। इनका सुन्दर रूप और आकृति देखकर वज्रकर्णने सादर इन्हें बुलाया और सब समाचार पूछकर भोजनकी प्रार्थना की इन्होंने कहा कि हमारे बडे भ्राता अभी चन्द्रप्रभु स्वामीके मंदिरमें ठहरे हैं उनके बिना हम भोजन नहीं कर सकते। तब वज्रकर्णने भोजनकी सब सामग्री बनाकर सेवकोंके साथ भेजी। रामचंद्र, लक्ष्मण, और सीताने भोजन किया। भोजनके पश्चात् रामचंद्रने लक्ष्मणसे कहा कि वज्रकर्ण सज्जन और धर्मात्मा है। उसकी रक्षा करना अपना धर्म है। अतः तुम जाकर सिंहोदरसे युद्ध करो। लक्ष्मण, रामचन्द्रकी आज्ञानुसार सिंहोदरके पास भरतके दूत बनकर गये। और कहा कि—"भरत महाराजने कहा है कि तुम वज्रकर्णसे विरोध मत रक्खो।" सिंहोदरने उत्तर दिया कि भरतको इसमें हस्तक्षेप करनेकी क्या

आवश्यकता है ? वह हमारा सेवक है। उसके अपराध पर दण्ड देना हमारा काम है। भरतको इसके बीचमें पड़ना अनुचित है। लक्ष्मणने कहा कि वज्रकर्ण सज्जन और धर्मात्मा है। तुम्हे उससे प्रीति कर लेना उचित है। अन्यथा तुम्हारा भला नहीं। इस प्रकार कुछ देर तक कहा सुनी होनेके पश्चात् सिंहोदरकी आज्ञानुसार उसके सामंत लक्ष्मणसे युद्ध करने लगे। लक्ष्मणने सबको परास्त किया। फिर सिंहोदर स्वयं युद्ध करने आया। उससे भी लक्ष्मणने युद्ध किया और उसे बाँध लिया। सिंहोदरके बधते ही उसकी सेना तितर-बितर हो गई। रानीने आकर लक्ष्मणसे अपने पति सिंहोदरकी भिक्षा मागी। लक्ष्मण सबको रामके पास लाये। सिंहोदर रामसे प्रार्थना करने लगा कि कृपया मुझे छोड दो और आप जैसा उचित समझो, मेरे राज्यकी व्यवस्था कर दो। रामचन्द्रने बज्रकर्णको बुलाया। वज्रकर्णने आकर सिंहोदरको छोड़नेकी रामसे प्रार्थना की। रामने दोनोंमे मित्रता करवाकर तथा सिंहोदरका आधा राज्य वज्रकर्णको दिलवाकर सिंहोदरको छोड़ दिया। वज्रकर्णने विद्युदङ्गको सेनापति बनाया।

(७) वज्रकर्णने अपनी आठ कन्याओंका लक्ष्मणके साथ वाग्दान किया तथा सिंहोदर आदि राजाओंने भी अपनी ३०० कन्याओंका वाग्दान किया। लक्ष्मणने इन कन्याओंके साथ विवाह नहीं किया यही उत्तर दिया कि हमारा स्थान निश्चित हो जाने पर हम विवाह करेंगे। रामचन्द्र जहाँ जाते वहाँ ही ऐसे मिल जाते कि वहाँके निवासी आपको अन्यत्र नहीं जाने देते थे। दशाङ्ग नग-

रमें भी ऐसा ही हुआ। तब लाचार होकर एक दिन आधी रातके समय आप इस नगरसे चल दिये। और नलकूबर नगर पहुँचे।

(८) वहांके नरेश बाल्यखिल्ल की पुत्री कल्याणमाला पुरुष वेषसे राज्य कर रही थी। जब उस नगरकी एक सरोवरी पर लक्ष्मण पानी लेने गये तब कल्याणमाला भी घूमते घूमते उधर आ निकली। वह इन पर आसक्त हो गई। लक्ष्मणको बुला कर सब वृत्तान्त पूछा और कहा कि यहीं रहो। जब उन्होंने कहा कि मेरे साथ मेरे भ्राता और भावी भी हैं तब कल्याणमालाने उन्हें भी बुलाया और और खूब आदरसत्कार किया। भोजनके पश्चात् कल्याणमालाने जब अपना स्त्री वेष धारण किया तब रामने कारण पूछा कि तुमने पुरुष वेष क्यों ले रक्खा है? कल्याणमालाने कहा कि यह राज्य सिंहोदरके आधीन है। उससे यह सन्धि है कि मेरे पिताके यहां पुत्र होगा तो उसे राज्य मिलेगा अन्यथा पिताके पश्चात् राज्य सिंहोदर लेलेगा। जब मेरा जन्म हुआ तब पिताने पुत्र उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धी की। इसलिये मैं पुरुष वेषमें हू। मेरे पिताको म्लेच्छ लोग पकड लेगये है। इस समय राज्यकार्य मैं ही चला रही हू। पिताके वियोगसे माता बहुत दुखी हैं। यदि आप हमारी सहायता करें तो बडी कृपा होगी। यह कहते २ कल्याणमाला दुःखके आवेशसे मूर्छित हो गई। सीताने उसे गोदीमें लेकर शीतोपचार किया। मूर्छा दूर होने पर राम, लक्ष्मणने धैर्य बंधाया। तीन दिनों तक वहां रहे।

फिर गुप्त रीतिसे—क्योंकि कल्याणमाला उन्हें आने नहीं देती थी—चल दिये।

(९) मेकला नदीको पार कर विन्ध्याटवीमें पहुंचे। वहां म्लेच्छोंसे युद्ध कर उन्हें परास्त किया। म्लेच्छोंका अधिपति रामके पास आकर अपनी कथा कहने लगा। रामने बाल्याखिल्लको छोड़नेकी आज्ञा दी और कहा कि तुम बाल्याखिल्लके मन्त्री होकर उसका राज्यकार्य सँभालो तथा इस पाप कर्मसे विरत हो। उसने बाल्याखिल्लको छोड दिया। और आप मन्त्री होकर रहने लगा। इसका नाम रौद्रभूत था। इसके मन्त्री हो जानेसे म्लेच्छों पर भी बाल्याखिल्लकी आज्ञा चलने लगी। यह देख सिंहोदर बाल्याखिल्लसे अब डर कर चलने लगा। जब बाल्याखिल्ल अपने राज्य मे पहुचा तब कल्याणमालाने बहुत उत्सव मनाया।

(१०) इस प्रकार एक कन्या और राज्यका उद्धार कर रामचद्र आगे चले। और एक ऐसे मनोज्ञ देशमें पहुचे जिसके मध्यमें तापी नदी बहती थी। इस देशके एक निर्जन वनमें सीताको बहुत जोरसे तृषा लगी। वहाँ जल नहीं था। तब धैर्य बँधाते हुए सीताको अरुण नामक ग्राममें लाये। यहा कृषक-वर्ग रहता था। ब्राह्मण भी रहते थे। एक ब्राह्मणकी अग्निहोत्रशालामें ये तीनों ठहर गये। ब्राह्मणीने इनकी बहुत कुछ सेवा की और जल पिलाया। जब वह ब्राह्मण आया और इन्हें अग्निहोत्रशालामें ठहरे देखा तब इनसे और ब्राह्मणीसे लड़ने लगा। लक्ष्मणको बड़ा क्रोध आया! उसने ब्राह्मणको उठा कर घुमाया

और औंधा कर दिया। रामचन्द्रने कहा कि जिन शासनकी आज्ञानुसार ब्राह्मण जैन साधु आदिको कष्ट देना अनुचित है तब ब्राह्मणको लक्ष्मणने छोड़ा।

(११) फिर आप तीनों वहासे चल दिये। रास्तेमें वर्षा होने लगी। तब आप एक वट वृक्षके नीचे ठहर गये। उस वृक्षके रक्षक यक्षने अपने स्वामीसे कहा कि कोई परम प्रतापी पुरुष वृक्षके नीचे आये हुए हैं। उसने आकर देखा और इन्हें बलभद्र नारायण जानकर इनके लिये विद्याबलसे सुन्दर मायामयी नगरकी रचना की। इस यक्षका नाम नृतन था।

(१२) रामचन्द्रके कारण इस नगरका नाम रामपुर प्रसिद्ध हुआ। उस अग्निहोत्री ब्राह्मणने जिसने अपनी शालासे इन्हें निकाला था, आकर जङ्गलमें नगर देखा तब उसे आश्चर्य हुआ। उसने सब हाल पूछा। एक स्त्रीने उत्तर दिया कि महा प्रतापी रामचद्रके कारण यह सब हुआ है। वे बडे दानी हैं। और श्रावकोंको बहुत दान देते हैं। तब उसने अपनी स्त्रीके सहित चारित्र शूर नामक मुनिके पास श्रावकके व्रत लिये और फिर अपने पुत्रको कंधे पर बिठला रामके पास आया। मंदिरोंके दर्शन कर जब रामके महिलोंमें गया तब लक्ष्मणको देखते ही भागा। राम, लक्ष्मणने बुला कर उसे धैर्य बंधाया और खूब दान दिया। सज्जन पुरुष अपने शत्रु पर भी उपकार विना किये नहीं रहते, यही रामचंद्रकी इस कथासे शिक्षा मिलती है। अस्तु, कुछ दिनों तक इस नगरमें रह कर रामचंद्रादि आगे जानेको उद्यत हुए। तब

उस यक्षने रामचंद्रको हार, लक्ष्मणको मणिकुण्डल, और सीताको चूड़ामणि, भेंटमें दी।

(१३) वहांसे चल कर रामचंद्र विजयपुर नगरके समीप बालोद्यानमें ठहरे। यहाका राजा पृथ्वीधर था। रानीका नाम इन्द्राणी और पुत्रीका वनमाला था। वनमालाने लक्ष्मणके रूप, गुणकी प्रशंसा सुन रक्खी थी इसलिये वह मन हीं मन लक्ष्मण पर आसक्त थी। जब यह सुना गया कि दशरथने दीक्षा ली और लक्ष्मण वनको गये तब उसके पिताने इन्द्रनगरके युवराज बालमित्रको वनमाला देना चाही। परन्तु वनमाला इस सम्बन्धसे अप्रसन्न थी। और उसने प्रण कर लिया था कि मैं इस सम्बन्ध होनेके पहिले प्राण त्याग दूंगी। इसने उपवास करना शुरू कर दिया। एक दिन रात्रिको वन-क्रीडाकी आज्ञा माग वनमाला अपने सेवकों सहित वनमें पहुंची। जब उसके सेवक सो गये तब आप प्राण देनेकी इच्छासे अपने सेवकोंको छोड आगे गई। दैवयोगसे राम, लक्ष्मण यहां ठहरे हुए थे। लक्ष्मणने पत्र-पुष्पोंकी शय्या पर रामको सुला दिया था और आप जाग रहे थे। जब वनमालाको दूरसे जाते देखा तब यह समझा कि शायद इसे कोई कष्ट होगा जभी यह स्त्री अकेली वनमें आई है। आप भी पीछे २ गये। जब वनमाला कपड़ेसे फांसी लगा कर प्राण देनेको तैयार हुई तब उसने कहा कि हे वनके रक्षक देवो ' यदि लक्ष्मण घूमने घूमते यहां आवें तो कहना कि वनमालाने तुम्हारे वियोगसे यहां प्राण-त्याग किये है। इस जन्ममें तो संयोग नहीं हुआ परन्तु आगामीमें तुम्हारे संयोगकी उसकी उत्कट इच्छा है। लक्ष्मण छुपे

हुए यह सब देख सुन रहे थे। वनमालाका कथन समाप्त होते ही लक्ष्मण प्रगट हुए और उसे अपना परिचय दिया। वनमाला बड़ी प्रसन्न हुई। और दोनों रामके पास आये। इधर वनमालाके सेवक भी ढूँढते २ राम, लक्ष्मणके पास आ पहुँचे। वनमालाको यहां बैठी देख और रामादिका परिचय पा नगरमें गये। वहां अपने स्वामीसे सब वृत्तान्त कहा। उसने बड़ी प्रसन्नतासे रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताका नगर प्रवेश कराया।

(१४) यहा पर रामचंद्र, लक्ष्मणने सुना कि नन्द्यावर्तके राजा अतिवीर्यने भरतको लिखा है कि तुम मेरे आधीन होकर रहो। इस पर शत्रुघ्नने अतिवीर्यके दूतका बड़ा अपमान किया तथा रौद्रभुत (पृथ्वीधरका मन्त्री) के साथ अतिवीर्यकी सेनामें धाडा डाल कर उसके ७०० हाथी और कई हजार घोड़े लूट लाये। इस पर दोनोंका परस्पर युद्ध होनेवाला है। अतिवीर्यने पृथ्वीधरको सहायतार्थ बुलानेके लिये दूत भेजा था। दूतके द्वारा यह सब समाचार जान पृथ्वीधरके पुत्रको साथमें ले राम, लक्ष्मण और सीता नन्द्यावर्त गये। सीताने कहा कि रघुकुलका अपमान करनेवाले अतिवीर्यको अवश्य ही दण्ड देना उचित है। राम, लक्ष्मणने सीताको उनकी इच्छा पूरी होनेका आश्वासन दे विचार किया कि युद्ध करनेसे तो दोनों ओरकी सेना निरर्थक मारी जावेगी। अतएव दोनोंने नृत्यकारिणीका रूप धारण किया और अतिवीर्यकी सभामें पहुचे। इनके नृत्य और गायनसे अतिवीर्य व उसकी सभा जब मोहित हो गई तब लक्ष्मणने कहा कि अतिवीर्य! बलवान् भरतसे तू क्यों युद्ध करता है, देख, मारा जायगा!

इस प्रकार उसे क्रोध उत्पन्न करनेवाली जब बातें कहीं तब क्रोधित हो इन्हें मारनेको उद्यत हुआ। बस, चट लक्ष्मणने सिंहासन पर चढ़ अतिवीर्यको बाध लिया और उसके सभासदोंसे कहा कि यातो भरतकी आधीनता स्वीकार करो अन्यथा तुम्हारी भलाई नहीं। तब सब सभासदोंने भरतकी जय बोली। अतिवीर्यको बाध कर डेरे पर लाये। और भरतके आधीन रहनेका आदेश किया। परन्तु उसने ससारको असार जान दीक्षा धारण की। और अपने पुत्र विजयरथको राज दिया। राम, लक्ष्मणने विजयरथका अभिषेक किया। विजयरथने अपनी बहिन परम सुंदरी रत्नमालाका लक्ष्मणके साथ विवाह किया।। तथा भरतसे भी जाकर मिला। और उन्हें भी अपनी दूसरी बहिन विजयसुंदरी दी। इस प्रकार गुप्त रीतिसे राम, लक्ष्मणने भरतका कष्ट दूर किया। क्योंकि भरतसे अतिवीर्य बलवान राजा था। भरतको अपना उद्धार करनेवाली नृत्यकारिणियोंका रहस्य प्रगट नहीं होने पाया। वह इन्हे कोई देवी ही समझते रहे। इस प्रकार शांति हो जाने पर भरत गृहस्थावस्थाके अपने शत्रु अतिवीर्य मुनिकी वदनाको गये। और वदना कर अयोध्या लौट आये। रामचंद्र भी पृथ्वीधरके राज्यमें लौट आये। और वहा कुछ दिनों तक रहे। लक्ष्मणने वनमालाको अपने जानेके सम्बन्धमें समझा बुझा कर धैर्य बधाया। और फिर एक दिन छुपी रीतिसे तीनो उठ कर चले गये।

(१९) और दोमांजलि नगरके पास वनमें जाकर ठहरे। वहाँ लक्ष्मणने भोजन बनाया। दाखोंका रस तैयार किया। और

तीनोंने उसे खाया। लक्ष्मण रामचन्द्रकी आज्ञा लेकर नगर देखने गये। वहा सुना कि नगरके राजा शत्रुदमन अपनी पुत्रीका विवाह उसके साथ करेगा जो उसके हाथकी शक्तिकी चोटको झेल सकेगा। लक्ष्मण बड़े बलवान् थे। और ऐसी २ बातोंको कुछ नहीं समझते थे। वे कायर नहीं थे, जो आपत्तिके भयसे डर जाते। किन्तु लक्षमण वीर थे और वे स्वय आपत्तियोंको बुलाते थे। आपके इसी साहसका प्रताप था जो जाते थे आपत्तियोंके अग्निकुण्डमे, परन्तु वहां आपत्ति अग्निकुण्ड उनके लिये सरोवर हो जाता था जिसमेंसे सुखदायी रत्नोंको वे पाते थे। अपने इसी स्वभावके अनुसार आप राजसभामे जा पहुचे और राजासे कहने लगे कि शक्ति चलाओ। जितपद्मा भी वहीं बैठी थी। वह इन्हे देखकर मोहित हो गई और शक्ति लग जानेकी आशकासे इन्हे इशारेसे शक्तिकी चोट झेलनेके लिये मनाई करने लगी। इन्होने भी कहा कि भय मत करो। मेरा कुछ नही बिगड़ सकता। इनका आग्रह देख शत्रुदमनने पाच शक्तिया चलाई। इन्होंने दो शक्तियोंको दोनों हाथोंमें झेला दोको बगलोंमें और एकको दांतोंसे दबाया। इनकी बल-परीक्षा कर लेने पर शत्रुदमनने जितपद्माके विवाहके लिये कहा। परन्तु इन्होंने कहा कि मेरे ज्येष्ठ-भ्राता-जो कि समीप ही हे-की आज्ञाके विना मैं नहीं कर सकता। तब सब मिल कर रामचद्रके समीप आये और उनकी भक्ति करने लगे। यहा तक कि शत्रुदमन राजा तो उनके सामने नृत्य ही करने लगा। जितपद्माका विवाह हुआ। राम, लक्ष्मणादि कुछ दिनों तक यहां रहे। एक दिन लक्ष्मणने जितपद्माको

समझा बुझा दिया और तीनों गुप्त रीतिसे आगेको चल दिये।

(१६) और वहासे चल कर वंशस्थल नगर आये। इस नगरके पास एक वंशधर नामक पर्वत था। रात्रिके समय उस पर्वत पर घोर और भयानक शब्द हुआ करते थे। अतएव नगर-वासी नगर छोड कर चल दिया करते थे। जब ये नगरमें आये तब शाम होनेको थी। नगरवासी नगर छोड २ कर अन्यत्र जा रहे थे। रामने नगरवासियोंसे जानेका कारण पूछा। कारण जानने पर परम साहसी राम, लक्ष्मणने उसी पर्वत पर रात्रिको रहनेका विचार किया। सीताने भावी भयकी आशकासे रात्रिमे पर्वत पर रहनेकी मनाई की। परन्तु वीर भ्राताओंने नही माना और पर्वत पर गये। वहा युगल परम तपस्वी साधुओंके दर्शन प्राप्त हुए। पूजन, वदनके पश्चात् सीताने नृत्य किया। इन्हीं मुनियों पर एक दैत्य प्रतिदिन उपसर्ग किया करता था। उसीका पर्वत पर भया नक शब्द होता था। इन्होने अपने ही बलसे उस दैत्यके उपस-र्गको नष्ट किया। उपसर्ग दूर होते ही दोनों साधु-श्रेष्ठोंको कैवल्य-ज्ञान उत्पन्न हुआ। और समव-शरणकी रचना हुई।

(१७) समवशरणमें देशभूषण कुलभूषणका पिता जो मर-कर गरुडेन्द्र हुआ था, आया। उसने जब यह सुना कि मेरे पूर्व जन्मके पुत्रोंका उपसर्ग राम-लक्ष्मणने दूर किया है तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ और इनसे कहा कि आपकी जो इच्छा हो सो मांगो। इन्होंने उत्तर दिया कि हमें किसी बातकी इच्छा नही है। यदि आपका आग्रह ही है तो यदि हम पर कोई विपत्ति कभी आवे तो हमारी सहायता करना।

(१८) इस पर्वत पर रामचन्द्रने बहुतसे जिन मन्दिर बनवाये। फिर यहासे आगे चले। आपने दण्डक वनमें करनखा नदीको जानेका विचार किया। उस समय उस वनमें भूमिगोचरी नहीं जा पाते थे। परन्तु आपके साहसके आगे क्या कठिन था। इसी साहसके बल दक्षिण दिशाके समुद्रकी ओर जा कर वहासे दण्डक वनमे गये। और करनखा नदीके तट पर पहुचे। सुकुमारी सीताके कारण आप बहुत धीरे अर्थात् प्रतिदिन केवल एक कोश ही चला करते थे। वनमे पहुँच कर आपने भोजन सामग्रीके लिये मिट्टी और बासके बरतन बनाये और उनमें फलफलोंका आहार बनाया। वह मुनियोंके आहारका समय था। अतएव आप मुनि–आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। भाग्योदयसे उस बीहड वनमें दो चारण ऋद्धिधारी साधु जिनके नाम क्रमशः सुगुप्ति और गुप्ति थे वहीं आ पहुचे। ये मुनि तीन ज्ञानके धारी थे और मासोपवास करते थे। जब राम लक्ष्मण और सीता साधु द्वयको नवधा भक्ति पूर्वक आहार देनेको उद्यत हुए उसी समय पासके वृक्षपर बैठे हुए गृद्ध पक्षीको जाति स्मरण (पूर्व जन्मका ज्ञान) हुआ और वह उडकर मुनियोंके चरणोंमें आ पड़ा उसके पडनेका घोर शब्द हुआ तथा उस पक्षीका वर्ण भी बदल गया। उसका वर्ण सुवर्ण और वैडूर्यके समान हो गया। मुनियोने आहार ग्रहण कर उस पक्षीको उपदेश दिया और श्रावकके व्रत दिये। तथा राम, लक्ष्मणके साथ रहनेकी आज्ञा दी। रामने इस पक्षीका नाम जटायु रक्खा।

यहां पर रामचंद्रने एक रत्नमय रथ बनाया और तीनों इसी पर यात्रा करने लगे।

(१९) यहासे चलकर क्रोंचवा नदी पार की और दण्डक-गिरिके पास ठहरे। इन दिनों मुख्य आहार फलादिकका ही था। यहां पर नगर बसानेका विचार किया परन्तु वर्षा ऋतु समीप आगई थी। इसलिये वर्षा ऋतुके बाद यह विचार काममें लानेका संकल्प कर यहा ही रहने लगे। एक दिन लक्षमण वनमें क्रीडा-कर रहे थे कि एक अद्भुत प्रकारकी सुगन्ध आई। आप उसपर मुग्ध होकर जिधरसे सुगन्ध आ रही थी उसी ओर चल पडे। कुछ दूर आगे एक बासके बीडेके ऊपर सूर्यहास्य खड्ग दिखाई दिया। झपट कर आपने उसे ले लिया और उसकी आजमाइस करनेके लिये उसी बासके बीडे पर चलाया। बीडके अन्दर खरदूषण (रावणका बहिनोई) का पुत्र शम्बुक उसी सूर्यहास्यकी प्राप्तिके अर्थ तपस्या कर रहा था। अतएव बीडेके साथ २ उसका भी सिर कट गया।

(२०) शम्बुककी माता प्रतिदिन पुत्रको भोजन देने आती थी। जब उसने अपने पुत्रकी यह दशा देखी तब उसे बडा कष्ट हुआ। और अपने पुत्रके शत्रुको वहीं खोजने लगी। उसने इन दोनों भाइयोंको जब देखा तब अपने पुत्रके संबन्धमें कहनेकी बजाय इन पर आसक्त हो गई। और अपनेको कुमारी बतलाकर पाणिग्रहणकी इच्छा प्रगट की। परन्तु चतुर राम, लक्ष्मण उसके जालमें नहीं आये। जब उसने अपना जाल इन पर चलते नहीं देखा तब पति खरदूषणके पास आकर कहने लगी कि राम,

लक्ष्मणने पुत्रको मारकर सूर्यहास्य खड्ग हो लेलिया तथा मेरे जाने पर मुझसे भी कुचेष्टाएँ कीं। बस खरदूषणने युद्धकी तैयारी की और आप युद्धके लिये गया। तथा रावणके पास भी सहायतार्थ समाचार भेजे।

(२१) इससे युद्ध करनेको रामचंद्र जाने लगे। परन्तु लक्ष्मणने कहा कि आप यहीपर रहे। सीताकी रक्षा करें। मै जाता हूं। आवश्यकता पड़ने पर मै सिंहनाद करूंगा तब आप पधरे। लक्ष्मण युद्ध करने लगे। लक्ष्मणसे खरदूषणके शत्रु चंद्रोदयका पुत्र विराधित आ मिला। उधर रावण खरदुषणकी सहायतार्थ आ रहा था। मार्गमें सीताको देखकर वह आसक्त हो गया। तब उसने अवलोकिनी विद्याके द्वारा—राम, लक्ष्मणने परस्परमें जो सिंहनादका संकेत किया था, उसे जानकर सिंहनाद किया। राम भ्रातापर शत्रु-का अधिक दबाव समझ सीताको पुष्प-वाटिकामें छिपा और जटायुको पासमे रख युद्धक्षेत्रमे गये। रावणने मौका पाकर सीताको विमानमें रक्खा। रावणसे जटायु युद्ध करने लगा। पर-न्तु बलवान् रावणके आगे उस पक्षीका बल कहाँ तक चल सकता था। रावणकी थप्पड़से वह अधमरा हो पृथ्वीपर आ गिरा। उधर राम जब लक्ष्मणके पास पहुँचे, तब लक्ष्मणने कहा—आप क्यों आये? रामने उत्तर दिया कि तुमने तो सिंहनाद किया था इससे आया हूं फिर लक्ष्मणने उत्तर दिया कि मैंने सिंहनाद नहीं किया। यह किसीने धोखा दिया है। आप शीघ्र स्थानपर लौट जाय; मैं भी शत्रुको जीतकर आता हूँ। राम तुरन्त ही लौट आये।

(१२) राम सीताको स्थान पर न देख विह्वल हो ढूँढने लगे। और जब सीता नहीं मिली तब राम और अधिक अधीर हुए। वे वृक्ष, नदी आदिसे सीताका पता पूंछते थे। इतनेमें लक्ष्मण भी खरदूषण और दूषणको मार युद्धमें विजय प्राप्तकर पाताल लङ्काका राज्य अपनी ओरसे विराधितको दे रामके पास आये। जब सीता–हरणका सम्वाद सुना तब लक्ष्मणको भी बहुत दुःख हुआ। उन्होंने उसी समय विराधितको सीताका पता लगानेकी आज्ञा दी। परन्तु सीताका पता नहीं लगा। तब विराधितने कहा कि आप पाताल लङ्का पधारें वहांसे पता लगावें। शायद खरदूषणका साला रावण तथा उसके पुत्र खरदूषणका बदला लेनेके लिये यहां युद्ध करनेको आवेंगे। अतः पाताल लका ही चलें। तब राम लक्ष्मण पाताल लका गये। वहां खरदूषणके पुत्र सुन्दरने युद्ध किया। लक्ष्मणने उसे भी जीता। तब वह अपनी माता सहित रावणके पास चला गया। राम, लक्ष्मण पाताल लकामें रहने लगे।

(२३) सुग्रीवकी स्त्री सुतारा पर साहसगति नामक विद्याधर पहिलेसे ही आसक्त था। परन्तु सुताराके पिताने उसे न देकर सुग्रीवको दी थी। एक दिन सुग्रीव कहीं अन्यत्र गया हुआ था कि मौका पाकर साहसगतिने सुग्रीवका रूप धारण कर लिया और सुग्रीवके घर आ गया। इधर असली सुग्रीव भी आ गया। अब दोनोंमें परस्पर झगडा चला। एक दूसरेको नकली बताने लगे। तब सुग्रीवका पुत्र महलों पर पहरा देने लगा। वह दोमेंसे एकको भी नहीं आने देता था। असली सुग्रीवको

बड़ी चिन्ता हुई। वह हनुमानके पास गया। हनुमान उसकी रक्षाके लिये आये। परन्तु जब दोनोंको एक समान देखा तब यह समझकर कि कहीं झण्डेके धोखेमें सच्चा न मारा जाय; बिना कुछ किये पीछे लौट गये। सुग्रीव उस समय तक रामके विरुद्ध था। वह रामचंद्रको कामी समझता था। इसलिये कि कहीं तीसरी आफत न आ जाय, वह रामके पास नहीं जाता था। परन्तु अंतमें रामके पास जाना निश्चय किया। विराधितसे मित्रता कर रामसे मिला। राम और सुग्रीवने पंचोंके सन्मुख प्रतिज्ञा की कि हम दोनों अपनी मित्रता आजन्म निबाहेंगे। सुग्रीवने यह भी प्रण लिया कि मेरी विपत्ति दूर होजाने पर मैं सीताका पता ७ दिनमें लगा दूंगा। राम सुग्रीवकी राजधानी किहिकिन्धा पर गये। वहां उनकी आज्ञानुसार दोनों सुग्रीवोंमें परस्पर युद्ध हुआ। असली सुग्रीव पहिले हार गया। फिर रामचंद्र स्वयं सुग्रीवकी ओरसे नकली सुग्रीवसे लड़े। रामको देखते ही नकली सुग्रीवके शरीरसे बेताली विद्या चली गई। और असली साहसगतिका रूप निकल आया। तब उसके ओरकी सेना भी उससे बिछुड़ गई। रामने उसे मारा। और सुग्रीवने अपना राज्य और अपनी स्त्री पाई। फिर अपनी तेरह कन्याओंका रामके साथ पाणिग्रहण किया। इन कन्याओंने पहिलेसे ही प्रतिज्ञा कर ली थी कि हम विद्याधरोंके साथ विवाह न करेंगी।

(२४) सुग्रीवकी जब विपत्ति दूर हो गई तब उसने ७ दिनमें सीता ढूंढ़नेकी जो प्रतिज्ञा की थी उसे भूल गया। लक्ष्मण इस बात पर बहुत क्रोधित हुआ। तब सुग्रीवने अपने

सेवकोंको भेजा और स्वयं भी गया। मार्गमें रत्नजटी विद्याधरके द्वारा सुग्रीवको सीताका पता लग गया। रत्नजटीको लेकर सुग्रीव रामके पास आया।

(२४) रत्नजटी, भटमण्डल (सीताके भाई)का सेवक विद्याधर था। जिस समय रावण सीताका हरण कर लिये जा रहा था उस समय रत्नजटी भी उसी मार्गसे आता था रत्नजटीने जब सीताका विलाप सुना तब वह रावणके समीप आया और रावँणसे बहुत कहा–सुनी की। इस पर रावणने उसकी विद्याएँ हरण कर लीं। तब वह विद्याधरसे भूमिगोचरी हो नीचे गिरा और कम्पू पर्वत पर रहने लगा।

(२६) राम सब वृत्तान्त पूछकर विचार करने लगे कि आगे क्या करना चाहिये। कई विद्याधरोंने राम, लक्ष्मणको समझाया कि रावण महा बलवान् है। उससे युद्ध करना उचित नहीं। अब सीताकी आशा छोडकर हमें अपने अन्य कार्योंसे लगना चाहिये। आप हमारे स्वामी बन कर रहो। हम आपके साथ विद्याधरोंकी सुन्दर २ कन्याओंका विवाह कर देंगे। इत्यादि कई बातोंसे राम लक्ष्मणको समझाया। सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनंदने कहा कि एक बार रावणने भगवान् अनन्तवीर्य केवलीके समवशरणमें अपनी मृत्युका कारण पूंछा था, तब उसे उत्तर मिला था कि जो कोटिशिला उठावेगा उसीके हाथोंसे तेरी मृत्यु होगी। यह वृत्तात सुन पहिले राम लक्ष्मण अपने साथियों सहित विमानमें बैठ कोटिशिलाकी यात्रार्थ गये। वहां कोटिशिलाकी वंदना कर लक्ष्मणने उसे घुटनों तक उठाया।

आकाशसे देवोंने जयध्वनि की। वहांसे आकर बलवान्, परम प्रतापी, शूरवीर, राम, लक्ष्मणने विद्याधरोंकी एक न मानी और निश्चय किया कि लंकाके समाचार लेनेको हनुमान भेजे जांय। हनुमान बुलाये गये। रामसे मिलकर हनुमानको बहुत प्रसन्नता हुई।

(२७) जब हनुमान, रामकी आज्ञासे सीताके समाचार लेने लङ्काको चले तब मार्गमें राजा महेन्द्रसे युद्ध किया। ये हनुमानके नाना थे। उन्हें जीतकर आगे चले। एक दधिमुख नगरके वनमें अग्नि जल रही थी। उसी वनमें दो मुनि (चारण ऋद्धिधारी) तप कर रहे थे। और तीन कन्याएँ तप कर रहीं थी। हनुमानने समुद्रसे आकाश मार्गद्वारा जल मगवाकर वर्षा करवाई और अग्नि शान्त की। फिर मुनियोंकी वन्दना कर कन्याओंसे तपका कारण पूछा। उन्होंने कहा कि हमारे पिता इसी वनके समीपवाले नगरके राजा है। किसी मुनिने उनसे कहा था कि जो सहसगति विद्याधरको मारगा वही इनका पति होगा। एक अगारक नामक राजा हमपर आसक्त था। परन्तु पिताने उसके साथ पाणिग्रहण नहीं किया। तब हम साहसगतिका वृत्तांत जाननेके लिये मनोगामिनी विद्या सिद्ध करने यहां आई हुई हैं। अग्नि लगने पर भी निश्चल वृत्तिसे रहनेके कारण उन कन्याओंको विद्याकी सिद्धि हुई। हनुमान, साहसगतिके मारनेवाले रामका पता बतला कर लंकाकी ओर चल दिये। और कन्याओंका पिता कन्याओंको लेकर रामके पास गया और वहां जाकर उनका विवाह कर दिया।

(२८) इधर रावणके मन्त्रियोंने रावणकी यह दशा देख नगरको शत्रुओंसे बचानेके लिये उसके आसपास कई प्रकारके मायामयी यन्त्र बनाये। एक बडा भारी कोट बनाकर द्वार पर एक पुतली बनाई। उसके आसपास सर्प बनाये जो सन्मुख आनेवालोंको निगल जावें, फूत्कार करें और इस प्रकारका विष छोड़ें जिससे अन्धकार फैल जावे। कहा गया है कि यह विद्या बलसे बनाये गये थे। जब हनुमान लङ्काके समीप आये तब इन मन्त्रोंके द्वारा उनके विमानकी गति रुकी। इस पर उन्होंने बख्तर पहिन कर उस पुतलीके मुँहमें प्रवेश किया। और उसका उदर चीर दिया तथा गदा प्रहारसे कोटका पतन किया। जिस समय यह तिलिस्म टूटा बड़ी भारी ध्वनि हुई। तिलिस्मके टूटने ही उस कोटका रक्षक वज्रमुख, हनुमानसे युद्ध करनेको उद्यत हुआ। वीर हनुमानने उसे भी मारा। फिर उसकी कन्या लङ्कासुन्दरी हनुमानसे युद्ध करने लगी। यद्यपि वह युद्ध करती थी परन्तु मन ही मन हनुमान पर आसक्त थी। अन्तमें उसने अपने प्रेमके समाचार एक पत्रमें लिख और उस पत्रको बाणमे बांध हनुमानको मारा। हनुमानने उस पत्रको पढ कर युद्ध बन्द किया। फिर दोनोंका परस्पर सयोग हुआ।

(२९) अपनी सेनाको लङ्कासुन्दरीके पास छोड़ हनुमानने थोड़ेसे सेवकों सहित लङ्कामे प्रवेश किया। पहिले विभीषणके पास गया और रावणको समझानेके लिये कहा, परन्तु विभीषणने कहा कि मेरा कहना नहीं मानता। इस समय सीताको ग्यारह दिन बिना जल, भोजनके हो गये थे। फिर हनुमान प्रमद वनमें

गया; जहा कि सीताको रावणने रख छोड़ा था। सीताको दूरसे देखते ही उसके परमशीलके कारण हनुमानके हृदयमें बड़ी भक्ति उत्पन्न हुई। उस समय हनुमान अपना रूप बदल कर सीताके पास गये और रामचंद्रकी मुद्रिका सीताके पास डाली। सीता उसे देख परमप्रसन्न हुई। उसे प्रसन्न होते देख रावणने सीताके समीप जो दूतियां रक्खी थीं वे दौड़ी हुई रावणके पास गईं और कहने लगीं कि आज सीता प्रसन्नदिल हो रही है। इसपर रावण भी बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मन्दोदरी आदि अपनी रानियोंको सीताको रावणपर प्रसन्न करनेके लिये भेजा। उनने आकर रावणकी प्रशंसा की और उसपर आसक्त होनेके लिये कहा। इसपर हनुमान बहुत क्रोधित हुआ। और इन्हें खूब फटकारा। मन्दोदरीसे कहा कि तू शीलवान् होकर अपने पतिको कुमार्गसे तो नहीं रोकती, उलटी एक पतिव्रताका शीलभङ्ग करना चाहती है। तब मन्दोदरीने रावणकी बहुत प्रशंसाकर राम लक्ष्मणकी निन्दा की। इसपर क्रोधित हो सीताने कहा कि मालूम होता है कि रावणका पतन शीघ्र होनेवाला है। सीताके मुखसे यह निकलते ही रावणकी रानियां सीताको मारने दौड़ीं। हनुमानने बचाया। तब वे रावणके पास चलीं गईं। हनुमानने सीतासे भोजन की प्रार्थना की। सीताने प्रतिज्ञा भी यही कर रक्खी थी कि जबतक रामके समाचार नहीं आवेंगे, तबतक मैं भोजन नहीं करूँगी। अब हनुमानकी प्रार्थनापर सीताने भोजन करना स्वीकार किया दासीको भोजन बनानेकी आज्ञा देकर हनुमान विभीषणके

यहा भोजन करने चले गये फिर वहासे आकर सीतासे कहा कि आप मेरे कन्धेपर बैठो, मैं आपको रामके पास ले चलूंगा।

(१०) सीताने कहा कि बिना पतिकी आज्ञाके मैं यहांसे नहीं जा सकती और तुम शीघ्र जाओ। सीताने अपनी चूडामणी हनुमानको दी। इधर रावणके पास जाकर मन्दोदरीने हनुमानके समाचार कहे और कहा कि उसने हमारा अपमान किया है। तब रावणने हनुमानके पकडनेको सेना भेजी। वह सेना सशस्त्र थी, परन्तु हनुमानके पास कोई शस्त्र नहीं था। तौ भी हाथसे, पैरसे, कन्धेसे, मुक्कोंसे, पत्थरोंसे झाडोंको उखाड़कर उनसे सेनाको तित्तर वित्तरकर दिया। बडे २ मकान धराशायी कर डाले। बाजारको रणक्षेत्र बना दिया। यह हालत देख मेघनाद इद्रजीत हनुमानसे युद्ध करने आये। बडी कठिनतासे हनुमान नागपाशमें बांधे गये। बंध जाने पर रावणके पास लाये गये। उस समय रावणके पास हनुमानके विरुद्ध लोग प्रार्थना कर रहे थे। हनुमानके आने पर रावणने हनुमानसे बहुत कुवचन कहे। परन्तु धीरवीर निर्भय हनुमानने भी उसका प्रत्युत्तर दिया। इस पर क्रोधित हो रावणने आज्ञा दी कि इसे बांध कर शहरमें घुमाओ। जगह २ इसकी निन्दा करो। लड़कोंसे धूल डलवाओ। कुत्तोंको भुंकाओ। सेवकोंने इसी प्रकार करना प्रारम्भ किया। परन्तु बलवान् हनुमान बन्धन तोड़ आकाशमें उड़ गया। और फिर उत्पात करना प्रारम्भ किये। रावणके कई महल धराशायी कर डाले। लङ्काका कोट नष्ट भ्रष्ट कर दिया। और फिर अपनी सेनामें आकर वहांसे किष्किन्धापुर आया। सुग्रीव, राम और लक्ष्मणसे लङ्काके सम्पूर्ण

समाचार कहे। सीताका चूडामणि रामको दिया। लङ्काके समाचारोंसे दुःखी और क्रोधित होकर राम लक्ष्मण युद्ध करनेके लिये लङ्काकी ओर चले।

(३१) आपके साथ अनेक विद्याधर भी अपनी २ सेनाके साथ चले। सीताके भाई भामण्डलको भी बुलाया था, वह भी चला। रामकी सेनाका सेनापति भूतनाद नामक विद्याधर बनाया गया। रामकी ओर दो हजार अक्षौहिणी सेना थी।

(३२) उस समय सेनाके नौ भेद होते थे। वे इस प्रकार हैं —

१ पत्ति, २ सेना, ३ सेनामुख, ४ गुल्म, ५ वाहिनी, ६ प्रतना, ७ चमू, ८ अनीकिनी और ९ अक्षौहिणी। इन भेदोंकी संख्याका प्रमाण इस प्रकार है —

१ पत्ति -जिसमें एक रथ, एक हाथी, पांच पियादे, और तीन घोडे हों उसे 'पत्ति' कहते थे।

२ सेना.-जिसमें तीन रथ, तीन हाथी, पन्द्रह पियादे, और नौ घोड़े हो, उसे 'सेना' कहते थे।

३ सेनामुख -जिसमें नौ रथ, नौ हाथी, पैंतालीस पियादे और सत्ताईस घोडे हों, उसे 'सेनामुख' कहते थे।

४ गुल्मः—सत्ताईस रथ, सत्ताईस हाथी, एक सौ पैंतीस पियादे और इक्यासी घोडेवाली सेना "गुल्म" कहलाती थी।

५ वाहिनीः—इक्यासी रथ, इक्यासी हाथी, चारसौ पाँच पियादे और दो सौ तिरतालीस अश्ववाली सेना 'वाहिनी' कहलाती थी।

६ प्रतनाः—जिसमें दो सौ तिरतालीस रथ, इतने ही हाथी-बारहसे पन्द्रह पियादे, और सातसौ उन्तीस घोडे होते थे, उसे 'प्रतना' कहते थे।

७ चमूः—सातसौ उन्तीस रथ, सातसौ उन्तीस हाथी, छत्तीससौ पैंतालीस पियादे और इकवीस सौ सत्तासी घोडवाली सेना 'चमू' कहलाती थी।

८ अनीकिनी—इकवीस सौ सत्तासी रथ, इतने ही हाथी, दश हजार नौसौ पैंतीस पियादे, और छ हजार पाँचसौ इकसठ घोड़ेवाली सेना 'अनीकिनी' कहलाती थी।

९ अक्षौहिणी—दश अनीकिनीकी एक अक्षौहिणी होती है। उसकी संख्या इस प्रकार है—इकवीस हजार आठसौ सत्तर रथ, इतने ही हाथी, एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास पियादे, और पैंसठ हजार छ सौ दश घोडे एक 'अक्षौहिणी' सेनामें होते थे।

(३३) इस प्रकारकी दो हजार सेना रामकी ओर थी। उसमें एक हजार तो भामण्डल ही की थी, शेष भिन्न २ विद्याधरोंकी थी। किष्किन्धापुरसे चलकर वेलन्धापुरमें डेरे डाले। यहाँ नलसे वेलन्धापुरके राजा समुद्रसे युद्ध हुआ। समुद्र हाराः नल समुद्रको बाँधकर रामके समीप लाया। रामने समुद्रको छोड़ उसे राज्य दे दिया। इस दयासे प्रसन्न हो समुद्रने अपनी सत्यश्री, कमला, गुणमाली, रत्नचूड़ा नामक कन्याएं लक्ष्मणको दीं। यहाँ एक रात्रि रहकर सुवेल पर्वत पर गये। यहाँ केसवेल नगरके राजाको जीता। फिर आगे बढ़े और लङ्काके समीपवाले हंसद्वीपमें डेरे डाले।

(३४) रावणने रामको समीप आते देख अपनी सेना तैयार की। बडे २ योद्धा, राजा, महाराजा रावणकी सेनामें आकर मिले। इस समय फिर विभीषणने रावणको समझाया। इस पर रावणके पुत्र इन्द्रजीतने विभीषणसे कहा कि तुम कायर हो। तब विभीषणने खूब फटकारा। इस पर रावण, विभीषणसे युद्ध करनेको उद्यत हो गया। विभीषण भी एक मकानका स्तम्भ उखाड़ कर युद्धको उद्यत हुआ। पर मन्त्रियोंके समझानेसे युद्ध तो नहीं हुआ किन्तु रावणने विभीषणको नगरसे निकल जानेकी आज्ञा दी। विभीषण, रामकी सेनामें जाकर मिल गया। विभीषणके साथ ३० अक्षौहिणी दल था।

(३५) रावणकी सेनामे ढाई करोड़ राक्षसवंशी कुमार थे। जिस समय रावणकी सेना रामकी सेनासे युद्ध करनेको चली और योद्धा गण अपने गृहसे निकलने लगे तब किसी योद्धाको उसकी स्त्रीने अपने हाथोंसे वस्त्र पहिनाये, किसीने अपने पतिको शस्त्रास्त्रोंसे सजाया। प्राय सब स्त्रिया अपने वीर पतियोंसे कहने लगीं कि युद्धमें शत्रुओंको जीतकर आना। भागकर मत आना। तुम्हारे घावो सहित शरीरको देख कर हमें प्रसन्नता होगी। अहा ' कैसी वीरताका समय था। कहॉ आजका भारत ! जिसमें कायरता और निर्बलताका साम्राज्य छा रहा है। युद्धके नामसे लोग जङ्गलोंमें छिपने है। स्त्रिया माथा धुनती है। हे भारतभूमि ! हमारे वे वीरतामय, साहसमय, धैर्यमय दिन फिर कब फिरेंग ?

(३६) जब रावणकी सेना चली तब मार्गमें बहुत अपशकुन परन्तु रावणने उसकी कुछ पर्वाह न की। और युद्ध–क्षेत्रमें

पहुँच कर दोनों सेनाओंकी खूब मुठभेड हुई। कभी रावणकी और कभी रामचन्द्रकी सेना दबने लगी। दोनों ओरके वीर घन-घोर युद्ध करने लगे। जब रावणकी सेना दबती तब वह स्वयं उद्यत होता परन्तु कभी कुम्भकरण और कभी इन्द्रजीत उसे रोक देते और स्वयं लड़ते। कभी रावणके पक्षके योद्धा राम पक्षके योद्धाओंको बॉध लेते, कभी राम पक्षके अपने योद्धाओंको छुड़ा कर रावणके योद्धाओंको बॉध लेते। दिन भर युद्ध होता और सूर्यास्त होते ही युद्ध बन्द हो जाया करता था। उस समयकी यही पद्धति थी। इस युद्धमें किसी २ योद्धाके रथमें सिंह भी जोते गये थे।

(२७) देशभूषण, कुलभूषणके समवशरणमें जिस गरुडेन्द्रने समय पड़ने पर सहायताका वचन दिया था, रामने उस गरुडेन्द्र-का स्मरण किया। उसने अपने एक आधीनस्थ देवके द्वारा, जलबाण, अग्निबाण, और पवनबाण भेज विद्युतचक्र नामक गदा लक्ष्मणके लिये और हल-मूसल रामके लिये भेजे।

(२८) रावणकी सेनाके योद्धाओंके नाम इस प्रकार हैं—मारीचसिंह, जघन्य, स्वम्भू, शम्भू, वज्राक्ष, वज्रभूति, नक्रमकर, वज्रघोष, उग्रनाद, सुन्दानकुम्भ, कुम्भ, सन्ध्याक्ष, विभ्रमक्रूर, माल्यवान, जम्बू, शिखीवीर, ऊर्द्धक, वज्रोदर, शक्रप्रभ, कृतान्त, विगटोधर, महामणी, असणीघोष, चन्द्र, चन्द्रनख, मृत्युभीषण, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युतश्री, महामारीच, कनकक्रोधनु, क्षोभणद्रुन्ध, उद्दाम, डिण्टी, डिण्डर, डिण्डव, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड,

हालाहल, विद्याकौशिक, विद्याविस्याक, सर्पबाहु, महाद्युति, शंख, प्रशंख, राजमित्र, अञ्जनप्रभ, पुष्पक्रूर, महारक्त, घटाश्र, पुष्पखेचर अनङ्गकुसुम, कामवर्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकप्रभ, शशिमुख, सौम्यवक्र, महाकाम, हेमगौर, कदम्ब, विटप, भीमनाद, भयानाद, शार्दूलसिंह, बलाङ्ग, विद्युदङ्ग, ल्हादन, चपल, चाल, चञ्चल, हस्त, प्रहस्त।

(३९) रामकी सेनाके योद्धाओंके नाम इस प्रकार हैं:— जयमित्र, चन्द्रप्रभ रतिवर्द्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भक्रमण्डल, अनुधर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, समुन्नतबल, सर्वज्योति, सर्वप्रिय बल, सर्वसा, सर्व, शरभभट, आभ्रष्टि, निविष्ठ, सन्त्रास, विघ्न, सूदन, नाट, बखर, कलोट, पालन, मण्डल, सङ्ग्राम, चपल, प्रस्तार, हिमवान्, गङ्गप्रिय, लव, दुप्रेष्ट, पूर्णचन्द्र, विधिसागर, घोष, प्रियविग्रह, स्कन्ध, चन्दन, पादप, चन्द्रकिरण, प्रतिघात, महाभैरव, कीर्तन, दुष्टसिंह, कुष्टसमाधि, बहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास, सङ्कटप्रहार, विद्युत्कर्ण, बलशील, सुयज्ञ, रचनधन, सम्मेद, विचल, साल, काल, क्षत्रवर, अङ्गज, विकाल, लाल, ककालो, भङ्ग, भङ्गोर्मि, उरचित, उतरग, तिलक, कील, सुषेण, चाल, करन, वली, भीमरव, धर्म, मनोहर, मुख, सुख, कमनसार, रत्नजटी, शिवभूषण, दूषणकाल, विघट, विराधित, मनूरण, रणनिक्षेम, वेला, आक्षेपी, महाधर, नक्षत्र, लुब्ध, संग्राम, विजय, जय, नक्षत्रमाल, क्षोद, अतिविजय, विद्युद्वाह, मरुद्वाह, स्थाणु, मेघवाहन, रवियाण, प्रचण्डालि, युद्धावर्त, वसन्त, कान्त, कौमुदि

नन्दन, मूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधु, वत्सल, अर्द्धचन्द्र, भिन, प्रेमसागर, सागर, उरङ्ग, मनोज्ञ, जिनपति, नल, नील आदि।

(१०) अब राम, लक्ष्मणने स्वयं युद्ध करना प्रारम्भ किया। घनघोर युद्ध हुआ। राम, लक्ष्मणकी सेनाने कुम्भकरण, इन्द्रनीत मेघनादको बाध लिया। रावणने लक्ष्मणपर शक्तिका प्रहार किया। शक्ति लगनेसे अचेत होकर गिर गये। रामने रावणसे उस दिन युद्ध बन्द करनेको कहा। युद्ध बन्द हो गया। लक्ष्मणका उपचार होने लगा। राम बहुत शोकाकुल हुए। किसीको आशा नहीं रही। रावण, लक्ष्मणकी यह दशा देख बड़ा हर्षित हुआ। परन्तु अपने भाईयों व पुत्रोंको शत्रुके हाथमें गये जान दुखी भी हुआ। लक्ष्मणके आसपास चारों ओर सात २ पहरे बिठलाये और लक्ष्मणकी शक्ति दूर करनेके विचार किये जाने लगे। इतनेमें एक युवक आया। भामण्डलने उसे जानेसे रोक दिया। परन्तु जब उसने लक्ष्मणकी रक्षाका उपाय बतलानेका आश्वासन दिया तब भामण्डल उसे रामके पास ले गये। रामके दर्शनकर उसने कहा कि एक वार मुझे भी शक्ति लगी थी, तब अयोध्याके स्वामी भरतने मुझपर द्रोणमेघ राजाकी पुत्री विशल्याके स्नानका जल सींचा था उससे मैं शक्ति रहित हुआ था। एकवार अयोध्या-में कई प्रकारकी बिमारिया देव द्वारा फैलाई गई थीं। क्योंकि एक व्यापारी अपने भैसेपर अति भार लाद कर अयोध्याको आया था और वह भैसा अति भारके कारण घायल होकर मराथा मरकर वह वायुकुमार जातिका देव हुआ। उसने अपने पूर्व भवका स्मरणकर अयोध्या वासियोंसे कुपित हो अयोध्यामें बीमारियां

फैलाई। तब भरतने द्रोणमुख राजाको बुलाया और उपाय पूछा। उसने अपनी पुत्री विशल्याके स्नान जलसे अयोध्याके रोग दूर किये और उसी जलसे महाराज भरतने मेरी शक्ति दूर की। सो आप विशल्याके स्नानका जल शीघ्र मंगावे। तब शीघ्रगामी विमानपर चढकर भामण्डल, हनुमान, अङ्गद अयोध्याको गये और भरतसे सब हाल कहा। अपने भाइयोंपर विपत्ति आई हुई देख भरत युद्धार्थ उद्यत हुए, पर हनुमान आदिके समझानेपर रुके। और अपनी माताके सहित द्रोणमुखके पास गये। और विशल्याको लङ्का भेजनेकी प्रार्थना की। हनुमान आदि विशल्याको लङ्का ले गये। ज्यों २ विशल्या, लक्ष्मणके समीप पहुँचती थी त्यों २ लक्ष्मणका स्वास्थ्य ठीक होता जाता था। जब वह समीप पहुच गई तब वह शक्ति रूपिणी देवी लक्ष्मणके शरीरसे निकल कर भागने लगी। हनुमानने उसे पकड़ लिया। उसने कहा इसमें मेरा अपराध नही, हमें जो सिद्ध करता है उसीके शत्रुका मै संहार करती हू। रावणको असुरेन्द्रने मुझे दी थी सो उसकी आज्ञानुसार मैने किया। तब तत्त्ववेत्ता हनुमान ने उसे छोड़ दिया विशल्याके जलसे शत्रुपक्षके योद्धाओंको भी रामने लाभ पहुंचाया। फिर लक्ष्मणका विशल्याके साथ विवाह हुआ। जब यह समाचार रावण व उसके मंत्रियोंने सुने तो रावणको कुछ भी चिन्ता नहीं हुई; पर मन्त्रीलोग चिता करने लगे और सन्धिके लिये आग्रह करने लगे। रामके पास दूत भेजा गया। दूतके द्वारा कहलाया गया कि यदि रावणका सब राज्य और लङ्काके दो भाग लेकर सीताको और रावणके पकड़े हुए कुटुम्बियोंको राम देना स्वीकार

करें तो रावण सन्धि करनेको तैयार है। परन्तु रामने यह नहीं माना और उस दूतको राजसभासे निकाल दिया। उन्होंने कहा कि हमें राज्यसे क्या प्रयोजन ? हमें सीता चाहिये।

(४१) रावण आगेके युद्धके लिये विचार करने लगा। अष्टान्हिकाके दिन होनेके कारण युद्ध बन्द था। रावणने बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करना प्रारम्भ किया। अपने महलमें जो शान्तिनाथका मन्दिर था उसे खूब सजाया। नित्यपूजनका भार मन्दोदरीको दिया और नीचे लिखी घोषणा करानेकी आज्ञा मन्दोदरीको देकर आप विद्या सिद्ध करने बैठा:—

" सब लोग दयामें तत्पर रहें; यम-नियमके धारक बनें, सम्पूर्ण व्यापारोंको छोड कर जिनेन्द्र पूजा करें अर्थी लोगोंको मनवांछित धन दिया जाय, अहङ्कार छोड दिया जाय; गर्व न किया जाय, उपद्रवियोंके उपद्रव करनेपर उसे शांति पूर्वक सहन किया जाय। मेरा नियम पूर्ण होने तक जो इन आज्ञाओंको भंग करेगा वह दण्डका पात्र होगा। "

इस प्रकारकी राज्यमें घोषणा करवाकर रावण जब विद्या सिद्ध करने बैठ गया तब कई एकोंने रामको कहा कि यह सुअवसर है। सहजमें लङ्का पर कब्जा कर लिया जा सकता है। परन्तु वीर रामने कहा ऐसा करना अन्याय करना है। अत एव उन्होंने उसे अस्वीकार किया। तब लक्ष्मणकी सम्मतिसे कुछ लोगोंने लङ्कामें उपद्रव मचाया। उन उपद्रवियोंको यक्षेश्वरोंने भगाया और राम लक्ष्मणको उलाहना दिया। लक्ष्मणने कहा

कि रावणने हमारा अपराध किया है उसे हम विद्या सिद्ध करने देना नहीं चाहते। तब उन्होंने कहा कि आपका द्वेष रावणसे है, नगरवासियोंसे नहीं अतएव रावणको सताओ, नगर निवासियों-को नहीं। लक्ष्मणने यह स्वीकार किया। फिर रामपक्षके कुछ कुछ पुरुष रावणके महलोंमें रावणको क्रोध उत्पन्न करनेके लिये गये ताकि उसे विद्या-सिद्धि न हो सके। सुग्रीवका पुत्र अङ्गद कई पुरुषोंके साथ रावणके महलोमें गया। रावणके महल रत्नोंसे सुसज्जित थे। स्फटिककी छतें थीं। उनके चित्रादिकोंको देख कर इन्हे साक्षात् सजीव प्राणियोंका भ्रम होता था। बडी कठिनतासे शान्तिनाथके मन्दिरमें पहुंचे। वहा भगवान्‌की स्तुति कर रावणको ध्यानसे डिगानेका प्रयत्न करने लगे। उसकी माला छुडाते, उसके कपडे उतारते, उसकी स्त्रियोंको पकड लाते, उन्हें बेचनेके लिये अपने सुभटोंको आदेश करते, दो स्त्रियोंकी चोटिया परस्परमें बांध देते, आदि कई प्रकारकी चेष्टाए कीं। भगवानके मन्दिरमें भी सुग्रीवके पुत्र और रामपक्षके योद्धाओंने इस प्रकार अत्याचार कर अपना नाम सदाके लिये कलंकित किया है। अस्तु, परन्तु रावण इन विघ्नोंसे नहीं डिगा। तब बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हुई। परन्तु सिद्ध होते समय विद्याने यह कह दिया कि मैं चक्रवर्ती और नारायणका कुछ नहीं कर सकूंगी। जब रावण ध्यानसे उठा तब रानियोंने अङ्गदकी शिका-यत की। रावणने समझा बुझा कर सबको शान्त किया। फिर रावण, विमानमें चढ़ कर सीताके पास गया। और उसे समझा कर कहा कि रामका युद्धमें शीघ्र ही निपात होगा। अतएव

मुझसे प्रेम कर। परन्तु सीताने एक न सुनी। और कहा कि यदि तेरे हाथसे रामका मरण हो तो अन्त समय उनसे मेरा सन्देश इस प्रकार कहना कि:–"सीता, तुम्हारे वियोगसे बहुत दुःखी है। तुम्हारे दर्शनोंकी अभिलाषासे उसके प्राण टिक रहे हैं।" इस प्रकार सन्देश कह कर सीता मूर्छित हो गई। उस दशाको देख कर रावणका हृदय पिघला और वह विचार करने लगा कि मैंने अच्छा नहीं किया। विभीषणका उपदेश भी नहीं माना। अब यदि सीताको देता हूं तो मेरी निर्बलता सिद्ध होती है। अब रावणके विचार बदले परन्तु बदनामीका भय लगा हुआ था। अतएव उसने निश्चय किया कि राम लक्ष्मणको युद्धमें जीत कर सीताको वापिस कर दूंगा तो मेरी शोभा होगी। जब वह लौट कर घर आया तब रावणकी स्त्रियोंने फिर अङ्गदकी दुष्टताका विवेचन किया। अबकी बार रावणको क्रोध आगया और वह फिर जोर शोरसे युद्ध करनेके लिये उद्यत हुआ। जब वह दरबारमें गया और वहाँ अपने भाई कुम्भकरण और पुत्र इन्द्रजीतको न देखा तो उसके क्रोधमें आहुति पड़ी। दरबारसे आयुधशालामे गया। उसके साथ उसकी पट्टरानी मन्दोदरी थी। मन्दोदरी पर भी छत्र, चँवर आदि उपकरण लगाये जाते थे। आयुधशालामें जाते समय अपशकुन हुए। मन्दोदरीने समझाया। अपनी प्रशंसा और सीताकी अप्रशंसा कर रामका भय बतलाया परन्तु रावणने एक न मानी। आयुधशालाका निरीक्षण कर महलोंमें आ गया। और दूसरे दिन कई शस्त्रविद्याओंका जानकार, धीर वीर रावण युद्ध करने चला। मार्गमें अनेक अप-

शकुन हुए। परन्तु एक की भी पर्वाह न कर युद्धक्षेत्रमें आ डटा। दोनों ओरसे घनघोर युद्ध हुआ। दोनों ओरके योद्धाओंने घन-घोर युद्ध किया। इनमें कई योद्धा अणुव्रतोंके धारी भी थे। बहुत घनघोर युद्ध होनेके बाद रावणने लक्ष्मणपर चक्र चलाया। रामकी ओरके कई योद्धा उस चक्रसे लक्ष्मणकी रक्षा करनेको तैयार हुए। परन्तु वह चक्र स्वय ही लक्ष्मणकी तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मणके हाथोंमें आ गया। और फिर लक्ष्मणने उस चक्रको रावणपर चलाया सो रावणका उरूस्थल छेदकर रावणको प्राण रहित किया।

(४२) रावणकी पराजय हुई। सेनामें हाहाकार मच गया। बिभीषण आदि शोक करने लगे। भ्रातृप्रेमके आवेशमें बिभीषण आत्मघात करनेको तयार हुए। परन्तु रामादिने समझाकर उन्हें शात किया। फिर राम, लक्ष्मण रावणके महलोंमें गये और रावणकी शोकाकुल रानियोंको समझाकर पद्म सरोवरके तटपर सुगंधित वस्तुओंसे रावणका शवदाह किया।

(४३) रामने रावणके कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियोंको छोडनेकी आज्ञा दी। कई लोगोंने रामको ऐसा न करनेके लिये समझाया। क्योंकि उन्हें भ्रम था कि छूट जानेपर शायद फिर युद्ध हो। परन्तु निर्भय रामने न मानकर कुम्भकरण, इद्रजीत, मेघनाद, मय आदिको छोड दिया। रावणके मरणसे इन लोगोंके परिणाम वीतरागतामय हो गये थे। अतएव इन्होंने वैराग्य धारणका विचार किया। रामने राज्यादि सम्पदा लेनेके लिये इन लोगोंको बहुत कुछ समझाया; पर इन्होंने नहीं माना। उसी दिन

पिछले पहर ५६ हजार मुनियोंके सङ्ग सहित अनन्तवीर्य आचार्य लङ्कामें आये। और वहीं भगवान् अनन्तवीर्यको कैवल्य-ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(४४) रामचन्द्रके साथ वानरवंशी और राक्षसवंशी वन्दनाके लिये गये। कुम्भकरण, इन्द्रजीत, मेघनादने दीक्षा धारण की। मन्दोदरीने शशिक आर्यिकासे दीक्षा ली। जिस दिन मन्दोदरी दीक्षित हुई, उस दिन अडतालीस हजार स्त्रियोंने आर्यिकाके व्रत लिये थे।

(४५) केवलीकी वन्दना करनेके पश्चात् राम, लक्ष्मणने अपने साथियों सहित लङ्कामें प्रवेश किया। सीतासे मिले। रामके साथी हनुमान, सुग्रीव, आदिने सीताको भेंटें दीं। लक्ष्मण पांवों पड़े। फिर परम हर्षके साथ रावणके महलोंमें जो शान्तिनाथका मन्दिर था उसकी वन्दनाको गये। वहाँ विभीषणने अपने पितामह सुमाली और माल्यवान्‌को तथा पिता रत्नश्रवाको रावणका शोक न करनेके लिये समझाया। और अपने महलोंमें जा अपनी विदग्धा नामक पट्टरानीको राम, लक्ष्मणके पास भेजकर भोजनका निमन्त्रण दिया। पीछे विभीषण भी निमन्त्रण देनेको आया। राम, लक्ष्मण विभीषणकी पट्टरानीके साथ ही विभीषणके महलोंमें पधारे और वहां भोजन किया। विभीषणने खूब सत्कार किया।

(४६) राम, लक्ष्मणके राज्याभिषेककी तैयारियां हुईं। पहिले तो इन दोनों भाइयोंने यह कहकर अभिषेक कराना उचित

नहीं समझा कि हमारे पिता भरतको राज्य दे गये हैं, इसलिये हम जो कुछ राज्य प्राप्त करेंगे वह सब भरतका है। परन्तु जब बहुत हठ किया गया और यह कहा गया कि आप ही नारायण बलभद्र हैं आपका अभिषेक होना उचित है, तब स्वीकार किया। अभिषेकके अनन्तर लक्ष्मणने मार्गमें जिन २ कन्याओंके साथ विवाह किया था उन २ कन्याओंको लानेके लिये विराधित-को भेजा। और रामचन्द्रका भी चन्द्रवर्द्धन आदि कितने ही नृपतियोंकी कन्याओंके साथ विवाह हुआ। लङ्काका राज्य विभीषणको दिया गया।

पाठ. २९

रावणादिकी अंतिम गति।

(१) रावण, मरकर नर्क गये।

(२) इन्द्रजीत और कुम्भकरण केवली होकर नर्मदा तटसे मोक्ष गये।

(३) मेघनाद भी कैवल्य-ज्ञानको प्राप्त होकर मोक्ष सिधारे।

(४) जम्बूमालीका देहावसान तूर्णी पर्वत पर हुआ और वे अहमिन्द्र हुए।

(५) रावणका मन्त्री मारीच स्वर्ग गया।

(६) मन्दोदरीके पिता मय मुनिको सर्वौषधि ऋद्धिकी प्राप्ति हुई।

पाठ ३०.

देशभूषण–कुलभूषण।

(१) ये दोनों भ्राता थे। (२) ये सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमन्धर, रानी विमलाके पुत्र थे। (३) इनके पिताने इन्हें साग रघोश नामक विद्वान्‌के सिपुर्द शिक्षाके लिये किया। शिक्षा समाप्त कर जब ये घर पर आगये तब पिताने इनके विवाहके लिये योग्य कन्याएँ बुलाईं। ये दोनों भ्राता उन कन्याओंको देखने जाने लगे। झरोखेमें इनकी बहिन कमलोत्सवा बैठी थी। वह परम सुंदरी थी। इसको देख कर दोनों भ्राता उस पर मुग्ध हो गये। और यहा तक दोनोंके मनमें विचार हुआ कि जिसके साथ इसका विवाह न हो वही दूसरेके प्राण ले। परन्तु उसी समय दूतने कहा कि राजा क्षेमंधरकी जय हो जिनके दो पुत्र और झरोखेमें बैठी हुई कमलोत्सवा आदि पुत्री हैं। जब इन्हें भान हुआ कि हाय! हमारा दुष्ट मन बहिन पर आसक्त हुआ था। तब इन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ। (४) वैराग्य धारण करने पर इन्हें आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त हुई। घोर तप और पूर्व जन्मके शत्रु दैत्यके द्वारा किये गये उपसर्ग सहन करनेके बाद इन्हें कैवल्य ज्ञान हुआ। (५) भगवान् मुनिसुव्रतनाथ–स्वामीके बाद एक अनतवीर्य केवली हुए थे। उनके बाद इन दोनोंको कैवल्य–ज्ञान हुआ। (६) इनका पिता क्षेमधर भी मर कर गरुडेन्द्र हुआ। और वह भी इनके समवशरणमें आया। (७) यहासे दोनों केवली विहार कर गये और स्थान २ पर उपदेश दिया। अतमें इसी पर्वतसे निर्वाणकी प्राप्ति की।

पाठ ३१

राम लक्ष्मणका अयोध्यामें आगमन, भरतका दीक्षा ग्रहण, राम लक्ष्मणका राज्याभिषेक, वैभव और दिग्विजय तथा शत्रुघ्नका मथुरा विजय करना ।

(१) रामचन्द्र और लक्ष्मणकी माता अपने पुत्रोंके वियोगका बहुत दुःख करने लगीं । प्रतिदिन क्षीण होतीं जाती थीं और प्रायः सदा अश्रुपात करती रहतीं थीं । नारदने आकर उन्हें समझाया और फिर राम, लक्ष्मणके पास आकर उनकी माताके समाचार कहे । तब राम लक्ष्मण अयोध्या जानेको उद्यत हुए । परन्तु बिभीषणने उन्हें हठ करके सोलह दिनके लिये और रोका । और उनको कुशलता, आनेकी तिथिको सूचना अयोध्या भिजवा दी ।

(२) सोलह दिनोंके भीतरही रामके स्वागतार्थ बहुत कुछ तैयारियां अयोध्यामें हो गईं । नवीन जिन मंदिर बन गये । कई महल बनवाये गये ।

(३) छः वर्ष लङ्कामें व्यतीतकर राम, लक्ष्मण अयोध्यामें आये । आपके साथ हनुमान, भामण्डल, सुग्रीव आदि भी थे । माताओंको रानियों सहित दोनों भ्राताओंने प्रणाम किया । भरतसे मिले । अयोध्यामें रत्नवृष्टि हुई जिसके कारण निर्धन, धनी हो गये ।

(४) रामके यहा इस प्रकार विभूति थी:—रथ और हाथी बयांलीस लाख, घोड़े नौ करोड़, पांयदलसेना बयांलीस करोड़,

तीन खण्डके विद्याधर और मनुष्य सेवक। रामचंद्रके निजके चार रत्न इस प्रकार थे; हल, मूसल, रत्नमाला और गदा।

(५) लक्ष्मणके सात रत्न थे—शंख, चक्र, गदा, खड्ग, दण्ड, नागशय्या, कौस्तुममणि। आपकी सभाका नाम वैजयन्ती था। नाटकगृहका नाम वर्द्धमानक था। आपके अनेक प्रकारके शीत उष्ण, आदि ऋतुओंके उपयोगी महल थे। आपके पांवोंकी खड़ाऊओंका नाम विषमोचिका था। जिनके द्वारा आप आकाश मार्गसे गमन कर सकते थे। पचास लक्ष कृषि कार्यके उपयोगी हल थे। एक करोड़से अधिक गायें थीं।

(६) राम, लक्ष्मणके आजाने पर भरत अपनी प्रतिज्ञानुसार तप करनेको उद्यत हुए। राम, लक्ष्मणने, उनकी माताओं और भावियोंने बहुत समझाया, पर वे राजी नहीं हुए। एक दिन उन की भावियां उन्हें संसारमें आसक्त करनेके लिये सरोवर पर ले गईं और वहां जल क्रीड़ा करने लगी। भरत कुछ देर तक तो साधारण दृष्टिसे देखते रहे। फिर पूजन करने लगे। इतनेमें त्रैलोक्य—मण्डन नामक हाथी छूट गया और उपद्रव मचाता हुआ जहां भरत थे वहां आ खड़ा हुआ। इनकी भावियाँ भी भयके कारण जलसे निकल इनके पास आ खड़ीं हुई। विचलित हाथीको भरतके समीप देख कर भरतकी माता व अन्य पुरुष घबड़ाये। परन्तु धीरवीर भरत निर्भय हो कर हाथीके सन्मुख खड़े हो गये इन्हें देख कर हाथी शान्त हो गया। हाथीको उस समय पूर्वभव-का ज्ञान हो गया था। भरत और सीता तथा लक्ष्मणकी पटरानी

विशल्या हाथी पर चढ़कर नगरमें आई। खूब दान दिया गया। साधुओंको भोजन करवाया फिर कुटुम्बियोंको भोजन करवा कर भरतने भोजन किया।

(७) भरतने देशभूषण केवलीके समीप दीक्षा धारण की। आपके साथ एक हजारसे कुछ अधिक राजा और दीक्षित हुए।

(८) भरतके दीक्षा लेनेपर इनकी माताने बहुत शोक किया। परन्तु फिर उन्होंने भी आर्यिकाके व्रत लिये। भरत घनघोर तप करके केवली हुए और मोक्ष पधारे।

(९) भरतकी माता महारानी कैकयीने आर्यिकाके व्रत लिये। आपके साथ ३०० स्त्रियां और दीक्षित हुई।

(१०) भरतके दीक्षा ग्रहण कर लेनेपर प्रजा रामके पास आकर राज्यभिषेककी प्रार्थना करने लगी। रामने कहा कि लक्ष्मण नारायण हैं उनका अभिषेक करना उचित है। प्रजा उनके पास गई। परन्तु भ्रातृभक्त लक्ष्मणने अस्वीकार किया। अन्तमें दोनों भ्राताओंका राज्याभिषेक किया गया। दोनोंकी पट्टरानियों सीता और विशल्या-का भी अभिषेक किया गया। राज्यभिषेकके समय राम, लक्ष्मणने जो जहाके राजा थे, उन्हें वहीके राजा माने। जिनका राज्य हरण हो गया था उन्हें राज्य दिया।

(११) अपने लघु-भ्राता शत्रुघ्नसे रामने कहा कि तुम्हें कहांका राज्य चाहिये? शत्रुघ्नने मथुराका मागा। मथुरा उस समय महाराज मधुकी राजधानी थी। मधु महाबलवान् राजा था।

रामने कहा—मधु बलवान् है, उससे झगडा करना अनुचित है। परन्तु शत्रुघ्नने नहीं माना तब रामने मथुराका राज्य और आशीर्वाद दिया। लक्ष्मणने समुद्रावर्त धनुष दिया।

(१२) राम, लक्ष्मणसे मथुराका राज्य तथा कुटुम्बियोंसे आशीर्वाद लेकर शत्रुघ्न मथुराकी ओर चले। साथमे बडी सेना थी। सेनाका सेनापति कृतान्तवक्र था। जब मथुराके समीप पहुँच गये तब यमुना नदीके तटपर डेरे डाले। गुप्त–चरोंको नगरमें भेजकर मधुकी स्थितिका पता मंगवाया। इधर शत्रुघ्नके मंत्री शत्रुघ्नकी विजयके सम्बन्धमें चिन्ता करने लगे। क्योंकि मधुकी वीरतामें बड़ी भारी ख्याति थी। परन्तु कृतान्तवक्रने सबको निसशय कर दिया। गुप्त–चरोंने आकर सूचना दी कि मधु अपनी रानी जयंतीके साथ क्रीडा करता हुआ उपवनमें पड़ा है। राज्यकी ओर ध्यान नहीं देता। मन्त्रियोंकी नही सुनता। यह समय अच्छा समझ शत्रुघ्नने रातोंरात नगर पर अधिकार कर लिया और प्रजाको निर्भय रहने तथा रक्षा करनेका आश्वासन देकर सन्तुष्ट कर दिया। यह हालत देख मधु चढ आया। मधुके पुत्रको कृतान्तवक्रने मारा। तब मधु बड़े कोधसे युद्धको उद्यत हुआ। शत्रुघ्न और मधुसे घनघोर युद्ध हुआ। शत्रुघ्नके शस्त्रप्रहारसे बडे २ योद्धा मरने लगे। मधुका बख्तर छेद डाला। यह हालत देख मधुको वैराग्य हो गया और अपनी ओरसे युद्ध बन्द कर दिया। मधुको शांत देख शत्रुघ्नने भी युद्ध बन्द कर दिया। और जब मधुने सन्यास धारण कर लिया तब शत्रुघ्नने प्रणाम कर मधुसे क्षमा मांगी। शत्रुघ्नको मथुरा पर घनिष्ठ प्रेम था। क्योंकि

शत्रुघ्नके कई पूर्वजन्मोंकी यह नगरी जन्मभूमि थी। मधुके स्वर्ग-गमन करने पर मधुके मित्र चमरेन्द्रने मथुरामें कई प्रकारके रोग फैलाये। उससे प्रजा जहां तहां भाग गई। शत्रुघ्न भी अयोध्या चले गये। कुछ दिनों बाद मथुरामे सप्तऋषियोंका शुभागमन हुआ जिससे मरी रोग नष्ट हो गया। इन ऋषियोंने मथुरामें ही चातुर्मास किया था। रहते मथुरामें थे। परन्तु भोजनके लिये अन्य नगरोंमे जाया करते थे। रोग शांत होने पर शत्रुघ्न मथुराको लौट आये। उनकी माता भी साथ थीं। दोनोंने ऋषियोंकी वंदना की और मथुरामें रहनेका सविनय आग्रह किया। परन्तु ऋषियोंने कहा कि यह धर्मकाल है। इस कालमें लोगोंका कल्याण करना हमारा कर्तव्य है। पचमकाल शीघ्र प्रगट होनेवाला है। अतएव हम एक स्थान पर नहीं रह सकते। ऐसा कह मथुरासे विहार कर गये। जाते समय अयोध्यामें सीताके यहाँ आहार लिया।

(१३) विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें एक रत्नरथ नामक राजा था। उसके यहां एक दिन नारद गये। रत्नरथने अपनी कन्याके लिये वरके सम्बन्धमें पूछताछ की। नारदने कहा कि लक्ष्मणके साथ कन्याका विवाह कर दो। रत्नरथके पुत्रोंने कहा "लक्ष्मण हमारा शत्रु है। तू धूर्तता करता है।" ऐसा कह नारदको मारनेके लिये उद्यत हुए। परन्तु नारद शीघ्रतासे आकाश मार्गसे लक्ष्मणके पास आये। सब वृत्तान्त कहे तथा रत्नरथकी पुत्रीका चित्र बतलाया। उस चित्रपरसे मोहित हो लक्ष्मण

रत्नरथसे युद्ध करनेको उद्यत हुए। दोनोंमें युद्ध हुआ। राम, लक्ष्मणकी विजय हुई। तब मनोरमा (रत्नरथकी कन्या) लक्ष्मणके पास आई। इसे देख लक्ष्मणका क्रोध शांत हुआ। रत्नरथ भी अपने पुत्रों सहित राम, लक्ष्मणके पांवों पडे। नारदसे क्षमा मांगी। मनोरमाके साथ लक्ष्मणका और श्रीदामाके साथ रामका रत्नरथने विवाह किया।

(१४) इसके बाद राम, लक्ष्मणने विद्याधरोंकी दक्षिण श्रेणीको जीता। दक्षिण श्रेणीकी मुख्य राजधानिया इस प्रकार थीं:—रविप्रभ, धनप्रभ, काञ्चनप्रभ, मेघप्रभ, शिवमंदिर, गंधर्वजीत, अमृतपुर, लक्ष्मीधरप्रभ, किन्नरपुर, मेघकूट, मर्त्यनीत, चक्रपुर, रथनूपुर, बहुरव, श्रीमलय, श्रीगृह, अरिञ्जय, भास्करप्रभ ज्योतिषपुर, चंद्रपुर, गंधार, मलय, सिंहपुर, श्रीविजयपुर, भद्रपुर, यक्षपुर, तिलक, स्थानक इत्यादि राजधानियां राम लक्ष्मणने वशमें की।

(१५) लक्ष्मणकी सोलह हजार रानियां और आठ पट्टरानिया थीं। पटरानियोंके नाम इस प्रकार हैः—

१ विशल्या, २ रूपवती, ३ वनमाला, ४ कल्याणमाला, ५ रतिमाला, ६ जिनपद्मा, ७ भगवती, और ८ मनोरमा। रामकी स्त्रियोंकी संख्या आठ हजार थी। और पट्टरानिया चार थीं। प्रथम सीता, दूसरी प्रभावती, तीसरी रतिप्रभा, और चौथी श्रीदामा।

(१६) लक्ष्मणके पुत्रोंकी संख्या २५० थी। उनमेंसे कुछेकके नाम इस प्रकार हैं:—वृषभधरण, चन्द्रशरभ, मकरध्वज, हरिनाग,

श्रीधर, मदन, महाकल्याण, विमलप्रभ, अर्जुनप्रभ, श्रीकेशी, सत्य केशी, सुपार्श्वकीर्ति, इत्यादि। सब पुत्र बडे बलवान् और शस्त्रास्त्र विद्या-पटु थे।

(१७) राम, लक्ष्मणके आधीन नरेशोंकी संख्या सोलह हजार थी और रघुवंशी राजकुमारोंकी संख्या साढ चार करोड थी।

पाठ ३२

सीताका त्याग, रामके पुत्र लवांकुशका जन्म।

(१) गर्भवती होनेके पश्चात् सीताने एक रातमें दो स्वप्न देखे। पहिले स्वप्नमें दो अष्टापद देखे और दूसरेमें अपने आपको पुष्पकविमानसे गिरते देखा। अपने पति रामसे फल पूँछने पर उन्होंने कहा कि पहिले स्वप्नका फल तो यह है कि तुह्मारे गर्भसे युगल पुत्रोंकी उत्पत्ति होगी। दूसरा स्वप्न अनिष्टाकारक है, परन्तु दान पुण्य करनेसे सब अच्छा ही होगा। जब बसन्त ऋतु आई तब राम, लक्ष्मण, सीता आदि वनोंमें गये। गर्भ भारके कारण सीता दिन पर दिन कृश होती जा रही थी। वनमें एक दिन रामने सीतासे पूँछा कि क्या इच्छा है? सीताने कहा कि मुझे स्थान २ के जिन मंदिरोंकी तथा बडे समारोहसे जिन पूजन करनेकी इच्छा है। बस प्रत्येक स्थानके जिन मंदिर ध्वजा, छत्र, तोरणादिसे सजाये गये। पूजन प्रभावनाका समारोह किया गया। तीर्थों पर भी आयोजन हुआ और महेन्द्रोदय नामक उद्यानमें भी जिन मंदिर सुशोभित किया गया तब राम, लक्ष्मण,

सीता सह कुटुम्ब तथा अन्यान्य राजागण सहित महेन्द्रोदय उद्यानमें गये और वहां जल क्रीडा कर फिर राम, सीता आदिने बड़े समारोहके साथ पूजन व नृत्य किया।

(२) राम, लक्ष्मण उसी उद्यानमें ठहरे हुए थे कि नगरके कुछ पुरुष आपके पास आये। उनमेंसे मुखियोंके नाम ये हैं:- विजयसुराजी, मधुमानव, सुलोधर, काश्यप, पिङ्गल इत्यादि। जब ये रामके पास आये तब सीताकी दाँई आँख फुरकी। सीता चिंता करने लगी। परन्तु अन्य रानियोंके कहनेसे कि भाग्य पर विश्वास रक्खो और दान-धर्म करो, सीता कुछ शांत हुई और अपने भद्रकलश भण्डारीको आज्ञा दी कि मेरे गर्भसे सन्तानोत्पत्ति होने तक किमिच्छिक दान दिया जाय। इधर नगरवासी जिस प्रार्थनाके लिये आये थे उसे कहनेका उन्हें साहस नहीं होता था। तब रामके बहुत समझाने और प्राणदान देनेका वचन देने पर उन्होंने कहा कि नाथ! नगरमें स्वेच्छापूर्वक प्रवृत्तिकी वृद्धि होती जाती है। समाजका कुछ भय नहीं रहा है। निर्बलकी स्त्रीको सबल हर ले जाता है। दोनोंका संयोग होता है। निर्बल किसी अन्यकी सहायतासे अपनी स्त्रीको छुडा लाता है और फिर उसे घर ही में रखकर उसके साथ स्त्री व्यवहार रखता है। यदि अधिक कहते हैं तो उत्तर मिलता है कि महाराजा रामचंद्रने भी तो ऐसा ही किया है। यह धर्मके विरुद्ध मार्ग है। निवेदन है कि इसका आप उचित प्रबन्ध करें। यह सुन कर राम चिंतामें पड़े। वे सीताके सम्बंधमें नगर वासियोंके भाव ताड़ गये। राम मन ही मन कभी तो सीताकी पवित्रता और प्रेमका विचार करते,

और कभी स्त्रियोंके स्वभावका विचार कर संदेह करने लगते और कभी लोकनिन्दाका ध्यान कर हृदयमें डर जाते। अन्तमें सीताको वनवास देनेका विचार कर रामने लक्ष्मणको बुलाया। और सर्व वृत्तांत कहे। लक्ष्मण, सीता पर दोष लगानेवालों पर क्रोधित हुए, परन्तु रामने उन्हें समझाया। और कहा कि हमारा कुल प्राचीन कालसे पवित्र और ऊंचा रहा है। उस पवित्रताको बनाये रखनेके लिये मैंने निश्चय किया है कि सीता निकाल दी जाय। लक्ष्मणने सीताको कष्ट देनेके लिये बहुत मना किया। रामसे कहा कि लोकलाजकी पर्वाह नहीं। लोकसम्प्रदाय विचार-शील नहीं होता। उसके विचारों और उसकी की हुई निंदा पर हमें ध्यान नहीं देना चाहिये। पर रामने लक्ष्मणकी विचार-पूर्ण बातोंको नहीं माना। और कृतांतवक्र सेनापतिको आज्ञा दी कि सीताको सर्व सिद्धक्षेत्रोंके दर्शन करवाकर सिंहनाद नामक वनमें छोड आओ। जिन रामने सीताके लिये रावणसे घोर युद्ध किया। जिन रामने सीताके वियोगमें आंसू तक डाले, उन्हीं रामने अपने लघुभ्राताके समझाने पर भी मूर्ख लोक-समाजके आगे आत्म समर्पण कर दिया और अपनी आत्म-निर्बलता प्रगट कर सीताका त्याग किया। कोई चाहे इसे भाग्यकी घटना कहे, चाहे अन्य कुछ: परन्तु हम इन सब बातोंके साथ साथ इसमें रामचंद्रकी निर्बलताका अंश अधिक पाते हैं और जब हम उनके अन्य कृत्योंको देखते हैं तब उनके समान वीरमें इस प्रकारकी आत्म-निर्बलताका पाया जाना हमें आश्चर्यान्वित करता है। कुछ भी हो, रामने अपने वीरतामय चरित्रमें इस निर्बलताको स्थान

देकर जीवनकी शृंखला, विशृंखलित कर दी। हम यहां पर लक्ष्मणके आत्मबलकी प्रशंसा करेंगे और साथमें यह भी कहेंगे कि जब हम लक्ष्मणका चरित्र पढ़ते हैं तब विदित होता है कि उनकी जीवन शृंखला कहीं भी विशृंखलित नहीं हुई। आदिसे अंत तक एकसी ही रही। और यह उनके जीवनकी एक बड़ी भारी विशेषता थी। रामचंद्र इस विशेषतासे वञ्चित रहे। अस्तु, कृतांतवक्र सीताको छोड़ आया।

(३) छोडते समय सीताको बहुत दुःख हुआ। परन्तु पतिभक्तिपरायण सीताने अपने स्वामी रामके लिये किसी प्रकार अपमान जनक शब्दोंका प्रयोग नहीं किया। सीताने कृतांतवक्रसे यही कहा कि:—कृतांतवक्र! स्वामीसे कहना कि सीताने कहा है मेरे त्यागके सम्बन्धमें आप किसी प्रकारका विषाद न करना, धैर्य सहित सदा प्रजाकी रक्षा करना, प्रजाको पुत्र समान समझना, सम्यग्दर्शनकी सदा आराधना करना, राज्यसम्पदाकी अपेक्षा सम्यग्दर्शन कहीं श्रेष्ठ है। अभव्य जीवोंके द्वारा की जानेवाली निन्दाके भयसे सम्यग्दर्शनका त्याग नहीं करना। जगत्‌की बात तो सुनना परन्तु करना वही जो उचित हो। क्योंकि वह गाडरी प्रवाहके समान है। दानसे सदा प्रेम रखना, मित्रोंको अपने निर्मल स्वभावसे प्रसन्न रखना, साधुओं तथा आर्यिकाओंको प्रासुक आहार सदा देना, चतुर्विध संघकी सेवा करना, क्रोध, मान, माया, लोभको इनके विपक्षी गुणोंसे जीतना। और मैंने कभी अविनय की हो तो मुझे क्षमा करना।" ऐसा कह वह सती साध्वी सीता रथसे उतर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

सीताकी इस दशासे कृतान्तवक्र भी बहुत दुःखी हुआ। और जिस पराधीनताके कारण उसे यह कृत्य करना पड़ा। उस पराधीनताकी वह निंदा करने लगा। अतमें सीताको छोड़ वह चला गया। होश आने पर सीता रुदन करने लगी।

(४) इसी वनमें पुंढरीकपूरका राजा वज्रजघ अपनी सेना सहित हाथी पकडने आया था। सो उसके सैनिकोंने जब सीताका रुदन सुना तब ये लोग उसके पास गये। सीता इन्हें देख भय करने लगी। परन्तु सैनिकोंने सीताको धैर्य बँधाया और कहा कि राजा वज्रजंघ परमगुणी और शीलवान् है, वह आपकी सहायता करेगा। ऐसा कह सैनिकोंने वज्रजंघसे जब सीताके समाचार कहे तब वह सीताके पास आया और सीताको सर्व वृत्तान्त पूँछ कर कहने लगा कि तुम मेरी धर्म—भगिनी हो; मेरे घर पर चलो। वहीं आनन्दसे रहना।

वज्रजघ पुढरीक नगरीका राजा था। इसके पिताका नाम द्वारदवाय और माताका सुबन्धु था। सोमवंशी था।

वज्रजघकी इस प्रकार अनचीती सहायतासे सीता गद्गद हो गई और वज्रजंघको धन्यवाद दे उसके साथ चलनेको उद्यत हुई। वज्रजंघ सीताको पालकीमें विठला कर पुढरीकपुरको ले गया। मार्गमें प्रजाने भी सीताकी अभ्यर्थना की। पुंढरीकपुरमें भी सीताका प्रजाने बहुत भारी स्वागत किया। नगर सजाया। द्वार बनवाये। दान दिया। पूजन हुई। महराज वज्रजंघके कुटुम्बियोंने भी सीताका परमहर्षके साथ स्वागत किया। और सेवामें तत्पर रहे।

(५) श्रावण सुदी १५ को श्रवण नक्षत्रमें रामचन्द्रके दोनों पुत्रोंका जन्म महाराजा वज्रजंघके गृह पर हुआ। एकका नाम अनङ्ग लवण और दूसरेका मदनांकुश नाम रक्खा। ये दोनों बड़े सुन्दर और शक्तिवान् थे।

पाठ ३२.

रामचंद्रके पुत्र अनङ्गलवण और मदनांकुश तथा पितापुत्रका युद्ध।

(१) अनङ्ग-लवण और मदनाकुश कुमार-रामचंद्रके पुत्र थे। ये परम प्रतापी, तेजस्वी, सुन्दर और महा बलवान् चरम-शरीरी थे।

(२) जब ये बड़े हुए तब पुंडरीक नगरीमें इनके भाग्योद-यसे एक क्षुल्लकव्रतधारी श्रावकका शुभागमन हुआ। ये खण्ड वस्त्रके धारी, वैरागी और शान्त परिणामी थे। इनका नाम सिद्धार्थ था। ये दोनों कुमारों पर स्नेह करने लगे। और पढ़ाने लगे। इन्होंने कुमारोंको शस्त्रास्त्रकी भी शिक्षा दी। दूसरेके शस्त्रोंका निवारण और अपने शस्त्रोंके प्रहारकी विधिमें कुमारोंको सिद्धार्थ (क्षुल्लक)ने पारङ्गत कर दिया।

(३) जब ये दोनों कुमार शिक्षित हो गये तब वज्रजंघने अपनी कन्या शशिभूता और अन्य बत्तीस कन्याओंके साथ अनङ्गलवणका विवाह कर दिया तथा मदनांकुश कुमारके लिये पृथ्वीपुरके राजा पृथुके पास दूत भेजकर कहलाया कि तुम अपनी कन्या मदनांकुश कुमारको दो।

(४) परन्तु पृथु इस संदेश पर क्रोधित हो कहने लगा कि मैं अपनी कन्या अज्ञात कुल शीलवान् पुरुषोंको नहीं देना चाहता। इस पर दोनों राज्योंमें युद्ध हुआ। राजा वज्रजंघने पृथुके मुख्य सहायक व्याघ्ररथको बाँध लिया। तब पृथुने पोदनापुर नरेशको सहायतार्थ बुलाया। वज्रजंघने भी अपने पुत्रोंको बुलाया। तब सीताके दोनों बालक कुमार युद्धार्थ जानेको प्रस्तुत हुए। सीताने यह कह कर रोका कि अभी अवस्था बहुत छोटी है। परन्तु दोनों वीरोंने नहीं माना। माताको उत्तर दिया कि हम योद्धा है। छोटी चिनगारी बड़े २ बनोंको भस्म कर डालती है। जो वीर होते हैं वे ही पृथ्वीका उपभोग कर सकते हैं। अपने पुत्रोंके इस उत्तरसे प्रसन्न हो माता सीताने आशीर्वाद देकर विदा किया। दोनों कुमारोंके साथ पृथुका घनघोर युद्ध हुआ। जब पृथु भागने लगा तब कुमारोंने कहा कि भागते कहाँ हो? हमारा कुल शील देखते जाओ। जब इनसे पीछा छुड़ाना उसे कठिन मालूम हुआ तब हाथ जोड़ कर इनके आगे खड़ा हो गया और अपनी कन्या कनकमालाका मदनांकुश कुमारके साथ विवाह किया।

(५) फिर दोनों भाई दिग्विजयको निकले। सोसुह्य देश, मगध देश, अंग देश और वंग देशको जीतकर पोदनापुरके राजाके साथ लोकाक्ष नगर गये और उस ओरके बहुतसे राजाओंको जीता। कुबेरकान्त नामक महाभिमानी राजाको अपने आधीन किया। फिर लम्पाक देश, विजयस्थल, ऋषि कुन्तल देश, को जीतते हुए सालाय, नन्दि, नन्दन, स्यघल, शलभ, अनल, भीम, मूतरव इत्यादि अनेक देशाधिपतियोंको वश कर सिन्धु

नदीके पार गये। समुद्र तटके अनेक राजाओंको जीता। भीरु देश, पवनकच्छ, चारव, त्रजट, नट, सक्र, केरल, नैपाल, मालव, अरल, सर्वरत्रि, शिरपार, शैल गोशील, कुशीनार, सूरपार, कमनर्त, विधि, शूरसेन, बल्हीक, उलूक, कौशल, गान्धार, सौवीर, अन्ध्र, काल, कलिङ्ग इत्यादि अनेक देशों पर विजय-पताका फहराते हुए दोनों कुमार पुंडरीक नगरीमें वापिस आये। अपने विजयी युगल कुमारोंको देखकर माता सीता परम प्रसन्न हुई। और नगरमें बहुत उत्साहसे कुमारोंका स्वागत हुआ।

(६) एक दिन नारद कृतान्तवक्र सेनापतिसे सीताको जिस स्थान पर छोडा था, उस स्थानका पता पूछ [illegible] ढूँढ रहे थे और ये दोनों कुमार भी उसी वनमे वन-क्रीड़ार्थ आये थे। जब इन्होंने नारदको देखा तो भक्तिवश प्रणाम किया। नारदने आशीर्वाद दिया कि तुम राम, लक्ष्मणके समान बनो। तब युगल कुमारोने पूछा कि राम, लक्ष्मण कौन हैं? नारदने राम, लक्ष्मण और सीताका सब वृत्तान्त कहा। फिर कुमारोंने पूछा कि अयोध्या कितनी दूर है? नारदने कहा कि १६० योजन। यह सुन अनङ्गलवण बोले कि मैं राम, लक्ष्मणसे युद्ध करूँगा। ऐसा कह वज्रजंघसे कहा कि सेना तैयार कराओ। कुमारोंके विद्या-गुरु सिद्धार्थ नारदसे कहने लगे कि कुटुंबियोंमें परस्पर युद्ध ठनवा कर आपने अच्छा नहीं किया। सीता भी रोने लगीं। और कहा कि तुम्हारा धर्म नहीं है कि युद्ध करो। कुमारोंने उत्तर दिया कि पिताजीने आपको विना न्याय वनवास दिया है। उन्हें

बहुत अभिमान है; हम उनका अभिमान चूर्ण करेंगे। ऐसा कह दोनों कुमार युद्धार्थ उद्यत हुए। अपने साथ बहुत बड़ी सेना ली। ग्यारह हज़ार राजा इनके साथी बने और युद्धके लिये चले।

(७) पर-चक्रको चढ़ाई करते देख राम, लक्ष्मण भी उद्यत हुए और पाच हजार राजाओं सहित लड़ने लगे। दोनों ओर घोर युद्ध हुआ। सीताके भाई भामण्डल भी रामकी सहायतार्थ आये। परन्तु जब नारदने सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा तब युद्धमें सम्मिलित न हो सीताके पास गये और उन्हें विमानमें बिटलाकर युद्ध क्षेत्रमें लाये। और युद्ध देखने लगे। दोनों ओरसे घनघोर युद्ध हुआ। कुमारोंका प्रहार इस रीतिसे होता था कि जिससे राम, लक्ष्मणके मर्म स्थानपर किसी प्रकारका आघात न होने पावे। क्योंकि दोनों कुमार अपने इन पूज्योंसे परिचित थे। परन्तु राम लक्ष्मण इन्हें नहीं जानते थे। हनुमानने भी युद्धमें भाग नहीं लिया। क्योंकि उन्हें भी इन दोनों शत्रुओंका पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञात हो गया था। दोनों कुमार बडी चतुरतासे युद्ध करते थे। रामके हल, मूसलोंने काम देना छोड़ दिया। लक्ष्मणका चक्र लौट आया तब इन्हें संदेह हुआ कि मालूम होता है कि बलभद्र नारायण ये ही दोनों हैं, हम नहीं हैं। तब दोनों कुमारोंके गुरु क्षुल्लक प्रवर सिद्धार्थने आकर कहा कि आप संदेह मत करो बलभद्र, नारायण तो आप ही हैं। परन्तु ये श्रीमान् रामचन्द्रके पुत्र हैं। इसलिये आपके शस्त्र कुछ काम नहीं दे रहे हैं। जब यह गुप्त रहस्य राम, लक्ष्मणको मालूम हुआ तब उन्होंने शस्त्र पटक दिये और दोनों कुमारोंके पास आये। पिता

और काकाको शस्त्र डालते देख कुमारोंने भी शस्त्र डाल दिये और पिता तथा काकाके चरणोंपर पड़े। सीता यह देख पुंडरीकपुरको चली गई। दोनों कुमारोंका अयोध्यामें नगर प्रवेश बड़े आनंद उत्साहके साथ कराया गया।

पाठ २४.

सीताका अयोध्यामें पुनरागमन, अग्निपरीक्षा दीक्षा ग्रहण और स्वर्गवास।

(१) जब सीताके युगल कुमार अयोध्यामें आ गये तब सुग्रीव, हनुमानादिने सीताको बुलानेके लिये रामसे कहा। रामने कहा कि जब सीताका त्याग किया गया है तब विना परीक्षाके अब उसका ग्रहण करना अनुचित है। सबोंने कहा कि आप जो उचित समझें वह परीक्षा कर लें; पर बुलावें अवश्य। तब रामने स्वीकार किया।

(२) सब आधीनस्थ राजा बुलाये गये और सीताको लेने हनुमान, सुग्रीवादि गये। राजसभाका अधिवेशन हुआ। सीता आई और रामके आगे खड़ी हो गई। रामको सीताको देखते ही क्रोध उत्पन्न हुआ कि यह बडी ढीठ स्त्री है, जो त्याग देने पर भी फिर आ गई है। सीताने रामका भाव समझ लिया और क्रोधमिश्रित विनयके साथ कहा कि आप बडे निर्दयी है। मेरे पर अत्याचार करते हैं। लोक समूहके कहने पर आपने मुझ निरपराधाका त्याग किया है। आपको त्याग ही करना था तो

आर्यिकाके पास मुझे छुड़वाने। अस्तु, अब आप उचित समझें वह मेरी परीक्षा करलें। रामने आज्ञा दी कि सीता! तुम रावणके गृहमें कई मासों तक रही हो अतएव तुम्हारी शील परीक्षाके अर्थ निर्धारित किया जाता है कि तुम अग्निमें प्रवेश करो। यदि तुम शीलवान होगी तो अग्निसे तुम्हारी कुछ भी हानि नहीं होनेकी। सती, साध्वी सीताने यह परीक्षा देना स्वीकार किया। परन्तु दूसरे लोग इस कठिन परीक्षाको सुनते ही विलचित हो गये। और रामसे कहने लगे कि सीता पवित्र है। ऐसी कठिन परीक्षा लेना उचित नहीं. पर रामने नहीं माना। तब तीनसौ हाथ लम्बा-चौडा अग्निकुण्ड बनाया गया।

(३) उसी रात्रिको सकल-भूषण मुनिके कैवल्य ज्ञानकी पूजाऽर्थ इन्द्र जा रहे थे। मार्गमें अग्निकुण्डका आयोजन देख मेघकेतु नामक देवने इन्द्रसे कहा कि, देखिए! पतिव्रता, परम शीलवान् सीताकी परीक्षाके लिये यह प्राणघाती भयङ्कर आयोजन हो रहा है। इससे सीताकी रक्षा करना उचित है। इन्द्रने कहा कि मैं केवलज्ञानकी पूजाऽर्थ जाता हूं, तुम सीताकी रक्षा करो। तब वह देव वहीं ठहर गया।

(३) जब अग्निकुण्डमें चन्दनादिके द्वारा भयानक अग्नि प्रज्वलित हो गई, जिसे देख सीताके भविष्यकी लोगोंको चिन्ता होने लगी और बड़े २ धीर वीरोंका धैर्य च्युत हुआ। राम, लक्ष्मण तक रोने लगे, तब सीताने पञ्च परमेष्ठीका स्मरण कर धैर्य युक्त मुद्रासे गम्भीर स्वरमें कहा कि यदि मैंने मनसे, वचनसे, कायासे

जागृतावस्थामें अथवा स्वप्नावस्था तक में रघुनाथ रामचन्द्रके सिवा अन्य पुरुषसे पतिका भाव किया हो तो यह अग्नि मेरे इस शरीरको भस्म कर दे। मेरे सत्कृत्य और दुत्कृत्यकी साक्षी रूप यही अग्नि है। बस, इतना कहकर सीता कुण्डमें जा कूदी, जन-समूहकी आंखें मुंद गई। सहस्रों मुखोंसे हाय २ की अस्पष्ट ध्वनि निकल पड़ी। परन्तु उसी क्षणमें वह अग्निकुण्ड, जलकुण्ड हो गया। उस ऊपर बैठे हुए देवने यह सब लीला कर डाली। जलकुंडमें कमल खिले हुए थे। एक बड़े कमलपर सिंहासन था उस पर सीता बिराजमान थीं। अब जल बढ़ने लगा और यहां तक बढ़ा कि लोगोंके कंठ तक आ लगा। कई डूबने लगे। फिर शोर मचा और "माता रक्षा करो!" "रक्षा करो!" की ध्वनि होने लगी। सीताने फिर गम्भीर स्वरमें कहा कि इस बिकट समयमें जिसने मेरी सहायता की है, उससे प्रार्थना है कि वही इन लोगोंकी भी रक्षा करे। वैसा ही हुआ। दैवीलीला संवरण हो गई।

(४) सीता, रामके समीप आई। रामने गृह चलनेके लिये कहा, परन्तु आत्म-कल्याणाभिलाषिनी सीताने अपने सिरके केशोंका लोंच किया और पृथ्वीमति आर्यिकाके निकट दीक्षा ली। अब राम, सीताके वियोगसे फिर दुःखी होने लगे और कहने लगे कि अग्निकुंडसे सीताकी रक्षा कर देवोंने बड़ा उपकार किया। परन्तु उसे मुझसे छुड़ाकर अच्छा नहीं किया, मैं देवोंसे युद्ध करूंगा। लक्ष्मणने बहुत कुछ समझाया। फिर सकल-भूषण स्वामीके समवशरणमें जाकर सम्बोधको प्राप्त हुए।

रामको इस समवशरणमें ही यह विदित हुआ कि मैं इसी भवमें मोक्ष जाऊंगा ।

(९) राम, लक्ष्मण एक वार सीताकी वन्दनार्थ गये। सीता तपश्चर्याके कारण कृश हो रही थी। सीताकी इस अवस्थाको और पूर्वके वैभवकी अवस्थाको देखकर राम, लक्ष्मणने बहुत पश्चात्ताप किया। फिर दोनोंने प्रणाम किया और घर लौट आये। सीताने घोर तप किया, जिसके फलसे स्त्रीलिङ्ग छेदकर अच्युतेन्द्र हुई ।

पाठ २५

सकलभूषण ।

ये विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके विद्याधर राजा थे। इनके पिताका नाम सिंहविक्रम और माताका नाम श्री था। इनके ८०० रानियां थीं। पटरानीका नाम किरणमण्डला था, जो चित्रकलामें निपुण थी। अन्य रानियोंके कहनेसे किरणमण्डलाने अपने मामाके पुत्र हेमसिखका चित्र दीवाल पर बनाया। चित्रको देख सकलभूषणको किरणमण्डलाके चरित्रमें संदेह हुआ। परन्तु जब अन्य रानियोंने कहा कि यह हमने आग्रहसे बनवाया था तब सन्देह मिटा। एक दिन फिर कहीं रात्रिको किरणमण्डलाके मुखसे स्वप्नमें अचानक हेमसिखका नाम निकल गया। अब तो सकलभूषणका संदेह फिर ताजा हो गया। इस पर उन्होंने वैराग्य धारण कर मुनिव्रत ले लिये। किरणमण्डला भी आर्यिका हो गई। परन्तु उसके हृदयमें पति द्वारा लगे हुए

कांछनका द्वेष बना रहा। वह पवित्र और सुशील थी। इसलिए इस झूठे दोषका द्वेष उसके हृदयसे नहीं निकला। वह मर कर राक्षसी हुई। और फिर सकलभूषण मुनिके तपमें उपसर्ग किया, जिसे सहन करनेसे कर्मोंका नाश हुआ। और सकलभूषण कैवल्यी हुए।

पाठ ३६.

हनुमानका दीक्षा ग्रहण।

एक समय वसन्त ऋतुमें हनुमानको जिन दर्शनकी इच्छा उत्पन्न हुई। अतः वे रानियों और मंत्रियों सहित सुमेरु पर्वत पर गये। वहां रानियों सहित पूजन कर घरको लौटे आ रहे थे। मार्गमें संध्या हो जानेसे सुरदुन्दुभी पर्वत पर ठहर गये। परस्परमें बातें कर रहे थे कि उन्हें आकाशमें एक तारा टूटता हुआ दिखलाई दिया। बस, आपको संसारकी असारताका ध्यान आया और दीक्षा लेनेको उद्यत हो गये। दूसरे दिन चैलवान् नामक वनमें सन्त-चारण नामक चारण ऋद्धिधारी मुनिसे दिग-म्बरी दीक्षा धारण की। इनके साथ सातसौ पचास अन्य राजा-ओंने भी दीक्षा ली। अन्तमें घोर तपसे कर्मोंको नष्ट कर तुङ्गी-गिरि नामक पर्वतसे हनुमान मोक्ष गये।

पाठ ३७.

लक्ष्मणके ज्येष्ठ पुत्र।

एक समय काञ्चन नगरके राजा काञ्चनरथने अपनी दो पुत्रियोंका स्वयंवर किया था। उन पुत्रियोंने रामचन्द्रके कुमारोंके गलेमें वरमाला डाली। इस पर लक्ष्मणके ज्येष्ठ पुत्रोंके सिवाय अन्य पुत्र बहुत अप्रसन्न हुए। और सीताके पुत्रोंसे युद्ध करनेको उद्यत हो गये। तब उन्हें लक्ष्मणके ज्येष्ठ आठ पुत्रोंने बहुत कुछ समझा कर शान्त किया। और जगत्‌की यह स्थिति देख माता-पिताकी आज्ञासे आठों पुत्रोंने दीक्षा धारण की। इनके दीक्षा गुरु महाबल नामक मुनिराज थे। कर्मोंका क्षय कर लक्ष्मणके आठों पुत्र मोक्ष गये।

पाठ ३८

राम लक्ष्मणके अंतिम दिन

(८१) एक बार स्वर्गकी सभामें सौधर्म इन्द्र कह रहा था कि अबकी बार यदि मैं यहांसे चलकर मनुष्य योनि प्राप्त करूं तो अवश्य अपने कल्याणका प्रयत्न करूं। एक देवने कहा कि यह सब कहनेकी बातें हैं। जब मनुष्य योनि प्राप्त हो जाती है तब कुछ याद नहीं रहता। देखिये! जब रामचंद्र यहां थे तब अपने कल्याणार्थ मनुष्य होनेकी कितनी तीव्र इच्छा प्रगट करते थे। परन्तु अब सब भूल गये। इन्द्रने उत्तर दिया कि राम भूले नहीं हैं किंतु उन्हें लक्ष्मणके साथ इतना भारी स्नेह है कि वे

लक्ष्मणको छोड़ नहीं सकते। यह बात सुन देवोंने राम, लक्ष्मणके स्नेहकी परीक्षा करनेकी ठानी। और मध्यलोकमें आकर रामचंद्रके यहां महलोंमें ऐसी कुछ माया फैलायी कि रानियां रोने लगीं। मंत्री शोकाकुल हो गये। फिर लक्ष्मणको संदेश भेजा कि रामचंद्रका देहांत हो गया। इतना कहते ही लक्ष्मण हाय कर गिर पडे और प्राण पखेरू उड गये। अब वास्तवमें शोक छा गया। सारा कुटुम्ब रोने लगा। राजधानी शोकपूर्ण हो गई। राम भी सुनते ही लक्ष्मणके पास आये परन्तु उन्हें विश्वास नहीं हुआ कि लक्ष्मणका देहांत हो गया। वे तो यही कहते थे कि बालक है। गुस्सा हो गया है। अतएव वे लक्ष्मणके साथ ऐसी बातें करने लगे जैसे कि कोई किसी रूठे हुएको मना रहा हो। विभीषण, विराधित, सुग्रीव जब जब समझाते और कहते कि लक्ष्मणका देहांत हो गया है तब २ रामचंद्र उन्हें कहते कि तुम्हारे कुटुंबियोंका देहान्त हो गया। इस तरह स्नेहमें विह्वल हो गये थे। इधर रामचंद्रकी यह स्थिति देख शम्बूकके भाई सुंदरके पुत्रने रावणके नाती अर्थात् इन्द्रजीतके पुत्र वज्रमालीको उस्काया कि यह समय वैर निकालनेका ठीक है। बस, युद्धकी तैयारी कर अयोध्या पर चढाई कर दी। जब रामसे कहा गया तब लक्ष्मणके शवको कन्धे पर रखकर तीर कमान हाथमें ले रामचंद्र युद्धको निकले। परन्तु स्वर्गसे दो देवोंने आकर सहायता की। अयोध्याका भयानक स्वरूप बनाकर और अगणित सेना मायामय दिखला कर शत्रुओंको भगा दिया। ये दोनों देव पूर्व जन्मके जटायु पक्षी और कृतान्तवक्र सेनापतिके जीव थे।

फिर रामचंद्र शवको लिये २ इधर उधर भटकने लगे। विभीषण आदि राजा भी उनके साथ थे। उक्त दो देवोंने रामको समझानेका प्रयत्न किया। कभी सूखी बालू पेरते थे, कभी सूखे लकड़को न्हिलाते थे। जब रामचंद्र कहते कि यह क्या मूर्खता करते हो तब वे कहते कि आप भी तो मूर्खता कर रहे हो जो शवको लिये २ फिरते हो। पर रामके ध्यानमें कुछ नहीं आता। एक बार उन देवोंने एक मृत शरीरको लाकर उसे न्हिलाया और तिलक वगैरह लगाया तब फिर रामने उनसे कहा। उनने कहा कि आप भी ऐसा ही कर रहे हैं। अब रामका भ्रम दूर हुआ और उन्होंने सरयू नदी के तटपर लक्ष्मणके शवका दाह किया। उन देवोंने अपना स्वर्गीय रूप प्रगटकर रामचंद्रसे सब वृत्तात कहा, जिसे सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए। लक्ष्मणका शव दाह करनेके पश्चात रामको वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने सबसे छोटे भाई शत्रुघ्नको राज्य समालनेकी आज्ञा दी। परंतु उन्होंने भी वैराग्य धारण करनेका विचार प्रगट किया। तब अपने नाती अनङ्गलवणके ज्येष्ठ पुत्रको राज्यका भार दिया। उनके पुत्र अनङ्ग लवणादिने दीक्षा धारण की। परंतु रामचन्द्र, पुत्रकी दीक्षाके कारण कुछ भी चिंतित नहीं हुए। रामके समान विभीषणने अपने पुत्र सुभूषणको, सुग्रीवने अङ्गदको अपना राज्य दिया इतने ही में अर्हदास सेठ रामके पास आये। रामने चारों संघके कुशल समाचार पूछे तब उन्होंने कहा कि यहां भगवान् मुनिसुव्रतके कुलोत्पन्न सुव्रत नामक मुनि आये हैं, जो चार ज्ञानके धारी हैं। यह समाचार सुन सब उक्त मुनिकी वंदनाके लिये

गये और रामने बिभीषण, सुग्रीव, शत्रुघ्न आदि कुछ अधिक सोलह हज़ार राजाओंके सहित दीक्षा ली। और सत्ताईस हजार स्त्रियोंने आर्यिकाकी दीक्षा ली। दीक्षा लेकर आपने पहिले पाच उपवास किये। छठवें दिन जब आप नन्दस्थली नगरमें पारनेके लिये गये तब वहा बड़ा आनंद हुआ। कोलाहल होने लगा। हाथी, घोडे छूट गये। यह देख राजाने प्रजाको आज्ञा दी कि तुम विधि नहीं जानते हो। इसलिये राममुनिको आहार मत देना मै दूंगा। और अपने सामन्तोंको रामचंद्रके पास भेजकर भोजनार्थ उन्हें बुलाया। इस अंतरायके कारण राम फिर बनमें लौट गये। और फिर पाच दिनका उपवास धारण किया तथा प्रतिज्ञा की कि यदि बनमें ही पारना मिलेगा तो आहार करूंगा अन्यथा नहीं। जिस दिन रामके ये पिछले पांच उपवास पूर्ण होने वाले थे उसी दिन एक प्रतिनन्द नामक राजाको एक घोडा ले भागा। और वह उसी वनके सरोवरमें राजाको साथ लिये हुए फँस गया। तब उक्त राजाकी रानी भी सामंतोंको साथ लेकर, घोड़ेपर बैठ राजाके पीछे भागी, और राजाके पास पहुंच सरोवरमेंसे उसे निकाला। फिर भोजन बनाया। उपवास पूरे हो जानेके कारण राम भी आहारार्थ उधर निकल आये। राजा, रानीने आहार दिया, जिसके कारण पंचाश्चर्य हुए। विहार करते करते राम कोटिशिला पर पहुंचे, वहां आपने घोर तप किया। रामकी यह स्थिति देखकर सीताके जीवने स्वर्गमें विचार किया कि यदि रामका देहांत होकर यहां स्वर्गमें जन्म हो तो हम दोनों मित्र होकर रहें। इस विचारसे रामके ध्यानको उच्च स्थि-

तिमें न पहुंचने देनेके लिये वह रामके पास कोटिशिला पर आया और सीताका रूप धारण कर तथा अन्य विद्याधरोंकी स्त्रियां मायामय बनाकर रामचंद्रसे प्रेमके लिये प्रार्थना करने लगा। परन्तु राम अपने ध्यानसे चलायमान नहीं हुए। अतएव चार घातिया कर्मोंका नाश हुआ और माघ सुदी १२ की पिछली रात्रिमें आपको कैवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ। देवोंने पूजन की, गन्ध कुटीकी रचना की और विहारकी प्रार्थना की! विहार हुआ। स्थान २ पर उपदेश दिया गया। अंतमें निर्वाणको पधारे। रामचद्रकी आयु १७००० वर्षकी थी। शरीर १६ धनुष ऊंचा था। आपने ९० वर्ष तप कर कर्मोंका नाश किया और मोक्ष प्राप्त की।

(२) अपने पिताको लक्ष्मणके शोकमें विह्वल होते देख अनङ्ग-लवणको बहुत वैराग्य हुआ। और दीक्षा धारण कर दोनों कुमार मोक्ष पधारे।

पाठ ३९.

रामचन्द्र-लक्ष्मण।

[गत पाठोंमें राम, लक्ष्मण तथा रावणका जो वर्णन किया गया है, वह पद्मपुराणके आधारसे किया गया है। अन्य पाठोंमें तो जहां जहां पद्मपुराण और उत्तर पुराणके कथनमें हमने अतर पाया वहां वहां नोट आदिमें उसका उल्लेख कर दिया है; पर राम, लक्ष्मणादिके वर्णनमें दोनों शास्त्रोंमें इतना भारी अंतर है कि उसे स्थानके स्थान पर बतला देना एक प्रकारसे कठिन है। अतः दोनों शास्त्रोंके वर्णनको भिन्न भिन्न दो स्वतंत्र पाठोंके द्वारा देना

उचित समझा गया। अतः इस पाठमें उत्तरपुराणके आधारसे रामादिका वर्णन दिया जाता है। इन दो शास्त्रोंमें इतना भारी अंतर क्यों है? इसका अभी कोई शास्त्रीय आधार नहीं मिला है, केवल युक्तियोंसे ही इसका समाधान किया जाता है। श्रीमान् स्याद्वादवारिधि, स्वर्गीय पं० गोपालदासजीने एकबार इसका समाधान जैनमित्र पत्र द्वारा इस प्रकार किया था कि इन विरोधोंसे जैन धर्मके तात्त्विक विवेचन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि तात्त्विक विवेचनमें पुण्य और पाप ये दो पदार्थ माने हैं। इन दो पदार्थोंके उदाहरण स्वरूप राम रावणादिकी कथाएं हैं। इन कथाओंमें यदि किसी व्यक्तिके मातापितादिके सम्बंधमें यदि कुछ अंतर भी हुआ तो भी उससे पुण्य, पापके स्वरूपमें कुछ बाधा नही आती। युक्ति और सिद्धांतकी दृष्टिसे पंडितजीका यह कथन पूर्णतया मान्य है। और धर्म मार्गमें युक्ति व सिद्धांतका ही अधिक महत्त्व है, पर इतिहासकी दृष्टिसे इस युक्ति पर अधिक आधार नहीं रखा जा सकता। कुछ भी हो जब तक इस विरोधके सम्बंधमें कोई प्राचीन शास्त्रीय आधार नही मिलता तब तक हमें पं० गोपालदासजीकी युक्ति पर श्रद्धा रखकर अपने ग्रथोंका पठन पाठन करना ही उचित है। और यह सत्य भी है कि इस प्रकारके विरोधसे हमारे कल्याणके मार्गमें कुछ बाधा उत्पन्न भी नहीं हो सकती।]

सगरका राज्य न रहने पर दशरथ अपने पुत्र राम लक्ष्मण सहित अयोध्यामें आये। पहले बनारसमें राज्य करते थे। अयोध्या ही में भरत और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। इन दोनोंकी माताओंके

नाम उत्तरपुराणमें नहीं है। राजा जनक मिथिलाके राजा थे, रानीका नाम वसुधा था। इनकी पुत्रीका नाम सीता था। वह जब युवा हुई तब अनेक राजाओंने उसे मांगा, पर जनकने कहा कि मैं उसे ही दूंगा जिसका दैव अनुकूल होगा। एक दिन राजा जनकने सभामें कहा कि सगर, सुलसा, विश्वासु जिन यज्ञके कारण स्वर्गमें गये हैं अपनेको भी वह यज्ञ करना चाहिये। इस पर कुशलमति सेनापतिने कहा कि इस कार्यमें नागकुमार जातिके देव परस्पर मत्सरताके कारण विघ्न डाला करते हैं। और विद्याधरोंके आदि पुरुष नमि, विनमि पर नागकुमारके अहमिंद्रका उपकार है इसलिये वे भी उनकी सहायता करेंगे। यज्ञकी नवीन पद्धति महाकाल नामक असुरने चलाई है उसके शत्रु भी विघ्न करेंगे इसलिये इस कार्यमें बलवान सहायकोंकी आवश्यकता है। यदि दशरथके पुत्र राम लक्ष्मण सहायक हो जावें तो यह कार्य हो सकता है। उन्हें आप यदि सीता देना स्वीकार करेंगे तो वे अवश्य सहायक होंगे। जनकने दशरथको इसी अभिप्रायका पत्र लिखा। तथा अन्य राजकुमारोंको भी बुलाया। दशरथने सभामें पूछा तब आगमसार नामक मंत्रीने यज्ञका समर्थन किया और कहा कि राम लक्ष्मणको यज्ञकी सहायतार्थ भेजनेसे दोनों भाइयोंकी अच्छी गति होगी। परन्तु अतिशयमति मंत्रीने इसका विरोध किया कि यज्ञ करनेसे धर्म नहीं होता। महाबल सेनापतिने कहा कि यज्ञमें पाप हो अथवा पुण्य इससे हमें प्रयोजन नहीं। हमें अपने कुमारोंका प्रभाव राजाओंमें प्रगट करना चाहिये। दशरथने कहा कि यह विचारणीय बात है।

और मत्री सेनापतिको विदाकर पुरोहितको बुलाया। और इसी सम्बन्धमें पूछा। पुरोहितने निमित्त शास्त्र तथा पुराणोंके अनुसार कहा कि यज्ञमें हमारे दोनों कुमारोंका महोदय प्रगट होगा, यह निःसदेह है। क्योंकि ये हमारे कुमार आठवें बलभद्र नारायण हैं और ये रावण नामक प्रति नारायणको मारेंगें।

पुरोहितने रावणके पूर्वभव कहकर कहा कि मेघकूट नगरका राजा सहस्रग्रीव था उसे उसके भाईके बलवान पुत्रने निकाल दिया। सहस्रग्रीव वहासे निकलकर लकामें आया और वहा तीसहजार वर्षतक राज्य किया उसका पुत्र शतग्रीव, इसने २५ हजार वर्ष तक राज्य किया। इसका पुत्र पचासग्रीव था इसने २० हजार वर्ष राज्य किया। ५० ग्रीवका पुत्र पुलमप हुआ। इसने १५ हजार वर्ष राज्य किया। इसकी रानीका नाम मेघश्री था। इनके दशानन नामक पुत्र हुआ। इसकी आयु १४००० वर्षकी है। एक दिन यह दशानन अपनी रानीके साथ वनमें क्रीड़ा करने गया था। वहा विजयार्द्ध पर्वतके अचेलक नगरके स्वामी राजा अमितवेगकी पुत्री मणिमति विद्या सिद्ध कर रही थी। उस पर यह दशानन आशक्त हो गया और उसकी विद्या हरण कर ली। वह विद्या सिद्धके अर्थ बारह वर्षसे उपवासकर रही थी अतः कृश हो गई थी। उसने निदान किया कि मैं इस दशाननको ही आगामी भवमें पुत्री होकर इसे मारूंगी। मरकर वह मदोदरीके यहा पुत्री हुई। जन्मके समय भूकम्प आदि हुए। निमित्त ज्ञानियोंने कहा कि यही रावणके नाशका कारण होगी। यह सुन रावणको भय हुआ और मारीचको आज्ञा दी कि वह पुत्रीको कहीं छोड़ आवे।

मारीचने मंदोदरीके पास जाकर रावणकी बात कही। मंदोदरीने दुःखके साथ एक संदूकमें बहुतसा द्रव्य तथा लेख और पुत्रीको रखकर मारीचसे कहा कि इसे निरुपद्रव स्थानमें रखना। मारीच उसे लेकर मिथिला देशके निकट वनमें जमीनमें गाड आया। उसी दिन बहुतसे लोग वहां घर बनानेका स्थान देख रहे थे। सो हलकी नोकसे वह संदूक निकली। लोगोंने वह राजाके यहा पहुंचाई। राजाने उसे देखकर वसुधा रानीको दी। वसुधाने उसका पालन छिपे छिपे किया और उसका नाम सीता रखा गया। जनकने जो यज्ञ करनेका विचार किया है, उस यज्ञमें रावण नहीं आवेगा क्योंकि उसे मालूम नहीं है। इससे जनक रामको सीता अर्पण करेंगे अतः दोनों कुमारोंको वहां अवश्य भेजना उचित है। इस पर राम, लक्ष्मणको सेना सहित दशरथने भेजा। राम लक्ष्मणका जनकने बहुत स्वागत किया। राजाओंके समक्ष जनकके यज्ञकी विधि पूर्ण हो जाने पर जनकने राम के साथ सीताका विवाह कर दिया। कुछ दिनों तक राम, लक्ष्मण जनकके यहां ही रहे। फिर दशरथके बुलाने पर दोनों भाई अयोध्या आये। अयोध्यामें रामका सात और राजकन्याओंके साथ और लक्ष्मणका सोलह राजकन्याओंके साथ विवाह किया। फिर राम लक्ष्मणने बनारस जाकर राज्य करनेकी इच्छा प्रगट की पहिले तो दशरथने इनका विरोध किया फिर इन दोनोंके आग्रहसे रामको राज्य मुकुट पहिना कर और लक्ष्मणको युवराज पद देकर विदा किया। राम लक्ष्मण बनारसमें सुख पूर्वक रहने लगे।

एक दिन रावण अपनी सभा में बैठा हुआ था। शत्रुओंको रुलानेके कारण इसका नाम रावण पड़ा था। इस सभामें नारद गये। नारदने सीताके रूपकी प्रशंसा की और कहा कि वह तुम्हारे योग्य है। जनकने तुम्हें न देकर बहुत अनुचित किया है। रावण कामांध होकर सीताके हरणका विचार करने लगा। मारीच मंत्रीसे सलाह पूछी परन्तु मारीचने कहा कि यह कार्य उचित नहीं। रावणने नहीं माना तब मारीचने कहा कि किसी दूतीको भेजकर उसके मनका भाव जानना चाहिये कि वह आप पर आशक्त है या नहीं। यदि वह आशक्त हो तो विना अधिक कष्टके ही बुला ली जाय। यदि नहीं तो जबरदस्ती हरण की जाय। रावणने इस उपायके अनुसार सूर्पणखा दूतीको बनारस भेजा। उस समय राम, लक्ष्मण चित्रकूट वनमें वनक्रीड़ा कर रहे थे। रामके रूपको देख कर सूर्पणखा स्वयं मोहित हो गई। एक जगह अशोक वृक्षके नीचे सीता अपनी सखियों सहित बैठी थी। सूर्पणखा वृद्धाका रूप धारण कर उनके मनका भाव जानने आई। उस वृद्धाको देखकर दूसरी सखियां हंसने लगीं। और पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा कि मैं इस बनके रक्षककी माता हूं। तुम बड़ी पुण्यवान् हो मुझे बताओ तुमने कौनसा पुण्य किया है जिससे ऐसे महा पुरुषोंकी स्त्री हुई हो, मैं भी वही पुण्य करके इनकी स्त्री बनूंगी और दूसरी स्त्रियोंसे उन्हें परांगमुख करूंगी। इस कथन पर सब हँस पड़ीं। बहुत कुछ हँसीके बाद सीताने कहा–बुढ़िया तू इस स्त्री पर्यायको अच्छी समझती है, यह तेरी भूल है। सीताने स्त्री पर्यायके दोष बताकर अपने ही पतिमें

सन्तोष रखनेका उपदेश दिया कि सतीत्व ही स्त्री पर्यायमें एक अमूल्य वस्तु है। सती स्त्रियां अपने सतीत्वके प्रतापसे सत्व हरण करनेवालेको भस्म तक कर सकती हैं। उसकी इन बातोंसे सीता-का अडोल चित्त समझ सूर्पणखा वहांसे गई। और रावणसे सब हाल कहा। तथा वहांके योग, बल आदिकी भी प्रशंसा की। तब रावणने कहा तूं चतुर नहीं है। तुझे स्त्रीका स्वभाव नहीं मालूम। ऐसा कह पुष्पक विमान द्वारा मारीच मंत्रीके साथ वह स्वयं आया। चित्रकूट वनमें आकर रावणकी आज्ञासे मारीच ने मणियोंसे बने हुए हरिणके बच्चेका रूप बना लिया। और सी-ताके सामनेसे निकला। सीताने रामसे कहा कि देखिए कैसा प्यारा और आश्चर्य जनक हरण है? रामने भी आश्चर्य किया और उसे पकड़ने चले। वह कभी भागता कभी थम जाता कभी छलांग मारता था। इस तरह वह रामको बहुत दूर ले गया। राम कहते थे कि यह मायामई हरिण है इसके पीछे जाना निरर्थक है। तो भी पकडनेको जाते ही थे। अंतमें वह आकाशमें उड़ गया। राम देखते ही रह गये। इधर रावण रामका रूप धारण कर आया और सीतासे कहा कि चलो घर चलें, धामका समय हो गया है। पुष्पक विमानको पालकी बनालिया और उसमें सीताको बिठाकर लंका लाया। और एक वनमें रख कर अपना रूप प्रकट कर दिया तथा सीताको उसके लानेका कारण बतलाया। सीता यह देखकर मूर्छित हो गई। रावणने उसे आकाश गामिनी विद्या नष्ट हो जानेके भयसे अभी तक स्पर्श नहीं किया था। दूतियोंको भेज कर उसकी मूर्छा दूर कराई। दूतियोंने बहुत समझाया कि तू

रावणको स्वीकार कर पर सीताने मुंहतोड़ उत्तर दिया। अंतमें सीताने विधवाके समान रूप धारण कर प्रतिज्ञा की कि जब तक रामके क्षेम कुशलके समाचार न सुन लूंगी तब तक न तो बोलूंगी और न खाऊंगी। वह संसारकी असारताका चिंतवन करती हुई वहां अपना समय व्यतीत करने लगी। लंकामें रावणके लिये अनिष्ट कारक उत्पात होने लगे। उसकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। रावणको उसका फल नहीं मालूम था अतः वह बहुत प्रसन्न हुआ। मंत्रियोंने उसके इस परस्त्री हरण रूप कृत्यका बहुत विरोध किया, पर वह नहीं माना। उसने कहा देखो सीताके आते ही मेरे यहां चक्ररत्न उत्पन्न हुआ यही शुभ लक्षण है। उधर राम हरिणके पीछे २ वनमें बहुत दूर चले गये थे। रात्रि हो गई थी। रामके शिविरमें सीता और रामको न देख उनके कर्मचारी बहुत घबडाये। सुबह होते ही जब राम आये तब उन्होंने सीताको न देख कर्मचारियोंसे पूछा। उन लोगोंने कहा हमें नहीं मालूम सीता कहां है ? यह सुन राम मूर्छित हो गये। सीताको बहुत ढूंढा पर पता नहीं चला। उसका एक ओढ़नेका कपड़ा मिला उसे लोगोंने रामको लाकर दिया। राम सब बात समझ गये और लक्ष्मणके साथ चिंता करने लगे। इतने ही में दशरथ महाराजका दूत रामके पास आया। उसने कहा कि दशरथको स्वप्न आया है कि चन्द्रकी स्त्री रोहिणीको राहु हर ले गया है और चंद्रमा अकेला रह गया है। इसका फल पूछने पर निमित्तज्ञानियोंने कहा है कि सीताको रावण हर लेगया है। और राम अकेले रह गये हैं, यह समाचार दशरथने भेजा है

और यह पत्र दिया है। रामने पत्रको मस्तकसे लगा कर पढ़ा। उसमें लिखा था कि यहांसे दक्षिणकी ओर समुद्रमें छप्पन महा द्वीप हैं वे चक्रवर्तीकी आज्ञामें तो सब रहते हैं और नारायणकी आज्ञामें आधे रहते हैं इनमे लंका महा द्वीप है जो कि त्रिकूटाचल पर्वतसे सुशोभित है। उसमें आजकल रावण राज कर रहा है। वह दुष्ट राजा है। उसने सीताका हरण किया है। और अपने नगरमें ले जाकर रखा है। इस लिये जब तक उसके छुड़ानेका उद्योग हम करें तब तक वह अपने शरीरकी रक्षा करती रहे, यह समाचार सीताके पास भेज देना उचित है। रामका इस पत्रके पढनेसे शोक तो दूर हो गया; परन्तु रावण पर क्रोध आया। इसी समय दो विद्याधर रामसे मिलने आये उनमेंसे एकने अपना परिचय इस प्रकार दिया कि विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें किलकिल नामक नगरके राजा बलीन्द्र थे। उनकी रानीका नाम प्रियगु सुंदरी था। उनके दो पुत्र बालि और सुग्रीव। जब पिताने दीक्षा ली तब बालिको राजा और मुझे सुग्रीवको युवराज बनाया। परन्तु कुछ काल बाद मेरे बड़े भाईने मुझसे मेरा पद छीन घरसे निकाल दिया। और मेरे साथमें आये हुए इन युवकका नाम अमितवेग है। यह विद्युत्कांता नगरके राजा प्रभंजन विद्याधरकी रानी अंजनाका पुत्र है। यह तीनों तरहकी विद्याएं जानता है। अखण्ड पराक्रमी है। एक बार विद्याधरोंके कुमार अपनी ८ विद्याओंकी शक्तियोंकी परीक्षा करने विजयार्द्ध पर्वतके शिखर पर गये। वहां इनने अपने बायें पदसे सूर्यमंडलको विद्याके जोरसे ठोकर मारी। फिर अपना शरीर त्रसरेणुके समान बना लिया। इससे

लोग बड़े प्रसन्न हुए। और इनका नाम हनुमान भी रखा। यह मेरे प्राणोंसे भी प्यारा मित्र है। इसके साथ हम सम्मेदशिखरकी वंदना करने गये थे वहां सिद्धकूट पर नारद आये उनसे मैंने पूछा कि मेरा पद युवराज पीछा मिलेगा या नहीं। उन्होंने कहा कि राम लक्ष्मण शीघ्र ही बलभद्र नारायण होने वाले हैं सो तुम यदि उनके काम आओ तो हो सकता है और वह काम यह है कि रावण सीताको हर लेगया है तुम यदि पता लगादो तो ठीक है। यह सुन हम आपके पास आये है। फिर हनुमानने कहा कि आप सीताके चिन्ह बतलावें मैं ढूंढ कर लाऊंगा। रामने चिन्ह बताए और अपनी अगूठी दी। हनुमान उसे लेकर लकाको चले। लका बड़ी सुसज्जित नगरी थी उसके मणियोंके बने हुए कोट और ३२ दर्वाजे थे। हनुमान भ्रमरका रूप धारण कर पहिले रावणकी सभ में गये जब वहां सीता नहीं देखी तब अन्तःपुरके पीछेके दर्वाजेसे कोट पर चढकर देखा तो नंदनवन पास दिखलाई दिया अत. वे वहा गये। वहीं शीशमके वृक्षके नीचे सीता बैठी हुई थी। कई दूतियां उसे समझा रहीं थीं। हनुमान वृक्षपर जा बैठे। फिर रावण आया। उसने भी समझाया पर सीता नहीं मानी। मदोदरीने आकर रावणको समझाया कि यह कार्य उचित नहीं पर रावणने नहीं माना। रावण चला गया। मन्दोदरीको सीताकी चेष्टासे मालूम हुआ कि शायद यह मेरी ही पुत्री है। उसके हृदयमें प्रेम उमड़ा। और स्तनोंसे दूध झरने लगा। मंदोदरीने सीताको यही उपदेश दिया कि तू अपना शील भंग मत कर। और शरीर रक्षाऽर्थ भोजन अवश्य कर। मंदोदरीके जानेपर

रक्षकोंको विद्याके बलसे निद्रामें मग्नकर हनुमान बंदरके रूपमें सीतासे मिले। और रामके सब हाल तथा संदेश कहे। पहले तो सीताको संदेह हुआ पर फिर वह निसन्देह हो गई। और भोजन करना स्वीकार किया। हनुमान वहांसे रवाना होकर रामके पास आये, सब समाचार रामसे कहे। रामने आगे क्या करना उचित है, इसका विचार मंत्रियोंसे किया। रामने हनुमानको सेनापतिका पद दिया। और सुग्रीवको युवराज बनाया। मंत्रीने कहा कि पहिले राजनीतिके अनुसार शाम भेदसे ही काम लेना चाहिये और इसलिये हनुमानको दूत बनाकर रावणके पास भेजना उचित है। तब मनोवेग, विजय, कुमुद और रविगति राजाके साथ हनुमानको दूत बनाकर भेजा। और विभीषणको भी रामने संदेश भेजा। हनुमानने विभीषणसे रामका संदेश कहा कि आप धर्मके माननेवाले विद्वान्, दूरदर्शी और रावणके हितैषी हैं। रावणने यह काम उचित नहीं किया है अत आप उन्हें समझावें। हनुमानने यह संदेश कहकर स्वयं रावणसे मिलनेकी इच्छा प्रगट की। विभीषण हनुमानको रावणके पास ले गया। हनुमानने मीठे वचनोंसे रावणको बहुत कुछ सीता वापिस करनेके लिये समझाया पर वह न माना। किन्तु हनुमानको राजसभासे निकल जानेकी आज्ञा दी। तब हनुमान लौटकर रामके पास आये। राम सब समाचार सुन युद्धको तयार हुए, और चित्रकूट वनमें पहुंचे। वर्षाऋतु वहीं व्यतीत की। वहां वालि विद्याधरने कहलवाया कि यदि आप मुझसे सहायता लेना चाहें तो हनुमान, सुग्रीवको निकाल दें मैं अभी सीताको

छुड़ा लाऊंगा। रामने मंत्रियोंकी सम्मतिसे यह विचार निश्चित किया कि यदि इसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे तो यह रावणका सहायक हो जायगा अतः पहिले इसे ही मारना उचित है और उसके दूतसे कहा कि तुम्हारे यहां जो महामेघ हाथी है वह हमें दो और हमारे साथ लंका चलनेको तैयार होओ फिर तुम्हारे कथन पर विचार किया जायगा। वालि इस उत्तरसे बड़ा क्रुद्ध हुआ। अत राम, लक्ष्मणके साथ उसका युद्ध हुआ और वह मारा गया। तब सुग्रीवको उसका राज्य दिया। सुग्रीव अपनी किष्किधा नगरीमें रामको लाया। और मनोहर नामक उद्यानमें ठहराया। वहां रामके पास १४ अक्षोहिणी सेना हो गई थी। लक्ष्मणने शिवघोष मुनिके मोक्षस्थल जगत्पाद पर्वत पर सात दिनका उपवास धारण कर पूजा की और प्रज्ञप्ति नामक विद्या सिद्ध की। सुग्रीवने भी अनेक व्रत उपवास कर सम्मेद पर्वतको सिद्धशिला पर विद्याओंकी पूजा की तथा अनेक विद्याधरोंने भी विद्याओंकी पूजा की और फिर सेना लंकाके लिये रवानह हुई। इधर रावणको कुंभकर्ण आदि भाइयोंने सीता देनेको बहुत समझाया; पर वह नहीं माना। विभीषणने भी बहुत कुछ कहा पर वह बिल्कुल न माना और उसे अपने राजसे निकाल दिया। तब विभीषण रामसे आकर मिला। रामके यहां उसका बहुत आदर सत्कार हुआ। जब रामकी सेना समुद्रके किनारे पहुंची तब हनुमानने रामसे लंकामें उपद्रव आदि करनेकी आज्ञा मांगी। जब रामने आज्ञा दे दी तब अनेक विद्याधरोंके साथ हनुमान

लंकामें गया । और वहा वन उद्यान वगैरह नष्ट किये, व उनके रक्षकोंको मारा और लंकामें आग लगाई । फिर लौट कर युद्धार्थ अपनी सेना तैयार कर रखी । विभीषणसे रामने पूछा कि रावण युद्ध करने क्यों नहीं आया ? तब विभीषणने कहा कि वह बालिका परलोक गमन व सुग्रीव, हनुमानके अभिमानके समाचार सुन आदित्यपाद पर्वत पर आठ दिनोंका उपवास धारण कर राक्षस आदि विद्याएं सिद्ध करने बैठा है इन्द्रजीत उसका पुत्र उसका रक्षक है । इसमें विघ्न डालना चाहिए । इसलिये राम लक्ष्मणने प्रज्ञप्ति विद्या द्वारा बहुतसे विमान बना अपनी सेना लंकाके बाहर पहुचाई । और कई विद्याधरोंको पर्वतपर लडने भेजा उस समय पहिलेकी सिद्ध विद्याओंसे व देवताओंसे इन्द्रजीत और रावणने युद्ध करनेके लिये कहा; पर उन्होंने कहा कि आपका पुण्य क्षीण हो जानेसे हम युद्ध नहीं कर सकते । तब रावण स्वयं युद्धके लिये तैयार हुआ । और सुकुंभ, निकुंभ, कुम्भकर्ण आदि भाई इन्द्रजीत, इन्द्रकीर्ति, इन्द्रवर्मा आदि पुत्र, महामुख, अति काम, खरदूषण, धूम्र आदि विद्याधरोंके साथ युद्ध करने निकला । दोनों ओरसे कई दिनोंतक घनघोर युद्ध होता रहा । अन्तमें आकाशमें भी युद्ध हुआ । रावणका अब कोई वश नहीं चला तब उसने चक्र चलाया । चक्र लक्ष्मणके हाथोंमें आकर ठहर गया, लक्ष्मणने उसीसे रावणका सिर काटा । रावण मरकर पहले नरक गया । रामने विभीषणको रावणका राज्य और सब संपदा दी तथा मंदोदरीको समझा बुझा दिया । राम लक्ष्मण

तीन खण्डोंके स्वामी हुए। सीता उन्हें मिल गई। फिर लंकासे रवाना होकर राम लक्ष्मण मीठ नामक पर्वतपर ठहरे। वहां विद्याधरोंके राजाओंने दोनोंका १००८ कलशोंसे अभिषेक किया और लक्ष्मणने वहीं कोटिशिला उठाई। उससे प्रसन्न हो रामने सिंहनाद किया। वहांके रहनेवाले सुनंद नामक यक्षने उन दोनों भाइयोंकी पूजा की और सानंद नामक तलवार लक्ष्मणको भेटमें दी। फिर दोनों भाई गंगाके किनारे २ गये और जहां गंगा समुद्रमें मिलती है वहां डेरे डालकर बड़े द्वारसे लक्ष्मण समुद्रमें गये और मगधदेवके निवास स्थानको निशाना बनाकर अपने नामका बाण छोड़ा। मगधने अपनेको बड़ा पुण्यवान समझ लक्ष्मण चक्रवर्तीकी स्तुति की तथा रत्नोंका हार मुकुट और कुंडल भेटमें दिये। फिर समुद्रके किनारे २ जाकर वैजयंत द्वारपर वरतनु नामक देवको वश किया। उसने कटक, अगद, चूड़ामणि, हार, करधनी भेटमें दी। फिर दोनों भाई पश्चिमकी ओर जाकर सिंधु नदीके बड़े द्वारसे समुद्रमें घुसे और प्रभास नामक देवको विजय किया। उसने सफेद छत्र तथा वहांकी उत्तमोत्तम वस्तुएँ और अन्य आभूषण दिये। इसके बाद सिंधु नदीके किनारे २ जाकर पश्चिमकी ओरके म्लेच्छ खंड निवासियोंको तथा वहांकी उत्तमोत्तम वस्तुएं अपने आधीन कीं। विद्याधरोंको वश कर हाथी, घोड़े, शस्त्र, कन्याएं, रत्न आदि प्राप्त किये। वहांसे चलकर पूर्व खंडके म्लेच्छ देशोंके राजाओंको वश किया। इस प्रकार ४२ वर्षमें दिग्विजय कर अयोध्यामें बहुतसे देव, विद्याधर राजा आदिके साथ प्रवेश किया। शुभ मुहूर्तमें सम्राट

पदका अभिषेक हुआ । इनके आधीन सोलह हजार मुकुटबंध राजा थे । और सोलह हज़ार देश आधीन थे । ९८५० द्रोणमुख, २५००० पत्तन, ११००० कर्वट, १२००० मटंब और ८००० खेटक थे । ४८००००००० ग्राम थे । २८ द्वीप थे । ४२००००० हाथी, ९०००००००घोड़े और ४२०००००००पैदल सेना थी, ८००० गणबद्ध जातिके देव भी इनके आधीन थे । बलभद्रके ४ रत्न और नारायण लक्ष्मणके ७ रत्न थे । प्रत्येक रत्नके एक हजार २ देव रक्षक थे ।

एक दिन मनोहर वनमें दोनों भाइयोंने शिवगुप्त नामक जिनराजके दर्शन और उनकी पूजा की । और धर्मका स्वरूप पूछा । तथा श्रावकके व्रत लिये । लक्ष्मण नरकायु बंध कर चुका था । अतः उसे सम्यक्त्व नहीं हुआ । फिर दोनों भाई अयोध्याका राज्य भरत व शत्रुघ्नको दे आप बनारस आकर रहने लगे । और भोगविलासमें लीन हो गये । रामके विजय-राम नामका पुत्र हुआ । और लक्ष्मणके पृथ्वीचंद्र नामक पुत्र हुआ । कुछ दिनों बाद लक्ष्मणने नागशय्या पर सोये हुए स्वप्न देखे कि मस्त हाथी द्वारा बड़का वृक्ष उखड़ा है । राहु द्वारा ग्रसित सुर्य रसातलमें चला गया है और चूनेसे पुते हुए महलका एक अंश गिर गया है । रामसे लक्ष्मणने इन स्वप्नोंको निवेदन किया । रामने पुरोहितसे पूछा । पुरोहितने कहा कि पहिलेका फल असाध्य रोगसे लक्ष्मणका रोगी होना है, दूसरेका फल भोगोपभोगकी वस्तुओंका नाश है और तीसरेका फल रामका तपोवनमें जाना है । यह फल सुन धीरवीर राम अधीर

न हो दानादि करने लगे। राज्यमें जीव वध नहीं होनेकी घोषणा कराई। कुछ दिनों बाद लक्ष्मण असाध्य रोगी हुए और माघकृष्ण अमावशके दिन उनकी मृत्यु हुई। शोकसे संतप्त रामने ज्ञानवान् होनेके कारण अपने आपको संभाला और दाह किया। तथा लक्ष्मणके पुत्र पृथ्वीचन्द्रको राज्य दिया। और उनके विजयराम आदि सात पुत्रोंने जब राज्यलक्ष्मी लेनेकी अनिच्छा प्रगट की तब आठवें पुत्र अजितरामको युवराज पद दे मिथिला देशका राज्य दिया। फिर अयोध्याके समीप सिद्धार्थ वनमें शिवगुप्त केवलीसे रामने हनुमान, सुग्रीव, विभीषण आदि पाचसौ राजाओंके साथ दीक्षा ली। सीता, पृथ्वी, सुंदरी आदि आठ रानियोंने भी श्रुतवती आर्यिकासे दीक्षा ली। पृथ्वी, सुदर और अजितजयने श्रावकके व्रत लिये तथा राजधानीमें प्रवेश किया। साढे तीनसौ वर्षोतक तप करने पर रामको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और छहसौ वर्ष केवलि अवस्थामें व्यतीत कर फाल्गुन शुक्ल १४ के दिन सम्मेदशिखरसे हनुमान आदिके साथ निर्वाण प्राप्त हुए। विभीषण सर्वार्थसिद्धि गये। और लक्ष्मण ४थे नरक गये। तथा सीता, पृथ्वी, सुंदरी आदि रानियां अच्युत स्वर्गमें देव हुई।

परिशिष्ट क, ख, की

सूचना।



पृष्ठ ४ और ११ में जो परिशिष्ट 'क' 'ख' का उल्लेख किया गया है उसके लिये निवेदन है कि पहिले इन परिशिष्टोंमें चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायणकी सपत्ति आदिका वर्णन देनेका विचार था. परन्तु पहले भागमें यह वर्णन दिया जा चुका है तथा बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायणकी संपत्तिका वर्णन इसी भागमें राम, रावणके पाठोंमें भी किया गया है, अत. पृथक् रूपसे परिशिष्टोंमें वर्णन करना उचित नहीं समझा गया।



परिशिष्ट 'म'

श्री तीर्थंकरोंके चिन्ह।



नाम	चिन्ह
श्री विमलनाथ	वराह
श्री अनंतनाथ	सेई
श्री धर्मनाथ	बज्रदंड
श्री शान्तिनाथ	मृग
श्री कुंथुनाथ	अज (बकरा)
श्री अरहनाथ	मछली
श्री मल्लिनाथ	कलश
श्री मुनिसुव्रतनाथ	कछुवा

